उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

DIPLOMA IN MEDICAL ASTROLOJY

चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा

पाठ्यक्रम कोड़ –DMA-20

ज्योतिषशास्त्र में रोग ज्ञान के आधार

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025

Operator : 05946-286000

Admissions : 05946-286002

Book Distribution Unit : 05946-286001

Exam Section : 05946-286022

Fax : 05946-264232

Website : http://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रो0 देवीप्रसाद त्रिपाठी, कुलपति
उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार
प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी
प्रो0 रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, श्री ला.बा.शा.के.स.वि.वि. नई दिल्ली

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 प्रभाकर पुराहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी. ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादक

डॉ 0 प्रभाकर पुराहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ए.सी.ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सह सम्पादन

डॉ 0 नीरज कुमार जोशी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी.संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड एवं इकाई संख्या**	
डॉ. जितेन्द्र कुमार दूबे, सहायक प्राध्यापक, ज्योतिष विभाग, श्री मतीलाड देवी शर्मा पंचोली, आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, भीलवाड़ा राजस्थान	खण्ड -1	1,2,3,4,5
डॉ. देशबन्धु शर्मा, सहायक प्राध्यापक वास्तु विभाग , श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ ,नई -दिल्ली	खण्ड-2	1,2,3,4,5
डॉ. वह्ममानन्द मिश्र, सहायक प्राध्यापक, ज्योतिष विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्व विद्यालय नई - दिल्ली एकलव्य परिसर अगरतला, त्रिपुरा	खण्ड -3	1,2,5
डॉ. सुनील कुमार त्रिपाठी, सहायक प्राध्यापक , ए.सी ,ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड -3	3
डॉ. सुरेश शर्मा , सहायक प्राध्यापक, केन्द्रीय संस्कृत विश्व विद्यालय, रघुनाथ कीर्ति परिसर देव प्रयाग, पौड़ी गडवाल उत्तराखंड	खण्ड - 4	1,2,3

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक - **ज्योतिषशास्त्र में रोग ज्ञान के आधार**

मुद्रक : प्रकाशन वर्ष : 2022

यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है। संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा। इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखितअनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

प्रथम-01 ज्योतिष शास्त्रोंक्त योग आधार

इकाई-01 रोगविचार की परम्परा
इकाई-02 अरिष्ट योग व प्रकार
इकाई-03 अरिष्ट काल निर्माण
इकाई-04 आयु परीक्षण
इकाई-05 आयु के प्रकार

द्वितीय -02 रूग्ण के विशेष योग

इकाई-01 रोग योग सूचक प्रमुख ग्रह
इकाई-02 रोगोत्पत्ति का काल निर्धारण
इकाई-03 मृत्युकाल का निर्धारण
इकाई-04 मृत्यु प्रकार एवं काल
इकाई-05 रोग निर्धारण प्रमुख तत्व

तृतीय -03 रोग ज्ञान के ज्योतिषीय आधार

इकाई-01 जन्मांग चक्र के आधार पर रोग ज्ञान
इकाई-02 दशा के माध्यम से रोग काल निर्माण
इकाई-03 दिक्, देश एवं काल सापेक्ष रोग परिज्ञान
इकाई-04 शाकुन से रोग विचार
इकाई-05 स्वप्न के माध्यम रोग ज्ञान निर्माण

चतुर्थ-04 व्याधि विवेचन

इकाई-01 रोगों के प्रकार
इकाई-02 सूर्यादि ग्रहों के रोग

प्रथम-प्रथम
ज्योतिष शास्त्रोंक्त योग आधार

खण्ड- प्रथम ज्योतिष शास्त्रोक्त योग आधार

इकाई - 1 रोगविचार की परम्परा

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 रोगविचार की परम्परा
1.3.1 भावों के अनुसार विविध रोगों का ज्ञान
1.3.2 ग्रह जनित रोगों का अध्ययन
1.3.3 तत्व सम्बन्धित रोग ज्ञान
1.3.4 मृत्यु कारक योग विचार
1.4.1 बोध प्रश्न
1.5 सारांश
1. 6 परिभाषिक शब्दावली
1.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1 .1 प्रस्तावना :-

प्रस्तुत इकाई "**चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा**" पाठ्यक्रम के अन्तर्गत द्वितीय पत्र "**प्रथम खण्ड**" की पहली इकाई है, इस इकाई का शीर्षक हैं , " **रोग विचार की परम्परा**" चूंकि आप सभी भली-भांति इस बात को जानते हैं, कि ग्रह एवं राशियों का स्वामित्व, एवं परस्पर सम्बन्ध तत्वों से है। कहा भी गया है कि मानव शरीर पांच तत्वों से बना है, (पृथ्वी, अग्नि , जल , वायु एवं आकाश) इसे हम पंचमहाभूत कहते हैं। एवं हर तरह की नियमितता व अनियमितता इन पंच तत्वों पर ही निर्भर करता है। तत्वों में से किसी भी तत्व की एक निश्चित मात्रा में कमी अथवा अधिकता होने से मानव शरीर में विकार उत्पन्न होता है। तो वह विकार ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ग्रह एवं राशियों से सम्बंधित रोग उत्पन्न करता है। वस्तुतः इस विषय का विचार हम सबको जन्मकुण्डली या प्रश्न कुण्डली में स्थित ग्रह योग ,अशुभ अथवा क्षीण होने पर ही कथन करना चाहिए ,

इस इकाई में ग्रहों के अनुसार रोग, तत्वों के अनुसार रोग, राशियों के अनुसार रोग, भाव के अनुसार रोग, इत्यादि मानव संबंधित संपूर्ण रोगों का विचार आप लोग इस इकाई के अध्ययन से विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त करेंगे।

1. 2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

1. रोग परम्परा के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें।

2.षष्ठेश एवं लग्नेश के अनुसार तन्वादि द्वादशभाव में स्थित के अनुसार रोग विचार करेगें।

3. ग्रह , राशि एवं तत्वजनित रोगों की जानकारी प्राप्त करेगें।

4. शारीरिक अंग जनित रोगों का विचार कर पायेगें।

5. नक्षत्रजनित रोग एवं भावजनित रोग के बारे में जानेगें।

6. विविधरोगजनित योगों के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें।

7. रोगों के निदान मंत्र, जप रत्न, से निदान कर पायेगें।

1.3 इकाई नं. 1 रोग विचार की परंम्परा

इस इकाई के अध्ययन से आप लोगों को मानव जीवन में उत्पन्न होने वाले रोग की परंपरा तथा ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शरीर में रोगों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है ! किस योग में किस प्रकार से रोग होते हैं, साथ ही नक्षत्र जनित रोग , भाव जनित रोग एवं इसके परंपरा के बारे में भली भांति आप लोग परिचित होंगे! भारतीय विद्याओं में ज्योतिष शास्त्र में अनादिकाल से रोगों के बारे में बताया है, साथ ही ज्योतिष का चिकित्सा विज्ञान में सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि मानव शरीर में व्याधि संक्रमण

के सम्भावित काल की सूचना ग्रह राशियों के संबंध द्वारा पहले ही देने में सक्षम है। यथा--

आधानकाले कमलोद्भवेन वर्णावलीभालतलान्तराले।
या कल्पिता पश्यति दैववितां होरागमज्ञानविलोचनेन।|

इस सूत्र के अनुसार हम यह कह सकते हैं, कि रोग विचार की परम्परा सदियों से चली आ रही है।जैसे कि गर्भाधान काल में ब्रह्मा जी मनुष्य के ललाट में जो शुभ या अशुभ पंक्ति अक्षर रोगदोष लिख देते है,उसको लोग जातक के भविष्य में होनेवाली समस्याओं के बारें में या रोगों के बारे में ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से जानकारी प्राप्त कर लेते है। ज्योतिष शास्त्र में कुंडली के माध्यम से 12 भाव का वर्णन किया जाता है। उन्हीं द्वादश भाव में अंतिम भाव(व्यय, गमन)यात्रा का होता है । प्रत्येक यात्रा व्यक्ति के शरीर द्वारा होती है। सभी कार्यों का क्रियात्मक संपादन भौतिक रूप शरीर देह, तनु से होता है। शरीर अनेक कार्य कारणों से सुखी और दुखी होता है। किंतु मुख्य रूप से सुख -दु:ख आदि का शरीर में एकमात्र छठा स्थान(रिपु भाव)है । जिससे रोग शत्रु तथा आध्यात्मिक दृष्टि से कामादिषट् शत्रु के द्वारा ही शरीर को कष्ट मिलता है। वैसे तो शरीर की स्वस्थता तीन प्रकार से ही हो पाती है । अर्थात यदि शरीर को शारीरिक भोजन, अन्नादि मानसिक भोजन मनोरंजन आदि, और आध्यात्मिक भोजन ईश्वर चिंतन आदि, मिलते रहे तो शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ रह सकता है। किंतु वर्तमान समय एक भी भोजन पहुंचने में असमर्थ हो रहा है।

"मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाःह्यामाश्रयाः स्थिताः" के आधार पर व्यक्ति का शरीर रोग युक्त हो जाता है। तभी जाकर वास्तव में शारीरिक कष्ट होता है। यदि शरीर कष्ट युक्त रहा तो फिर जीवन धर्म-कर्म अव्यवस्थित हो जाना अवश्य संभव होता है। ज्योतिष के द्वारा रोग शत्रु बाधा को जानकर उनके निवारण का उपाय आयुर्वेदिक बौद्धिक आध्यात्मिक आदि प्रकार से करना चाहिए । जिससे छठें भाव के दुष्प्रभाव से बचकर अपने को स्वस्थ पाकर एहिक और पारलौकिक सुख का उपभोग कर सकें। एक स्थान पर लिखा है कि अमुक योग के होने पर डॉक्टर/वैद्य जातक के रोग का निदान मृत्युपर्यन्त नहीं कर पाते।ऐसे समय बौद्धिक आयुर्वेदिक उपायों से निराश व्यक्ति आध्यात्मिक उपायों द्वारा सफलता पा लेता है। उसे मंत्र औषधि द्वारा उपाय करना चाहिए। (मंन्त्रश्च औषधिश्चः मन्त्रौषधिः।

रोग चिंतन का क्षेत्र आयुर्वेद और ज्योतिष ही है । फिर भी ज्योतिष में जिन अनेकों रोगों का वर्णन हुआ है उनका संक्षेप में अथवा ऐसा कहें कि वात्त,पित्त,कफ तथा इनके मिश्रण से अनेकों रोगों की उत्पत्ति उसी प्रकार होती है जिस प्रकार 7 ग्रह अलग-अलग होते हुए भी एक राशि मार्ग मैं आकर संयोग करते हैं तथा मिलकर विभिन्न होते हुए भी एक रूप में प्रभाव डालते हैं। चूँकि इस इकाई में आप लोगों को इस बात की जानकारी दी जाएगी कि ग्रहों के प्रभाव से व्यक्ति रोगी कैसे होता है। साथ ही ग्रहों का वह प्रभाव

जिससे रोग उत्पन्न होकर शरीर को पीड़ित करते हैं शरीर क्रिया है, ग्रह कारण है कर्ता हमारे द्वारा विहित कर्म फल प्रदाता ईश्वर है स्थूल दृष्टि से स्वयं सूक्ष्म दृष्टि से ईश्वर ही करता है। [2]।

यदि जन्मकुण्डली में लग्न का स्वामी पापग्रह से युत होकर व्यय,षष्ठ, अष्टम भाव में हो,अथवा व्यय ,षष्ठ, अष्टम भावों के स्वामी अपने-अपने गृह में हों तो जातक को शारीरिक सुख नहीं होता है। लग्न में यदि पापग्रह और लग्नेश बलहीन हों तो जातक अनेक तरह की चिन्ताओं से युक्त होकर नाना व्याधियों से पड़ित होता होता ।

अभी तक के विषय वस्तु अध्ययन के पश्चात हम सब को भलीभांति इस बात की जानकारी हो गई है , कि ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से रोगों की जानकारी पूर्णतया पता लगाया जा सकता है ! अब इसके जो मूल बिंदु हैं उस पर हम प्रकाश डालना आरंभ कर रहे हैं आइए अब हम जानेंगे ज्योतिष शास्त्र के अनुसार भाव और उसकी अन्य संज्ञाएँ, तथा इससे उत्पन्न होने वाले रोगों के बारे में जानकारी। कुंडली में कुल 12 भाव होते हैं।

जो निम्न लिखित है।

(1):- तनुभाव:- इस भाव के और भी संज्ञा है।जैसे -

कल्प,उदय,आद्य,तनु,जन्म,लग्न, विलग्न, होरा।

(2):- द्वितीय भाव:- वाक्,अर्थ,भुक्ति, नयन,स्व, कुटुम्ब इत्यादि संज्ञा से भी जाना जाता है द्वितीय भाव को।

(3):-तृतीय भाव:- दुश्चिक्य,विक्रम,सहोदर,वीर्य,धैर्य,कर्ण इत्यादि संज्ञा तृतीय भाव के है।

(4):-चतुर्थ भाव:- पाताल,वृध्दि, हिबुक,क्षिति,मातृ,विद्या, वाहन,गृह सुख,बन्धु,चतुष्टय इत्यादि संज्ञा से चतुर्थ भाव को जाना जाता है।

(5):- पंचमभाव:- धी,देवराज,पिता,पुत्र,पञ्चक विद्या, बुद्धि, संतान इत्यादि नामों से जाना जाता है।

(6):- षष्ठभाव:-रोग,शस्त्र,भय,षष्ठ,रिपु,क्षत इत्यादि संज्ञाएँ है।

(7):-सप्तमभाव:-जामित्र,काम,गगन,कलत्र,संपत् , द्यून,अस्त,सप्तम। इत्यादि सप्तमभाव की संज्ञा है।

(8):- अष्टमभाव:- रन्ध्र,आयु,अष्टम,रण,मृत्यु,विनाश, इत्यादि संज्ञा अष्टमभाव के हैं।

(9):-नवमभाव:-धर्म,गुरु,शुभ,तप,नव,भाग्य इत्यादि संज्ञा नवमभाव के हैं।

(10):- दशमभाव:-ब्यापार, मेषुरण,मध्य,ज्ञान, राज्य,आस्पद,कर्म, पिता,इत्यादि संज्ञा दशमभाव के है।

(11):-एकादशभाव:-एकादश,उपान्त्य,भव,आय,लाभ इत्यादि संज्ञा एकादशभाव का है।

(12):- द्वादशभाव:- द्वादश,रि:फ, द्वादश, ब्यय,अन्त्य इत्यादि संज्ञा द्वादशभाव के हैं।

कल्पोदयाद्यतनुजन्मविलग्नहोरा
वागर्थभुक्तिनयनस्वकुटुम्बभानि ।
दुश्चिक्यविक्रमसहोदरवीर्यधैर्य-
कर्णास्तृतीयभवनस्य भवन्ति संज्ञा:।।

अब आइए इन द्वादशभावों से सम्बंधित रोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

(1)- प्रथम भाव:- इस भाव को लग्न भी कहते है। इस भाव से मानसिक स्थिति,व्यक्ति का धैर्य,सहनशीलता,संकल्प प्रतिबद्धता, दिमागी कमजोरी,दिमागी रोग,सिरदर्द,नजला आदि रोगों का विचार प्रथमभाव से करते हैं।

(2)-द्वितीयभाव:- को मारक स्थान कहा गया है इस भाव से यह विचार भी करते है कि जीवन कब समाप्त होगा।साथ ही गला,दाँत, नाक, मुख, कान, आँख, वाणी आदि रोगों का विचार किया जाता है।

(3) - तृतीय भाव:-दमा,खाँसी,साँस,कण्ठमाला,फेफड़े के रोग,हाथ पैर में टेड़ापन आना,काँलरबोन (कंधे की हड्डी), साँस से उत्पन्न होनेवाले रोग,एलर्जी आदि रोगों का साथ ही कोविड (कोरोना) का विचार भी तृतीय भाव से करते हैं।

(4)-चतुर्थ भाव:- इस भाव से टी.बी. ,पेट या सीने में पानी भरना,मानसिक उन्माद, दिल में छेद,रक्तसंचार का धीमा होना, हृदय से सम्बन्धित रोगआघात, छिद्र, भोजन निकास नली आदि रोगविचारचतुर्थ भाव से करते हैं।

(5) - पंचम भाव:- इस भाव से पेट में होने वाली पीड़ा ,पाचन तंत्र में गड़बड़ी होना ,पेट रोग,लीबर की खराबी,पित्तसम्बन्धित रोग, भुख न लगना,मन्दाग्नि, गुर्दा रोग,पथरी होना,पीलिया रोग, आदि का विचार पंचम भाव से किया जाता है।

(6)-षष्ठभाव:- इस भाव से बड़ी आंत, कमर,तथा कुल्हे में दर्द ,दाहिने पैर में दर्द,हरणियाँ, पथरी,रोगोत्पत्ति, रोग उपाय,उसका समय निर्धारण, तथा नाभि आदि रोगों का विचार षष्ठभाव से किया जाता है।

(7) - सप्तमभाव:- इस भाव से डाइबिटीज, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर , प्रमेह, सूजन ,गर्भाशय आकार विकार एवं परिवर्तन होना, संक्रमण,एवं एड्स जैसे असाध्य रोगों का विचार सप्तम भाव से किया जाता है।

(8)- अष्टमभाव:- इस भाव से प्रेतबाधा, गर्भाशय तथा गुदा का कैंन्सर,संभोग सन्तुष्टि न होने से उत्पन्न होने वाली दिमागी चिन्ता,संतान नहीं होने के कारण मूत्रकृच्छरोग, त्वचा व गुदा सम्बन्धित रोग, फिशर,बवासीर,गुप्तरोग, शारीरक सम्बन्ध,वीर्य की कमजोरी, विकृति इत्यादि रोगों का विचार इस भाव से करते हैं।

(9)- नवमभाव:- इस भाव से यकृत,रक्तदोष, स्त्रीयों में मासिक धर्म, मेद से उत्पन्न होने वाले रोग,कमर में होनेवाली स्लिपडिस्क नामक रोग, रीढ़ की हड्डी का रोग,नितम्ब एवं जंघा में रोग मांसपेशियों का खिंचाव आदि रोगों का विचार इस भाव से करते हैं।

(10)-दशमभाव:- इस भाव से वायुविकार से उत्पन्न होने वाले एवं सम्बंधित रोग, घुटनों का दर्द,त्वचा रोग,गठियारोग ,रीढ़ की हड्डी में होनेवाले रोग का विचार इसभाव से करते हैं।

(11) -एकादशभाव:- इसभाव से रक्त कैन्सर,शीत के प्रभाव से उत्पन्न होनेवाले रोग,निमोनिया, पिण्डलियों में पीड़ा,हड्डी की गलन, आकर परिवर्तन, हड्डी का कमजोर होकर टूटना ,पैर में चोट लगना, बायें हाथ की पीड़ा तथा कुक्षि आदि रोगों का विचार इस भाव से करते हैं।

(12) - द्वादशभाव:- इस भाव से किसी भी प्रकार के संक्रमण से सम्बंधित रोग, पोलियो, निर्बलता, दिमागी झटका लगना, दिमाग में अर्बुद (ट्यूमर) की गाँठ होना , तथा दुर्घटना इत्यादि रोगों का विचार किया जाता है।

इस प्रकार भावों के नाम जानने के बाद आपलोग ग्रहों के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें। तथा उसके पश्चात कौन सा ग्रह किस भाव में बैठा है तो किस प्रकार का रोग उत्पन्न करता है यह जानकारी आपलोगों को बताया जायेगा।

सर्वप्रथम ग्रहों के नाम बताया जा रहा है।

(1):- सूर्य

(2):-चन्द्रमा

(3):- मंगल

(4):-बुध

(5):-बृहस्पति

(6):- शुक्र

(7):- शनि

(8):- राहु

(9):-केतु

यद्यपि रोगों का विचार करें तो भाव के अनुसार प्रथम भाव से कुछ रोगों का विचार

किया गया है, साथ ही छठा भाव से भी रोगों का विचार होता है। रोग निर्धारित करने के लिए किसी भी एक बिन्दु से विचार नहीं करना चाहिए। इसके लिए छठे भाव में स्थित ग्रह , राशि, राशि के स्थायीतत्व नक्षत्रदशा के स्वामी आदि का भी विचार करना चाहिए।

महर्षि जैमिनी के अनुसार भाव का भी विचार करना चाहिए।छठे भाव से गिनकर इससे जो छठाभाव है अर्थात ग्यारहवें भाव से भी रोग निर्धारण हेतु विचार किया गया है। छठे या ग्यारहवें भाव के नक्षत्र को भी भली-भांति देखना चाहिए। रोगकारक ग्रह तथा उसके सहयोगी ग्रहों की स्थिति को अच्छी तरह देखना चाहिए कि यह किस समय तथा कितनी मात्रा में व्यक्ति को रोग से पीड़ित करेगा।

आइए अब रोगों से सम्बन्धित कुछ योगों के बारे में अध्ययन करते है।

(1):-षष्ठेश लग्न भाव में हो तो जातक निरोग, कुटुंब को कष्ट देने वाला ,शत्रु नाशक ,निरुत्साही ,निरुद्यमी, चंचल ,धनी,अंतिम अवस्था में आलसी पर मध्यम अवस्था में परिश्रमी और अभिमानी होता है।

(2):-षष्ठेश द्वितीय भाव में हो तो दुष्ट बुद्धि वाला, चालाक, संग्रह करने वाला, उत्तम स्थान वाला, प्रख्यात, रोगी और अस्त व्यस्त रहने वाला होता है।

(3):-यही छठा भाव का स्वामी तृतीय भाव में स्थित हो तो परिवार में मनमुटाव रखने वाला, संग्राहक, द्वेष बुद्धि वाला, स्वार्थी, अभिमानी, निरोग और चतुर होता है।

(4):-छठा भाव का स्वामी यदि चतुर्थ भाव में स्थित हो तो पिता से द्वेष करने वाला, नीच बुद्धि वाला, अभिमानी, अखाद्य खाने वाला, और लालची होता है।

(5):-अगर यदि छठे भाव का स्वामी पांचवें भाव में स्थित हो तो माता का भक्त, शत्रुओं से पीड़ित, साधारण रोगी, बवासीर और मस्तिष्क रोग से पीड़ित, होता है।

(6):-अगर यदि छठे भाव का स्वामी इसी भाव में स्थित है तो निरोग, कंजूस, अपने शत्रुओं को हराने वाला, एवं अरिष्ट को नाश करने वाला, सुखी, साधारण धनी, तथा क्रुर ग्रहों की दृष्टि हो तो नाना रोगों से युक्त अभिमानी और परिवार को शत्रु समझने वाला,होता है।

(7):-षष्ठभाव का स्वामी सातवें भाव में स्थित हो तो एवं क्रूर ग्रह हो तो पत्नी कुरूप, लड़ाकू, अभिमानिनी, और व्यभिचारिणी होती है तथा शुभ ग्रह छठेंभाव का स्वामी हो तो संतान हीन, रूपवती, गुणवती स्त्री का पति होता है।

(8):-अगर यदि छठे भाव का स्वामी आठवें भाव में स्थित हो तो स्त्री मृत्यु के साधनों का ग्रहों के स्वरूप के अनुसार अनुमान करना चाहिए तथा जातक रोगी, अनेक व्याधियों से पीड़ित, दुखी और शत्रुओं के द्वारा कष्ट पाने वाला होता है।

(9):-यदि षष्ठेश नौवें भाव में स्थित हो तो निरोग, सम्माननीय, धर्मात्मा, और मित्रों से युक्त होता है।

(10):-अगर यदि छठे भाव का स्वामी दशम भाव में स्थित हो तो पिता से स्नेह करने वाला, पिता रोगी रहने वाला,माता की सेवा करने वाला, निरोग बलवान, ऐश्वर्यवान, साहसी होता है किंतु षष्ठेश क्रूर ग्रह हो तो इसके विपरीत फल मिलता है।

(11):-अगर यदि छठेभाव का स्वामी ग्यारहवें भाव में स्थित हो तो शत्रुओं से कष्ट , पशु व्यापार से लाभ और निरोग तथा साहसी होता है अगर यदि यही क्रूर ग्रह हो तो रोगी, शत्रुओं से दुखी और अभिमानी होता है।

(12):-षष्ठेश यदि बारहवें भाव में स्थित हो तो रोगी, दुखी, और व्यापार से धन कमाने वाला जातक होता है।

अब आप लोगों को ग्रहों के शुभत्व और पापत्व के बारे में जानकारी रखना परम आवश्यक है क्योंकि इसके बिना आपलोग कुण्डली में सही फल को नहीं समझ पायेगें एवं रोगों की सम्पूर्ण जानकारी भी नहीं हो पायेगी। इसलिए पहले इसको समझते हैं।

ग्रहों को पाप और शुभ भी कहा करते हैं। इससे आप लोग यह ना समझ ले कि वे ग्रह जो पापी कहे जाते हैं सचमुच कोई पाप कर्म किया करते हैं ,क्या ज्योतिष में पाप और शुभ नाम से अभिप्राय है कि जिन ग्रहों का पाप नाम दिया जाता है, वे ग्रह स्वाभाविक रूप से अनिष्ट और अशुभ फल प्रदान करते हैं। इसी प्रकार जिन को शुभ कहा जाता है वे स्वभावतः उपकारी और शुभ फल देने वाले होते हैं। परंतु यह कभी-कभी इसके विपरीत फल भी देते हैं। ऐसा देखा गया है कि कभी-कभी दुर्जन व्यक्ति भी समय, संगति आदि के शुभ प्रभाव में पड़कर अच्छा काम करता है और कभी कभी अच्छे सज्जन भी कुसंगति और किसी विशेष प्रभाव की कुचक्र में पड़ कर गलत कार्य कर बैठते हैं। इसी प्रकार ग्रहों को भी जानना चाहिए। क्योंकि फलादेश के प्रकरण में ऐसे बहुत से दृष्टांत मिलते हैं।

सूर्य,मंगल,शनि,राहुऔर केतु पापग्रह हैं,तथा बृहस्पति, शुक्र शुभग्रह हैं। बुध भी शुभग्रह है पर इनपर संगति का प्रभाव पड़ता है। यदि यह शुभ ग्रह के साथ रहे या शुभग्रह के क्षेत्र में हो पर किसी पाप ग्रह के साथ नहीं हो तो शुभ फल देते हैं! उसी प्रकार पापा ग्रह के क्षेत्र में रहेंगे तो अशुभ फल देंगे। यदि बुध अकेले हो तो शुभ फल देते हैं अब रही

बात चंद्रमा की यह ग्रह जब अपनी पूर्ण ज्योति में रहते हैं तो शुभ और क्षीण चन्द्रमा अशुभ होते हैं।

यथा--

"नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता
पूर्णेति तिथ्योऽशुभमध्यशस्ताः।
सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः
सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः।।

शुक्पक्ष में प्रतिपदा से पंचमी तिथि तक चन्द्र अशुभ, षष्ठी से दसमी तक मध्यम,तथा एकादशी से पूर्णिमा तक चन्द्रमा शुभ होते है। ठीक इसके बिपरीतक्रम से कृष्ण पक्ष में जान लेना चाहिए।

आइए अब जानते हैं कालपुरुष और ग्रह के बारे में कालपुरुष का सूर्य ग्रह आत्मा मानेगये हैं। चन्द्रमा मन, मंगल पराक्रम तथा धैर्य,बुध वाणी, बृहस्पति ज्ञान और सुख, शुक्र काम और शनि को दुःख बताया गया है। अगर यदि हम ग्रहों के रंग का विचार करें तो सूर्य से लाल तथा लाली गोराई, चन्द्रमा से श्वेत, मंगल से अतिलाल (रक्त-गौर),राहु और बुध से हरा तथा श्यामवर्ण, बृहस्पति से पीत तथा काञ्चन वर्ण, शुक्र से चित्र (रंग-विरंग)तथा श्याम-गौर एवं शनि, राहुऔर केतु से कृष्ण वर्ण बतलाया है। मनुष्य के रंग बतलाने में ये सब बहुत उपयोगी होंगे।

ग्रहदिशा विचार करें तो ग्रहों को भिन्न-भिन्न दिशा का स्वामी भी माना जाता है। जैसे- पूर्वदिशा का स्वामी सूर्य,अग्नि कोण का शुक्र,दक्षिण दिशा का मंगल,नैऋत्यकोण का राहु, पश्चिम दिशा का शनि, बायब्यकोण का चन्द्रमा, उत्तर दिशा का स्वामी बुध,और ईशानकोण के स्वामी बृहस्पति हैं।

ग्रहों का स्त्री-पुरुष भेद विचार करें तो ग्रहों को स्त्री और पुरुष दोनों कहा गया है। जैसे- सूर्य,मंगल,बृहस्पति पुरुष ग्रह हैं,तथा चन्द्र, शुक्र स्त्री ग्रह माने जाते हैं,बुध और शनि को नपुंसक ग्रह कहते हैं, तथा राहु एवं केतु को छाया ग्रह कहा गया है।

ग्रहों के तत्व का विचार करें तो पंचभूत में से मंगल अग्नि-तत्व, बुध पृथ्वी-तत्व, बृहस्पति आकाश-तत्व,
शुक्र जल-तत्व,और शनि वायु-तत्व का सूचक है।

रोग आदि विचार के लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि सूर्य अस्थि का स्वामी तथा पित्त कारक है। चंद्रमा रक्त का स्वामी और वातश्लेष्मा -कारक है। मंगल मज्जा (हड्डी के अंदर की गुड्डी) का स्वामी एवं पित्त कारक है। बुध चर्म(चमड़ा) का स्वामी एवं वात्त- पित्त- कफ (त्रिदोष) कारक है। वृहस्पति चर्बी का स्वामी और कफ कारक है।

शुक्र वीर्य का स्वामी और कफ- कारक। शनि स्नायु (शिरा नस इत्यादि) का स्वामी और वात्तश्लेष्मा- कारक है। राहु और केतु वायु कारक है।

अभी तक आप लोग नेमी चंद्र शास्त्री द्वारा रचित "भारतीय ज्योतिष" ग्रंथ के अनुसार रोगविचार परंपरा के बारे में जानकारी प्राप्त किए हैं। अब आइए जातक पारिजात के अनुसार रोग विचार को समझते हैं।लेकिन इसके लिए सर्वप्रथम ग्रह,राशिस्वामी, उच्च अंश, नीचस्थान,नीच अंश,मूलत्रिकोण राशि,पापत्व,शुभत्व,कालात्मादि,रंग, दिशा, पुरुष,स्त्री,तत्व एवं धातु का विचार करना परम आवश्यक है।

(1):- सूर्य:- सिंह राशि के स्वामी है,मेष राशि में 10 अंश पर उच्च के होते है। तथा इनकी नीच राशि तुला है, 10 अंश तक, एवं मूलत्रिकोण राशि 1से 20अंश तक सिंह है,तथा पापग्रह के रुप में जाने जाते है, सूर्य को आत्मा माना जाता है,तथा इनका रंग लाल,लालीगोराई, पूर्व दिशा के स्वामी, पुरुषग्रह, अग्नितत्व, पित्त धातु एवं अस्थि (हड्डीयों) के कारक हैं।

(2):- चन्द्रमा:- कर्कराशि के स्वामी हैं,वृषराशि में 3 अंश तक उच्च के होते है,एवं बृश्चिक राशि में 3अंश तक नीच के हो जाते हैं।और इनकी मूलत्रिकोण राशि भी 4 अंश से 30 अंश तक बृष है,क्षीण होने पर षष्ठी तिथि कृष्ण पक्ष से शुक्ल दसमी तक पापग्रह की संज्ञा होती है, तथा शुक्लपक्ष एकादशी से कृष्णपक्ष पंचमी तक शुभग्रह माने जाते हैं। ये मन के कारक है, सफेद रंग है इनका,तथा वायब्य,पश्चिम एवं उत्तर दिशा के स्वामी हैं। स्त्री ग्रह, जलतत्व, वात-श्लेष्मा एवं रक्त चन्द्र की धातु है।

(3):- मङ्गल:- मेष एवं बृश्चिक राशि के स्वामी हैं, मकर राशि में 28 अंश पर उच्च के होते हैं,तथा कर्क राशि में 28 अंश पर नीच के हो जाते हैं। इनकी मूलत्रिकोण राशि 1 से 18 अंश तक मेष राशि है। और ये पापग्रह हैं। पराक्रम और धैर्य के कारक है, इनका रंग अतिलाल,रक्तगौर है, दक्षिण दिशा के स्वामी है,पुरुषग्रह है,अग्नितत्व है एवं पित्त-मज्जा मङ्गल की धातु है।

(4):- बुध:- मिथुन और कन्या राशि के स्वामी हैं,एवं कन्या राशि में 15 अंश पर उच्च के होते है,तथा मीन राशि में 15 अंश पर नीच के हो जाते हैं।इसी प्रकार कन्या राशि 16 से 20 अंश तक मूलत्रिकोण राशि बुध की होती है, बुध पापग्रह के साथ रहने पर पापग्रह होते है, तथा शुभग्रह के साथ रहने पर शुभग्रह कहे जाते हैं। बुध वाणी के कारक हैं,एवं इनके हरा,श्यामवर्ण(रंग) होता है। उत्तर दिशा के स्वामी, नपुंसक ग्रह,पृथ्वी तत्व, तथा चर्म,वात,पित्त,कफ, त्रिदोष बुध की धातु है।

(5):- बृहस्पति:-धनुऔर मीनराशि के स्वामी हैं,कर्कराशि में 5 अंश पर उच्च के होते हैं,तथा मकर राशि में 5 अंश पर नीच के हो जाते हैं, धनुराशि में 1अंश से लेकर 13

अंश तक मूलत्रिकोणस्थ होते हैं।और ये शुभग्रह हैं, सुख तथा ज्ञान के कारक हैं। इनका रंग पीत एवं काञ्चन है, ईशान ,पूर्व, उत्तर दिशा के स्वामी हैं। पुरुषग्रह, आकाश तत्व, चर्वी तथा कफ धातु के अधिपति बृहस्पति हैं।

(6): - शुक्रः- वृष और तुला राशि के स्वामी हैं, मीनराशि में 27 अंश पर उच्च के होते हैं,तथा कन्या राशि में 27 अंश पर नीच के हो जाते हैं, तुलाराशि में 1 अंश से 10 अंश पर मूलत्रिकोणस्थ होते हैं। तथा ये शुभग्रह हैं, ये काम के कारक हैं, चित्र, रंग-विरंग श्यामगौर वर्ण, अग्नि,दक्षिण, पूर्व दिशा के स्वामी हैं, स्त्री ग्रह हैं, जल तत्व तथा वीर्य,कफ,वात धातु के स्वामी शुक्र हैं।

(7): - शनिः- मकर एवं कुम्भ राशि के स्वामी हैं,तुलाराशि में 20 अंश पर उच्च के होते हैं, तथा मेष में 20 अंश तक नीच के हो जाते हैं। इनकी मूलत्रिकोण राशि कुम्भ 1अंश से 20 अंश तक है, ये पापग्रह हैं। दुःख के कारक, कृष्णवर्ण, पश्चिम दिशा के स्वामी, नपुंसक ग्रह ,वायु तत्व एवं स्नायु,वात,श्लेष्मा धातु के स्वामी शनि हैं।

(8):- राहुः- कन्या और मेष राशि के स्वामी हैं,तथा वृष- मिथुन राशि में उच्च के होते हैं, एवं वृश्चिक -धनु राशि में नीच के हो जाते हैं। कर्क राशि इनकी मूलत्रिकोण राशि है, ये पापग्रह हैं। कृष्ण वर्ण है इनका, नैऋत्य,पश्चिम, दक्षिण दिशा के स्वामी हैं। छाया ग्रह हैं,वायु राहु की धातु है।

(9):-केतुः- तुला राशि के स्वामी हैं, एवं वृश्चिक-धनु राशि में उच्च के होते हैं,वृष-मिथुन में नीच माने जाते हैं, मकर राशि शनि के मूलत्रिकोण राशि है, पापग्रह हैं, कृष्ण वर्ण के केतु हैं।

अब इस विषय को जानने बाद आप लोग रोगपरम्परा को ज्योतिष विषय के माध्यम से भलीभांति फलादेश कर पायेगें चूंकि जातक के रोग के विषय में पहले भी बताया गया है। पुनः समझते हैं उरोक्त सुत्र के अनुसार चूंकि सूर्य पित्त धातु के कारक हैं,एवं चन्द्रमा वातश्लेष्मिक, मंगल पित्त, बुध वात्त,पित,कफ अर्थात त्रिदोष, बृहस्पति, कफ,शुक्र, कफ एवं वायु, शनि वात्तश्लेष्मिक तथा राहु और केतु वायु प्रधान धातुओं के कारक हैं। अगर सूर्य पीड़ा कारक होता है तो जातक को पित्त से उत्पन्न हुई पीड़ा होती है। चन्द्रमा से पीड़ा कारक होने से वात्तश्लेष्मिक पीड़ा होती है। इसी प्रकार मंगल से पित्तज पीड़ा, बुध से त्रिदोष जनित रोगों का विचार करना चाहिए। बृहस्पति से कफजनित पीड़ा, शुक्र से कफ एवं वायु जनित पीड़ा, शनि से वात्तश्लेष्मिक पीड़ा एवं राहु-केतु से वायुप्रधान विकार से उत्पन्न रोग होता है।

इसके बाद जानने की यह बात है कि इन प्रधान सातों ग्रहों का किस-किस अंगों पर विशेष अधिकार है। किस ग्रह में किस धातु की प्रधानता है,एवं अस्थि, रूधिर आदि

शारीरिक पदार्थों पर किस ग्रह का आधिपत्य है। यह बात विचारणीय है। तथा इन ग्रहों की शक्ति प्रधानता मनुष्य के शरीर में किस प्रकार की है इस बात को और आइए जानते हैं।

शिर:-(मस्तक रोग विचारणीय ग्रह):- शरीर में शिर का विचार सूर्य ग्रह से किया जाता है ,साथ ही हड्डियों पर भी इनका अधिकार है। एवं प्राणाधार एवं मर्म स्थानीय शक्ति से सम्बंधित रोगों का भी विचार सूर्यग्रह से ही करते हैं।अग्नि तत्व और पित्त धातु सूर्यग्रह की है।

मुख:-(मुखरोग विचारणीय ग्रह):-शरीर में मुख एवं पालन शक्ति, पौष्टिकता, रूधिर (खुन) सम्बंधित रोगों का विचार चन्द्रमा से करतें हैं। तथा ये जल तत्ववालेऔर वात्तश्लेष्मिक इनकी धातु है।

कानरोग:-(विचारणीय ग्रह):- शरीर में कान , नस आदि ,शोध एवं जलन सम्बंधित आदि रोगों का विचार मंगलग्रह से किया जाता है। अग्नितत्व तथा पित्तधातु मंगल की है।

पेट:- (रोग विचारणीय ग्रह):- बुधग्रह से पेट,चर्म शारीरिक नसों की शक्ति, विषयक रोगों का विचार किया जाता है।तथा बुध के पित्त,कफ वायु अर्थात त्रिदोष इनकी धातु है, तथा पृथ्वी तत्व बुध के है।

गुरदा:- (रोग विचारणीय ग्रह):- बृहस्पति से गुरदा एवं माँस, चर्वी, रक्ताधिक्य, एवं स्थूलता विषयक सम्बंधित रोगों का विचार करना चाहिए। बृहस्पति के आकाश एवं शब्द तत्व हैं, एवं इनकी कफ धातु है।

नेत्र:-(रोग विचारणीय ग्रह):- शुक्र से नेत्र एवं वीर्य पंछा एवं नसों के अन्तर्गतरस सम्बंधित रोगों का विचार किया जाता है। शुक्र जल तत्व के,तथावायु धातु के हैं।

पैर:- (रोग सम्बन्धित विचारणीय ग्रह):- शनिग्रह से पैर मज्जा, प्रगाढ़ता सम्बन्धित रोगों का विचार किया जाता तथा शनि के वायु तत्व एवं वायु धातु है।

अब आइए जानते हैं कि ग्रहों के अनुकूल एवं प्रतिकूल भेद के अनुसार शरीर के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है।

(1):- यदि **सूर्य:-** बली हो तो मनुष्य की हड्डी पुष्ट और मजबूत होती है अन्यथा सूर्य की दुर्बलता के अनुसार हड्डी भी दुर्बल होती है। सूर्य के निर्बल होने से जातक के मस्तिष्क में भी दुर्बलता आती है। सूर्य के पीड़ित रहने से राजकोप एवं ईश्वर अकृपा से

सिर में दर्द पीत ज्वर, मिर्गी, क्षय रोग, उदर एवं कलेजी की बीमारी, नेत्र रोग, अस्थि रोग और शूल रोग से जातक पीड़ित होता है।

(2):- **चंद्रमा:-** के बली होने से शरीर में रुधिर का प्रवाह अच्छा होने के कारण मनुष्य स्वस्थ होता है! परन्तु यदि चंद्रमा पाप हो तो मनुष्य को मूत्र-कृच्छ रोग, नासिका रोग, कफ जनित रोग, ज्वर एवं कफादि पीड़ा, पीनस रोग ,पांडु रोग, स्त्री प्रसंग एवं व्यभिचार जनित रोग, अतिसार, मन्दाग्नि एवं, रुधिर विकार जनित रोग से जातक पीड़ित होता है।

(3):- मंगल :-के बली होने से मनुष्य की हड्डियां मजबूत होती हैं। परन्तु मंगल के दोषी रहने से अंडकोष वृद्धि, कफ, फोड़े, फुंसी आदि रुधिर प्रकोप जनित पीड़ायें, पीतज-ज्वर ,वायु जनित पीड़ा, कुष्ट एवं शस्त्र आदि से भय होता है। ऐसे मनुष्य को प्रायः उर्द्ध भाग में पीड़ा होती है। साथ ही दरिद्रता के कारण जिन रोगों की उत्पत्ति होती है, उन रोगों से ऐसा जातक पीड़ित रहता है।

(4):- बुध:- के शुभ होने से मनुष्य के शरीर का चमड़ा सुंदर एवं रोग रहित होता है। परंतु बुद्ध के अनिष्ट कारी होने से उदर एवं गुह्यस्थान में वायु प्रकोप से रोगों की उत्पत्ति होती है तथा त्रिदोष विकार से ज्वर, मंदाग्नि, शूल ,ग्रहणी, कुष्ट,चर्म रोग, कमलाक्ष, पांडुरोग, गला एवं नासिका रोग होता है।

(5):- बृहस्पति:- उच्च अथवा सुभदायी हो तो मस्तिष्क की शक्ति अच्छी होती है। परंतु क्लेसित रहने से प्लीहा,ज्वर, कफ जनित रोग, मस्तिष्क विकार से रोग, बेहोशी, कर्ण रोग एवं मानसिक दुख का मनुष्य भाजन बनता है।

(6):- शुक्र:- यदि शुभ हो तो वीर्य की पुष्टि और काम शक्ति में उत्तेजना होती है। यदि शुक्र पापा ग्रह हो तो स्त्री -सहवास जनित पीड़ा, मादक द्रव्य के सेवन से दुख जनेन्द्रिय रोग, पांडु रोग, बहुमूत्र रोग, कफ-वायु जनित रोग, नेत्र रोग एवं क्षय रोग होती है।

(7):- शनि:- यदि शुभ हो तो स्नायु -जनित अंग दृढ़ एवं मजबूत होते हैं, और शनि के अशुभ रहने से वायु एवं कफ के प्रकोप से गठिया आदि रोग, उदर रोग, पक्षाघात ,लकवा , अंग भंग इत्यादि क्लेश एवं दरिद्रता से उत्पन्न रोग होते हैं।

(8)- राहु :-के विपरीत होने से मृगी , चेचक, कुष्ठ रोग, कृमि रोग, पैरों में पीड़ा एवं सर्प से भय होता है और कभी-कभी यह ग्रह अपने प्रभाव द्वारा आत्महत्या संकल्प बुद्धि को उत्तेजित करता है।

(9);- केतु :-केतु के विकार से कण्डु ,चेचक आदि रोग होते हैं।

अब मूल रुप से कहीं-कहीं संक्षिप्त रुप में सूर्यादि ग्रह सम्बन्धित रोगों का विचार इस प्रकार भी किया गया है।

सूर्य:- मुँह में बार बार थूक इकट्ठा होना, झाग निकलना, धड़कन का अनियंत्रित होना, शारीरिक कमजोरी और रक्तचाप इत्यादि रोगों का विचार सूर्य से किया जाता है!

चन्द्रमा:- दिल और आँख की कमजोरी का विचार किया जाता है।

मंगल :- रक्त और पित्त संबंधित बीमारी, नासूर ,जिगर, पित्त, अमाशय ,भगंदर और फोड़े फुंसी इत्यादि का विचार मंगल से किया जाता है।

बुध:- चेचक, नाड़ियों की कमजोरी, जीभ और दांत इत्यादि रोगों का विचार किया जाता है!

बृहस्पति:- पेट की गैस और फेफड़े की बीमारियों का विचार किया जाता है।

शुक्र:-त्वचा,दाद,खाज, खुजली इत्यादि रोगों का विचार किया जाता है।

शनि:- नेत्ररोग और खाँसी इत्यादि रोगों का विचार किया जाता है।

राहु:-बुखार, दीमागी समस्या,अचानक चोट लगना दुर्घटना इत्यादि रोगों का विचार किया जाता है।

केतु:- रीढ़,जोड़ो का दर्द, शुगर,कान,स्वप्नदोष,हार्निया, गुप्तांग सम्बन्धित रोगों का विचार किया जाता है।)

।।अनिष्ट सूर्यादि ग्रहों से उत्पन्न रोग।।

पित्तामाक्षिशिरोव्यथा खररुचौ दुष्टेऽथ चन्द्रेऽनिल-
प्राधान्यं कफवातमेहज रुजाभीतिस्ततो भूमिजे।
पितासृग्ब्रगाभीरथो शशिसुते त्रैदोपमोहादयो
रोगा अप्यथ देवमंत्रिणि कफच्छर्दी ज्वरार्त्तिर्भवेत्।
दैत्येज्ये कफवातमेहजरुजा स्त्रीसङ्गमादुद्भवे-
दार्कौ श्वासरुजानिलोदरजरुग्भीरस्ति गुह्ये व्यथा।
राहौ सर्पजलाभ्दयं कटितटे पीडा विषूच्या भयं
केतौ भूतपिशाचभीर्विकलता सर्वत्र खेटस्थिते।।

(चिकित्सा ज्योतिष पृष्ठ सं. 22)

यदि जन्मकुंडली, प्रश्नकुंडली, या लग्न कुण्डली में सूर्यग्रह अरिष्टकारक हो तो नित्य शिर में रोग,ज्वर की वृद्धि, दीपन (दाह) क्षय (तपेदिक) अतिसार दस्त इत्यादि रोग समुह से तथा राजा, देवता एवं ब्राह्मण से चित्त दुःखी रहता है।

अभीतक तो आप लोग ग्रह से सम्बंधित रोगों के बारे में जाकारी प्राप्त किये अब आइए देवता- देवी-अप्सरा भूत-पिशाच , एवं ग्रहों से सम्बंधित रोगों के बारे में समझतें हैं।

चन्द्र जनित रोग:-

पाण्डदोषजलदोषकामलापीनसादिरमणीकृतामयैः।

कालिकासुर सुवासिनीगणैराकुलं च कुरूते तु चन्द्रमा।।

यदि " चन्द्रमा" अरिष्टप्रद हो तो पाण्डु रोग, (जलोदर) जलदोष, (जल से उत्पन्न रोग) कामिला (कमलवायु) पीनस (नासिका जन्य रोग) इत्यादि तथा स्त्री से उत्पन्न रोगों से एवं कालिका और अप्सराओं के गणों से चित्त को व्याकुल करता है।

मंगल जनित रोग:-

तृष्णासृक्कोपपित्तज्वरमनलविषास्त्रार्तिकुष्ठाक्षिरोगान्,
गुल्मापस्मारमज्जाविहतिरूषतापभिकादेहभङ्गान् ।
भूषारिस्तेन पीडा सहजसुतसुहृद् वैरयुध्दं विधते,
रक्षोगन्धर्वघोरग्रहभयमवनीसूनुरूर्ध्वाङ्गरोगम्।।

यदि "मंगल " अरिष्टप्रद हो तो पीनवीज, (अण्डकोषवृध्दि) कफ,शस्त्रभय, अग्निदाह, ग्रन्थिरोग । व्रण (विस्फोटक) और दरिद्रता से उत्पन्न रोगों से एवं वीरभद्रादि शिवगण तथा भैरवादियों से शीध्र भय होता है।

बुध जनित रोग:-

भ्रान्तिर्दुर्वचनं दृगामयगलप्राणोत्थरोगान् ज्वरं
पित्तश्लेष्मसमीरजं विषमपि त्वग्दोषपाण्डवामयान्।
दुः स्वप्नञ्च विवर्चिका निपतनं पारूठ्यदान्यश्रमान् ,
गन्धर्वाक्षितिहर्म्यवासिमयुभिर्ज्ञो वक्ति पीड़ा खगैः।।

यदि "बुध" अरिष्टकारक हो तो गुह्यरोग (गुप्तरोग) उदररोग(पेट के रोग) अदृश्यरोग (रतोंधी इत्यादि) वातकुष्ट,मन्दाग्नि अजीर्ण(शूलरोग नसों का रोग)
ग्रहणी रोग (संग्रहणी वा दस्त) इत्यादि से एवं विष्णु के बुधादि प्रिय दासों से अर्थात् विष्णुगणों से अत्यन्त दुःख करता है।

बृहस्पति, शुक्र जनित रोग: -

आचार्यदेवगुरूभूसुरशापदोषैः
शोकं च गुल्मरूजमिद्रगुरुः करोति।
कान्ताविकारजनिमेहरुजासुराद्यैः
स्वेष्टाङ्गनाजनकृतैर्भयमासुरेज्यः।।

यदि गुरु अरिष्ठ कारक हो तो आचार्य (वेद शास्त्र पढ़ने वाला) देवता, गुरु , मंत्र उपदेशक ब्राह्मण आदि के शाप के दोष से शोक और गुल्म रोग प्रदान करता है।
शुक्रवार अरिष्ट कारक हो तो स्त्रियों के प्रसंग से उत्पन्न प्रमेह आदि रोगों से और असुरों से एवं अपने मित्र तथा स्त्री जनों के कृत्य से भय होता है।

शनि जनित रोग:-

दारिद्र्यदोषनिजकर्मपिशाचचोरैः ।
क्लेशं करोति रविजः सहसन्धिरोगैः।।
वातश्लेष्मविकारपादविहवीरापत्तितन्द्रीश्रमान् ।

भ्रान्तिं कुक्षिरुगन्तरुष्णभृतकध्वंशच पश्वाहितम्।
भार्यापुत्रविपत्तिमङ्गविहतिं हृत्तापमर्कात्मजोः ,
वृक्षाश्मक्षतिमाह कश्मलगणैः पीडां पिशाचादिभिः।।

यदि शनि अरिष्ट कारक हो तो निर्धनता से उत्पन्न दोषों से एवं पूर्व संचित स्वकर्मो से तथा पिशाच चोर और सन्धिरोगों से दुःख को प्राप्त करता है।

राहु जनित रोगः-

स्वर्भानुस्तनुतापकुष्ठविठमत्याधीन् विषं कृतिमम्।
पादार्तिं च पिशाचपन्नगभयंच भार्यातनुजापदम्।।

यदि राहु अरिष्ट कारक हो तो मिर्गी, मसूरी, छुद्र, कृमी इत्यादि रोगों से एवं प्रेत, पिशाच, भूत बाधा से तथा बंधन, अरुचि (अजीर्ण) और कुछ तो रोगों से मनुष्य को अत्यंत भय करता है।

केतु जनितरोगः-

कण्डूमसूरिरिपुकृत्रिमकर्मरोगैः ।
स्वाचारहीनलघुजातिगणैश्च। केतुः।।

"केतु " अरिष्टप्रद हो तो (खुजली) मसूरी (मसूरिका) शत्रुजनित तथा कृत्रिमकर्म रोगों से और आचार हीन अन्त्यजजाति समुह से दुःख को करता है।

अब आप लोग इस बात की जानकारी प्राप्त करेगें कि , यहां पर कुछ योगों का वर्णन किया जा रहा है जिससे यह ज्ञात होता है कि रोगी की मृत्यु कितने दिन में होगी।

(1):- यदि पापग्रह द्वितीयभाव या प्रथम भाव में स्थित हो तो रोगी चौदह दिन तक जीवित रहता है।

(2):- यदि पापग्रह दशम और चतुर्थ भाव में स्थित हो तो दस दिन में मरण होता है।

(3):- यदि दसवें भाव में पापग्रह तथा तीसरे भाव में सूर्य हो तो दस दिन में मरण होता है।

(4):- यदि पापग्रह पहले, चौथे तथा आठवें भाव में हो तो आठ दिन में मरण होता है।

(5):- यदि दसवें भाव में पापग्रह हो तथा गुरु, शुक्र तीसरे भाव में हो तो जातक सात दिन में मरता है।

(6):- यदि पहले या आठवें भाव में पापग्रह हो तो रोगी तीन दिन में मरता है।

जीवन योगः-

(1):- यदि लग्नेश और चन्द्रमा को शुभग्रह देखते हो तो जातक स्वस्थ रहता है।

(2):- द्वितीयभाव, तृतीयभाव,षष्ठभाव, एकादशभाव में शुभग्रह स्थित हो तो व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

(3):- यदि बली शुभग्रह लग्न में बैठकर चन्द्रमा को देखे तो जातक स्वस्थ रहता है।

(4):- यदि शुभग्रह उच्च या मूलत्रिकोणस्थ हो तथा पहले भाव का स्वामी बलवान हो तो व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

(5):- यदि छठे, ग्यारहवें भाव में पापग्रह हो,केन्द्र में गुरु, शुक्र तथा पहले भाव में बुध व पूर्ण चन्द्रमा हो तो जातक स्वस्थ रहता है।

(6):- यदि बृहस्पति पूर्ण चन्द्रमा को लग्न में देखता हो तो जातक जीवित और स्वस्थ रहता है।

आरोग्य समय:- (1):- यदिगोचरक्रम से पहला भाव, उसका स्वामी तथा चन्द्रमा शुभग्रहों के साथ हो या दृष्ट हो तो रोग पीड़ा शान्त हो जाती है।

(2):- चन्द्रमा के आठवी राशि में जाने पर रोग शान्त होता है।

नक्षत्रों द्वारा रोग समाप्ति काल:-

रोग आरम्भ नक्षत्र।	------	समाप्त समय
मूल, अश्विनी, कृतिका	------	8 दिन में
पुष्य, ज्येष्ठा, उ.भा.पू.भा.	-----	7 दिन में
मघा।	------	20 दिन में
चित्रा,रोहिणी, भरणी,श्रवण	----	11 दिन में
धनिष्ठा, हस्त ,मूल	-----	15 दिन
उतराषाढ़ा,मृगशिरा	-----	1 मास

अभीतक तो आपलोग भली-भांति समझ गये होगें कि किस ग्रह से कौन सा रोग होता है ,आइए अब इनके के निदान के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।चूंकि किसी भी प्रकार के रोग की पीड़ा शान्त करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय हैं।

ग्रहों का उपाय:-ग्रहों के अनिष्टफल को दूर करने के लिए यंत्र,मंत्र,रत्न,औषधी,दान आदि करने का विधान है। ग्रहों के इन उपायों का भारतीय शास्त्रों में अच्छा विवरण दिया गया है।रत्न,मंत्र, आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र आदि में रत्न,मंत्र,औषधी दान योग तथा स्नान का शास्त्रीय तरीके से विवेचना की गयी

है। जिसके उपयोग करनेमात्र से ग्रहों को बल मिलता है,तथा वे रोगी को लाभ देकर रोगशान्त करते हैं।

उपचार:-

सूर्यादि नवग्रहों के लिए वैदिक शास्त्रों में मंत्र वर्णित है

यथा:-

आकृष्णेन रजसा--सूर्य,

इमं देवा -- चन्द्रमा,

अग्निर्मूर्धा----- मंगल,

उद्बुध्य स्वाग्ने -- बुध,

बृहस्पति$तिअदर्यो-- गुरु,

अन्ना त्परिस्रुतो----- शुक्र,

शन्नो देवीरभिष्टय--- शनि,

कयानश्चित्र--------राहु,

कतुं कृण्वन्नकेतवे--केतु

किसी व्यक्ति की कुण्डली में जो रोग देने वाला ग्रह हो या रोग कारक ग्रह दशा-अन्तरदशा चल रही हो तो इन ग्रहों के मंत्रों से अनुष्ठान करवाना चाहिए।

इसके अलावा ग्रहों के कुछ तांत्रिक मंत्र भी है जिसके जप द्वारा भी ग्रहों की शान्ति की जाती है।

सूर्य:- ऊँ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः, ऊँ घृणिः सूर्याय नमः ।

चन्द्रमा:- ऊँ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः, ऊँ चं चंद्रमसे नमः।

मंगल:- ऊँ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमायनमः, ऊँ अं अंगारकायनयः।

बुध:- ऊँ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः ,बुं बुधाय नमः।

गुरु:- ऊँ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः, ऊँ गुं गुरवे धमः।

शुक्र:- ऊँ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्रवे नमः, ऊँ शु शुक्राय नमः।

राहु:- ऊँ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः, ऊँ रां राहवे नमः।

केतु:- ऊँ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः, ऊँ कें केतवे नमः

सूर्यादि ग्रहों के मंत्र संख्या के अनुसार जप कराये या किये जाते है। इनकी जप संख्या इस प्रकार है सूर्य के सात हजार, चन्द्रमा के ग्यारह हजार, मंगल के दस हजार, बुध के नौ हजार,गुरु के उन्नीस हजार, शुक्र के सोलह हजार, शनि के तेरह हजार,राहु के अठारह हजार, केतु के सत्रह हजार, जप होते हैं। परन्तु वर्तमान समय में इनके चारगुना जफ होते है तभी प्रभि पड़ता है। अर्थात् सूर्यग्रह की जप संख्या

7000*4=28000 जप होते है। अठाइस हजार जप करने के पश्चात इसके दशांश का हवन, हवन के दशांश पर्पण करना चाहिए तर्पण के दशांश का अभिषेक, तथा इसके दशांश का ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

ग्रह	**जप संख्या**	**हवन संख्या**	**तर्पण संख्या**	**मार्जन संख्या**	**ब्राह्मण भोजन संख्या**
सूर्य।	28000	2800	280	28	3
चंद्र	44000	4400	440	44	5
मंगल	50000	5000	500	40	4
बुध।	36000	3600	360	36	4
गुरु	76000	7600	760	78	8
शुक्र	64000	6400	640	64	7
शनि	92000	9200	920	92	10
राहु।	72000	7200	720	72	8
केतु।	68000	6800	680	68	7

रत्न उपचार:- ग्रहों के अशुभ प्रभाव को दूर करने के लिए रत्न पहनना भी बहुत अच्छा उपचार है। इससे ग्रहों को बल मिलता है। तथा ग्रह लाभ देते है। रत्न परम्परा भी बहुत प्राचीन काल से चल रही है। जिसका वर्णन बृहत्संहिता तथा अनेक पुराणों में भी उपलब्ध है ।ग्रहों के अनुसार, उनके रंग,रुप के अनुसार रत्न धारण करने से ग्रह बली होकर शुभ फल देते है। तथा यदि इन ग्रहों के विपरीत रत्न पहनने से ग्रह अशुभ फल भी देते हैं।

रत्न पहनने से पहले अनेक बिन्दुओं पर विचार करना चाहिए। जिस किसी ग्रह का रत्न हमें पहनना हो, जन्मकुण्डली में वह उस योग्य होना भी चाहिए। क्योंकि रत्न पहनने के बाद उस रत्न से सम्बंधित ग्रह की किरणें उस व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करती है। यदि रत्न प्रतिकूल हुआ तो अनिष्टफल और अनुकूल हुआ तो उत्तम फल देता है। रोगादि से बचने के लिए प्रथमभाव के स्वामी का रत्न पहनना चाहिए, क्योंकि उससे उस व्यक्ति के शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि हो जाती है।और वह रोगों से लड़ सकता है। इसका प्रतिनिधित्व जन्मकुण्डली का प्रथमभाव करता है। इसलिए रोगों से बचाव के लिए जातक को पहले भाव के स्वामी का रत्न धारण करना चाहिए।

सूर्यादि ग्रह अर्थात् सूर्य के लिए माणिक्य, चन्द्रमा के लिए मोती, मंगल के लिए मूँगा, बुध के लिए पन्ना,बृहस्पति के लिए पुखराज, शुक्र के लिए हीरा, शनि के लिए नीलम, राहु के लिए गोमेद,तथा केतु के लिए लहसुनिया पहनना चाहिए।

मेषादि लग्न में पैदा हुए व्यक्ति रोग निवारण के लिए अपनी कुण्डली के पहले भाव के स्वामी के अनुसार निम्न रत्न धारण करना चाहिए--

जन्मलग्न	**लग्नेश।**	**रत्न**
मेष।	मंगल।	मूंगा
वृष।	शुक्र।	हीरा
मिथुन।	बुध।	पन्ना
कर्क।	चन्द्रमा।	मोती
सिंह	सूर्य।	माणिक्य
कन्या।	बुध।	पन्ना
तुला।	शुक्र।	हीरा
वृश्चिक।	मंगल।	मूंगा
धनु।	गुरु।	पुखराज
मकर।	शनि।	नीलम
कम्भ। .	शनि।	नीलम
मीन।	गुरु।	पुखराज

नक्षत्र जनित रोग:-

भाव तथा ग्रहों की भाँति नक्षत्रों से भी उत्पन्न होनेवाले रोगों का निर्धारण किया जाता है। प्रत्येक नक्षत्र अपने वर्ण,प्रकृति एवं स्वभाव आदि के अनुसार रोग प्रदान करते हैं---

अश्विनी नक्षत्र:- इस नक्षत्र में जन्म लेने वाले जातक को निम्नलिखित रोग होता है। पेट में कीड़े होना, वायु सम्बन्धित रोग, उदासी, अनिद्रा,तथा बुखार आदि रोगों का विचार इस नक्षत्र में जन्मे जातक के लिए करना चाहिए
ज्योतिष विज्ञान में ग्रहों के माध्यम से किसी भी जातक के अंग में होने वाले विकार को समझा जा सकता है। ग्रहों नक्षत्रों के माध्यम से रोग का अनुमान लगाया जा सकता है।

अश्विन नक्षत्र जनित रोग निदान:-इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक को बाल्यावस्था में कफ जनितरोग रोग से पीड़ित रहता है। अतः सवा रत्ती का लहसुनिया चाँदी में जड़वाकर सफेद धागे में रविवार के दिन दस से बारह बजे के मध्य उत्तर दिशा के तरफ मुख करके धारण करने से जातक को लाभ मिलता है।

(1):- भैरव नामावली का पाठ करें,भैरव मन्दिर में कड़वा तेल का दीपक जलावें।

(2):-बन्दरों को रविवार के दिन गुड़ खिलावें,केतु के तन्त्रोक्त मन्त्र का सात हजार जप करावें या करें।

भरणी नक्षत्र:- इस नक्षत्र से निम्नलिखित रोगो का विचार किया जाता है। मूत्रकृच्छ रोग, ज्वर,थकान,आलस्य की प्रवृति निर्बलता,निमोनिया एवं बुखार आदि रोग होते है।

अतः रंग -विरंगे कपड़े में चावल भरकर शुक्रवार के दिन संध्याकाल में भिक्षुक को दान करने से भरणी नक्षत्र जनित रोग ठीक हो जाते है।

(1):- गाय दान करें।

(2):- शुक्र मन्त्र के 20 हजार जप करे या करावें।

(3):- दही एवं शक्कर मिलाकर संध्या समय में दान करें।

कृतिकानक्षत्र जनित रोग:- इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक को उदर रोग होता है, साथ ही दाहिनी आंख की पीड़ा घबराहट, भय, दाह, गठिया ,बाय, घुटनों में दर्द तथा डायबिटीज आदि रोगों का विचार किया जाता है।

उपचार:-(1)- शास्त्रोक्त विधि से सूर्य के 6000 मंत्र का जप कराने से विशेष लाभ होता है।

(2)- ताम्रपत्र में गेहूं भरकर एक ताबे का सिक्का रखकर रविवार के दिन मध्यान काल में दान करें।

(3)- कनेर के फूलों को पानी में उबालकर उस पानी से स्नान करें

(4)-महरूम रंग के कपड़े में सवा किलो गेहूं बांधकर कृतिका नक्षत्र के दिन प्रातः काल के समय दान करें।

रोहिणी नक्षत्र:- रोहिणी नक्षत्र जनित निम्नलिखित रोग होते हैं। जैसे:- छय रोग ,मन की चंचलता, फेफड़ों का संकुचन, सिर का दर्द, तथा रक्तदाह आदि रोगों का विचार किया जाता है। साथ ही रक्त विकृति आदि रोग होते हैं।

उपचार:-(1)- सींप से जातक को दूध पिलाने चंद्रमा की शांति हेतु चंद्र गायत्री मंत्र के 10,000 जब करावें।

(2):- चावल, घृत ,शक्कर, मिलाकर दान करें।

(3):- चांदी का चंद्रमा बनाकर सफेद धागे में सोमवार की रात्रि में जातक को धारण करवाएं।

(4):- सफेद वस्त्र में पाव भर शर्करा एवं चांदी का टुकड़ा डालकर सोमवार को रात्रि के समय में दान करें।

मृगशिरा नक्षत्र:- इस नक्षत्र में जन्म लेने वाले जातक मंदबुद्धि ,एवं मस्तिष्क रोग से ग्रसित होता है ,साथ ही जुकाम, मलेरिया ,नजला ,खांसी ,तथा मस्तिष्क शूल आदि रोगों का विचार मृगशिरा नक्षत्र से किया जाता है।

उपचार (1):- जातक को लाल चन्दन का तिलक लगाना चाहिए।

(2):- आठ हजार जप, मंगल ग्रह की शान्ति व भौम गायत्री कराना या करना चाहिए।

(3):-ब्रहमचारी बालक को गुड़ से बनी हुई मिठाई खिलानी चाहिए।

(4):- सवा किलो गेहुँ लाल कपड़े में बाधकर मंगलवार के दिन प्रातः काल के समय भिखारी को दान देनि चाहिए।

आर्द्रा नक्षत्र:- इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक वायुविकार तथा मुखरोग से पीड़ित होता है। साथ ही इन्फलूएन्जा,माइग्रेन, चक्कर आना, घबराहट होना, तथा शिर दुखना आदि रोगों का विचार किया जाता है।

उपचार:- (1):-आर्द्रा नक्षत्र जनित रोगों की शान्ति के लिए राहु के तंत्रोक्त मंत्र का अठारह हजार जप करना या कराना चाहिए।

(2):- छतरी या जुतों का दान करना शुभप्रद होगा।

(3):- उड़द के लड्डू बनाकर दान करें।

(4):- एक पाव उड़द प्रत्येक रविवार के दिन काले कपड़े में बाँधकर संध्या समय में दान करें।

पुनर्वसु नक्षत्र:- इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक को निम्नलिखित रोग होते हैं। जैसे- शरीर के दायें हिस्से का दर्द, कमर व नितम्ब की पीड़ा, मांसपेशियों में दर्द,अक्षरज्वर,कमर दर्द,तथा चर्बी से शरीर का भारी होना,इत्यादि रोगों का विचार किया जाता है।

निदान:-(1):- विष्णु सहस्रनाम का पाठ करना चाहिए।

(2):- पाँच गाठ हल्दी,पावभर दाल,पाँच पीले फूल पीले वस्त्र में बाँधकर गुरुवार को ग्यारह से एक बजे के बीच में ब्राह्मण को दान करें।

(3):-पात्र में घृतभरकर शनिवार को प्रातः काल दान करना चाहिए, घृत एवं चावल का दान करना चाहिए।

पुष्य नक्षत्र:- पुष्य नक्षत्र:-इस नक्षत्र उत्पन्न हुए जातक को निम्नलिखित रोग होते है। जैसे- वायुविकार, कमर दर्द, उदरशूल ,असाध्यरोग, पैरों में दर्द,तेज बुखार तथा उदासीनता आदि रोगों का विचार किया जाता है।

उपचार:-(1)- स्टील के बर्तन में घी भरकर शक्कर सहित शनिवार के दिन गरीब को दान करें।

(2)- सवाचार रत्ती का कटहला चाँदी में मढ़ाकर मध्यमा अंगुली में शनिवार को धारण करें।

(3)- घर में गूगल के धूप जलाने।

(4)- ॐ शं शनैश्चराय नमः मंत्र का जप करें।

आश्लेषा नक्षत्र:- इस नक्षत्र में उत्पन्न बालक जन्म से ही पीड़ा भोगत है, साथ ही गुर्दा रोग ,विषपीड़ा, नसों में रोग, तथा आंतो में रोग एवं अक्सर पीलिया रोग से पीड़ित रहता है।

उपचार:- (1)- इसी नक्षत्र में प्रातः काल के समय बालक के वजन के बराबर सप्तधान्य दान करना चाहिए।

(2):- नक्षत्र की शांति करवाना चाहिए जिससे मूल शांति कहते हैं।

(3):- तुला दान अवश्य करना चाहिए।

(4):- बुध की शांति हेतु बुध के मंत्र के 10,000 जप करने व पन्ना धारण करने से लाभ होता है।

(5):- कांसे के पात्र में घी भरकर शर्करा सहित बुधवार के दिन दान करें।

मघा नक्षत्र:-इस नक्षत्र में उत्पन्न हुए बालक को सामान्यता सिरदर्द ,वक्ष पीड़ा ,कृमि रोग, हिस्टीरिया प्रेत बाधा ,घाव तथा पेट के कीड़े आदि ,रोगों का विचार इस नक्षत्र के उत्पन्न जातक के लिए किया जाता है।

उपचार:-(1):- चूकि मघा नक्षत्र मूल नक्षत्र के अंतर्गत आता है।अतः इस नक्षत्र की शांति 27 में दिन जरूर करा देनी चाहिए।

(2):- प्रत्येक बुधवार को बच्चे के वजन के अनुसार कबूतरों को अनाज डालें।

(3):- पानी में गूगल मिलाकर बच्चे को स्नान करवाना चाहिए।

(4):- बालक को सप्ताह में एक बार राई काजल पिलावें।

(5):- चावल और घृत मिलाकर केतु की शांति करनी चाहिए ,एवं वेदोक्त मंत्र के जप करवाना चाहिए।

(6):- सवातीन रत्ती का लहसुनिया रत्न धारण करना चाहिए।

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र:- इस नक्षत्र से निम्नलिखित रोगों का विचार होता है जैसे शरीर में रक्तचाप ,बुखार ,तथा शरीर में संकुचन रोगों का विचार, साथ ही कर्ण रोग, खून की कमी ,व आँतो की विकृति ,एवं कामज रोगों से ग्रसित रहता है

उपाय:-(1):- पार्थिव पूजन केसाथ महामृत्युञ्जयाष्टक का पाठ करें या करावें।

(2):- सवाचार रत्ती का जरकन चांदी की अंगूठी में मड़वाकर तर्जनी अंगुली में पहने,

(3):- चांदी के पात्र में जल पीये, व अनंतमूल की जड़ को भिगोकर अपने हाथ के एक पोर के जितना काटकर सफेद धागे में पिरो कर हाथ में बांधे।

(4):- शुक्रवार के दिन संध्या के समय चांदी की अंगूठी तर्जनी अंगुली में धारण करें।

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र:- इस में उत्पन्न बालक को निम्नलिखित रोग होते हैं जैसे- बालक को गर्मी, लू, लगना मधुमेह ,अस्थि रोग ,साथ ही अल्सर, पेट दर्द, एवं उदर से संबंधित होने वाले रोगों का विचार इस नक्षत्र से किया जाता है।

उपाय:- (1): - प्रतिदिन गायों को हरा घास खिलाना चाहिए।

(2):- प्रातः काल 11:00 बजे पावभर चावल, व पांच लाल पुष्प ,मंदिर में चढ़ावें।

(3):- गोदान करें या 4 कैरेट का मोती पहने।

(4):- पूर्व दिशा में मुख कर ताम्र पात्र में जल भरकर रखे वह गायत्री मंत्र के जप करें और ताम्रपत्र से सूर्य को अर्घ्य देवें।

(5):- ऐसे जातक को चाहिए कि "आर्यमा" के मंत्र का 10000 जब करावें।

हस्त नक्षत्र:- हस्त नक्षत्र में उत्पन्न बालक को जल संबंधित रोगों से ग्रसित रहते हैं, रक्त की कमी ,रक्तदोष, घबराहट ,टीवी ,उन्माद ,आदि रोगों की संभावना होती है, साथ ही वायु संबंधित विकार, उदर पीड़ा , आदि की संभावना भी होती है।

उपचार:-(1):- ऐसे जातक को चांदी के अर्ध आकर का चन्द्रमा बनवाकर सफेद धागे में पहनना चाहिए।

(2):- चांदी का दान करें , वह प्रदोष के दिन शिव अर्चना करें , वह महामृत्युंजय मंत्र का जप करें।

(3):- कमरे में गूगल का धूप जलाने एवं सायंकाल के समय तुलसी के पौधे के पास घी का दीपक जलाना चाहिए।

चित्रा नक्षत्र:- इस नक्षत्र में बालक को मस्तिष्क रोग, रक्त विकार ,व मज्जा रोग, होता है। साथ ही अर्बुद (ट्यूमर) का विचार, असाध्य रोग, मुहासे ,तथा फोड़े, फुंसी ,आदि रोगों का भी विचार इस नक्षत्र से किया जाता है।

उपचार:-(1)- चित्रा नक्षत्र की शांति हेतु वैदिक चित्रा नक्षत्र के मंत्र का 10000 जाप करें इससे शीघ्र लाभ होगा।

(2) लाल वस्त्र में आटा ,केला,मसूर की दाल तथा चांदी का टुकड़ा, डालकर मंगलवार के दिन पूर्वान्ह के समय हनुमान जी के मंदिर में चढ़ाने।

स्वाती नक्षत्र:- इस नक्षत्र में उत्पन्न बालक को बाल संबंधी समस्या होती है। जैसे बाल का उड़ना, मुख पर सूजन आना ,गर्दन में दर्द, तथा भ्रम आदि रोगों का विचार इस नक्षत्र से किया जाता है। साथ ही ज्वर व संक्रामक रोग, भी होते हैं।

उपचार:- (1):- एसे जातक जाती पुष्प की जड़ काले कपड़े में बांधकर धारण करनी चाहिए।

(2):- भिखारियों को या विकलांगों को उड़द के लड्डू या कंगन खिलाना चाहिए।

(3):- स्वाति नक्षत्र की शान्ति हेतु राहु के वेदोक्त मंत्र के 18000 जप करें या कराने से लाभ मिलता है।

विशाखा नक्षत्र:-इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक को निम्न रोग होते है। जैसे- शरीर का भारी होना ,थाइराईड, मस्तिष्क पीड़ा ,कुक्षिशूल, डायबिटीज , गाँठे बनना आदि रोगों से दु:ख पाता है।

उपचार:-(1)- बृहस्पतिवार को प्रातः काल एख पाव दाल भिगोकर दिन में 12:00 से 2:00 के मध्य में गाय को खिलाने।

(2):- विशाखा नक्षत्र की शांति के लिए, गुंजा की माला पहने , चंदन जल में डालकर स्नान करें ,केशर मिश्रित दूध पिए।

(3):- बृहस्पति के तंत्रोक्त मंत्र का जब करें या ब्राह्मण द्वारा करावें।

अनुराधा नक्षत्र:- इस नक्षत्र में उत्पन्न हुए जातक को निम्नलिखित रोग हो सकते हैं, जैसे- अक्षर ज्वर, सिर दर्द, मोतीझरा रोग, उदर रोग, पैरों की पीड़ा, साथ ही रक्तदाह, पक्षाघात (लकवा)या किसी एक अंग का निष्क्रिय होना, जलन होना तथा कान दर्द ,आदि अनुराधा नक्षत्र जनित रोगों का विचार किया जाता है।

उपचार:-(1)- काले आसन पर बैठकर ,अनुराधा नक्षत्र के ,वेदोक्त मंत्र के 10,000 जप करें ,या ब्राह्मण द्वारा करावें।

(2)- लोहे के पात्र में काले तिल भरकर दक्षिणा सहित भिक्षुक को दान करें।

(3):- शनिवार को शिव मंदिर में घी का दीपक जलाने अनुराधा नक्षत्र जनित रोग दूर होते हैं।

(4):- प्रातः काल दुग्ध मिश्रित जल से शिवजी का रुद्राभिषेक करें।

जेष्ठा नक्षत्र:- इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक को टाइफाइड, आंतों का बुखार, शरीर में फुटन तथा मन में अशांति एवं बेचैनी रहती है। साथ ही यह नक्षत्र मूल नक्षत्र के अंतर्गत आता है। चूकि इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक क्रोधी, पेट में जलन,लीवर, पथरी, किडनी एवं आंतों के रोगों से ग्रसित होते हैं।

उपचार:-(1)- गणेश जी को दूध से निर्मित मूंग के लड्डू चढ़ावें व गणपति मंत्र के जप करें या किसी ब्राह्मण से करवा दें।

(2)- जेष्ठा नक्षत्र की शांति विद्वानपंडितों से करवावें 21 किलो सप्तधान्य दान करें।

(3):- कांसी के बर्तन में घी भरकर, घी में सुवर्ण डालकर बुधवार या जेष्ठा नक्षत्र के दिन दक्षिणा सहित दान करें।

(3):- सवा पांच रत्ती का फिरोजा रत्न धारण करना चाहिए।

मूल नक्षत्र:- इस नक्षत्र से शीत ज्वर का प्रकोप, अस्थमा, उच्च रक्तचाप ,संबंधित रोगों का विचार किया जाता है। साथ ही इस नक्षत्र को जटिल नक्षत्र मानते हैं ।इस नक्षत्र में उत्पन्न हुए बालक प्रगतिशील रहता है किंतु परिवार के लिए कष्टप्रद होता है। जातक को सिर में पीड़ा ,कान,मुँह ,दाँत ,से संबंधित रोग होते हैं।

उपचार:-(1)- मूल नक्षत्र के दिन, मूल नक्षत्र की विधि विधान से, मूल शांति करवानी चाहिए।

(2):- इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक को रविवार के दिन खेजड़ी के वृक्ष की पूजा कर, कड़वे तेल का दीपक जलाना चाहिए।

(3):- भैरव देव के सिंदूर का चोला चढ़ावे एवं भैरव मंत्र का जप करवाएं।

(4):- भूरे रंग की लहसुनिया सोने की अंगूठी में दूध एवं शुद्ध जल से धोकर धारण करें।

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र: - इस नक्षत्र में उत्पन्न बालक असाध्य रोगों से ग्रसित हो सकता है। साथ ही सिर दर्द ,हृदय व गुप्तांग से संबंधित रोग भी होते हैं ।शारीरिक दुर्बलता का रोग ,जनन इंद्रियों में विकृति आना,प्रमेह तथा लीवर जनित मूत्रकृच्छ रोग आदि का विचार किया जाता है।

उपचार:-(1)- भुवनेश्वरी का पूजन व देवी के मंत्र जप करने से लाभ प्राप्त होता है।

(2):- नक्षत्र जनित रोग से ग्रस्त होने पर श्वेत पुखराज धारण करना चाहिए।

(3):- मंदार वृक्ष की जड़ धारण करें, तिल ,चावल, एवं वस्त्र का दान करें।

(4):- घृत मिश्रित दूध या खीर शुक्रवार के दिन कन्या को खिलावें ,व नीले वस्त्र उपयुक्त दक्षिणा सहित दान करें।

(5)- सायंकाल घी का दीपक जलाकर आकाश में शुक्र के दर्शन करने से लाभ मिलता है।

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र:- इस नक्षत्र से निम्नलिखित रोग होते हैं ।रक्त संचार का अवरुद्ध होना, कमर में दर्द, गठिया बाय, मधुमेह, कटी पीड़ा, अस्थि रोग आदि से उत्तराषाढ़ा नक्षत्र जनित जातक पीड़ित होते हैं।

उपचार:-(1)- ताम्र पात्र में जल भरकर पीवे, व ताम्र पात्र में 7 चावल व रक्त चंदन डालकर 7 बार गायत्री मंत्र बोलते हुए सूर्य को अर्घ देने से लाभ मिलता है।

(2):- ब्राम्हण द्वारा गायत्री मंत्र का जप करवाना चाहिए।

(3):- गारनेट धारण करें 5 कैरेट का।

(4):- पूजा में सदैव घी का दीपक जलाने से भवन में गूगल का धूप करने से लाभ होता है।

(5):- रविवार या रवि पुष्य योग में स्वर्ण दान करें।

श्रवण नक्षत्र:- इस नक्षत्र से टीवी, एक्जिमा, दाद, खाज, खुजली, घुटने का दर्द, हैजा, पेचिश तथा घुटने का दर्द आदि रोगों का विचार किया जाता है।

उपचार:-(1):- इस नक्षत्र के देवता भगवान विष्णु है।इससे जातक त्रिदोष से युक्त व्याधियों से ग्रसित रहता है।

ऐसे जातक को सदैव श्वेत वस्त्र धारण करने चाहिए। एवं ललाट पर चंदन लगावें ,और भगवान शिव के दूध से अभिषेक करें।

(2):- गुरुवार के दिन विष्णु मंत्र के 10,000 जप करें या ब्राह्मण द्वारा करवायें।

(3):- चाँदी की कटोरी में दूध भरकर दान करें।

(4):- शिव महिमा स्तोत्र का नियमित पाठ करें।

(5):- सबीज वैदिक चंद्र मंत्र का ब्राह्मणों के द्वारा जप करवावें।

धनिष्ठा नक्षत्र:- इस नक्षत्र में जन्म लेने वाला व्यक्ति रक्त अतिसार, मस्तिष्क पीड़ा, मांसल पीड़ा, खूनी दस्त का होना, किसी अंग में चोट लगना, खांसी, पैर में चोट आना, इत्यादि रोगों से पीड़ित होता है।

उपचार:- (1):- मंगल की शांति कराने से धनिष्ठा नक्षत्र जनित रोग दूर होते हैं, मंगलवार को छाता, जूता, वाहन आदि दान करना श्रेष्ठ होता है।

(2):- एक पाव चने की दाल व एक पाव गुड़ व मंगलवार को भिक्षुक को दान देना चाहिए दक्षिणा सहित।

(3):- मंगलवार व शनिवार को तेल का दीपक जलाकर सुंदरकांड का पाठ करना चाहिए ।सवाचार रत्ती का जापानी मूंगा सोने में मड़वा कर धारण करना चाहिए।

(4):- भृंगराज की जड़ मंगलवार के दिन लाल वस्त्र में धारण करें।

(5):- मंगलवार के दिन लाल मसूर की दाल व गुड़ सांड को खिलावें।

शतभिषा नक्षत्र:- इस नक्षत्र से जलीय बीमारियों से जातक ग्रसित रहता है। व उल्टियां होना, पेचिश, सन्निपात, वायुजन्य ज्वर , सिर ,मुंह ,कर्ण, विषपीड़ा, बवासीर, गुप्तांग, मवाद पड़ना, हृदय पीड़ा, आदि रोगों का विचार इस नक्षत्र से किया जाता है।

उपचार:-(1):- विद्वान ब्राह्मण को बुलाकर राहु के मंत्र 18000 जप करें या करावें ,विधि-विधान से तो शीघ्र लाभ होता है।

(2):- जातक को सवाचार रत्ती का स्फटिक धारण करना चाहिए।

(3):- रविवार को कमल की जड़ भुजा में बांधे, लोहे के पात्र में तिल भर कर संध्या समय में दक्षिणा सहित भिक्षुक को दान देवें।

(4):- प्रतिदिन शिवालय में दुग्ध मिश्रित जल से शिवजी का अभिषेक करें वह मृत्युंजय मंत्र की माला करें।

पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र:- इस नक्षत्र से मानसिक विकृति, किसी अंग की विकृति, हृदय रोग, वमन आदि रोगों का विचार किया जाता है। साथ ही मलेरिया, इनफ्लुएंजा, निमोनिया, फूड प्वाइजन, वमन, हैजा। आदि, अनेक प्रकार के रोग से अक्रान्त करते हैं

। यदि बृहस्पति का नक्षत्र इस नक्षत्र से वेध करता हो तो जातक थायराइड, सूजन ,मोटापा, मांस पेशियों मैं दर्द जैसे लोगों को भोगता है। इस जातक को बृहस्पतिवार के दिन अनेक उपाय करने चाहिए।

(1):- श्वेत वस्त्र में चावल तथा ₹1 चांदी का रखकर मंदिर में चढ़ाना चाहिए अथवा किसी ब्राह्मण को दान देना चाहिए।

(2):- इस जातक को चावल उबालकर दही में मिलाकर बृहस्पति वार के दिन 11:00 से 1:00 के मध्य में भिखारियों को खिलाना चाहिए।

(3):- इस जातक को सुदर्शन कवच का नियमित पाठ एवं जप करना चाहिए।

उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र:- इस नक्षत्र से सम्बंधित निम्नलिखित रोग है।जैसे-दन्त रोग,दाँतों में दर्द,अंगों की निष्क्रियता, कब्ज एवं वात जनितरोग, साथ ही इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक को अतिसार, वातज ज्वर,कटिशूल,शून्यता, लकवा एवं मस्तिष्क में रोग होते है।यदि जातक को इसी नक्षत्र में बीमारी आरम्भ हो तो जातक लम्बे समय तक इस बीमारी से ग्रस्त रहता है। साथ ही उपचार के माध्यम से कभी ठीक रहता है तो कभी बीमार रहता है।

उपाय:- (1):- इस जातक को पीपल की वृक्ष की जड़ शनिवार के दिन प्रातः काल के समय पाँच से सात बजे के मध्य पीले वस्त्र में बाँधकर धारण करना चाहिए।

(2):-शनि की शान्ति के लिए सबीज वैदिक शनि मंत्र के जप विधि पूर्वक ब्राह्मण द्वारा कराना चाहिए।

(3):-शिव जी का पार्थिव पूजन विधि विधान से करें।

(4):- लोहे के पात्र में काले उड़द भरकर संध्या के समय दान करना चाहिए।

(5):-शनिवार के दिन खेजड़े के वृक्ष पर तिल्ली का तेल चढ़ाना चाहिए, और इसी दिन तेल का दीपक भी जलाना चाहिए।

(6):-शनिवार के दिन काले मुँह के बन्दरों को ग्यारह किलो बैगन खिलाने चाहिए।

रेवती नक्षत्र:- रेवती नक्षत्र जनित निम्नलिखित रोग होते है । जैसे- नसों से उत्पन्न रोग,कान में घाव होना,गुर्दा रोग,उदर विकार, वातरोग,तथा मिरगी आदि रोगों का विचार किया जाता है।

उपचार:- (1):- इस जातक को बुधवार के दिन प्रातःकाल सात बजे से पूर्व हरे रंग के कपड़े में या मूंगिया रंग के कपड़े में पीपल की जड़ कनिष्ठिका अंगुली की पोर के समान काटकर अपनी भुजा पर बाँध लेना चाहिए। जिससे नक्षत्र दोष से मुक्ति मिल जाती है।

1.4.1 बोध प्रश्न:-

(1):-दीमाग में अर्बुद (ट्यूमर) की गाँठ होना इस रोग का विचार किस भाव से करते हैं।

(क)- द्वादशभाव। (ख)- दशमभाव

(ग)-तृतीयभाव। (घ)-नवमभाव

(2):- दमा,खाँसी, साँस, एवंफेफड़े के रोग का विचार किस भाव से करते हैं।

(क)-चतर्थभाव। (ख)-तृतीयभाव

(ग)-पंचमभाव। (घ)- सप्तमभाव

(3):- शरीर का तपन, बुखार, हड्डी तथा नसों से सम्बन्धित रोग का विचार किस ग्रह से करते हैं।

(क)- चन्द्र। (ख)- बुध

(ग)- सूर्य। (घ)- गुरु

(4):- घबराहट,टी.बी. एवं उन्माद रोगों की संम्भावना किस नक्षत्र से सम्बंधित यह रोग है।

(क)-मघा। (ख)- चित्रा

(ग)- रोहिणी। (घ)-हस्त

(5):-मस्तिष्क विकृति ,गुर्दा रोग, निर्बलता,पित्तदोष,रक्तदोष, पीलिया इत्यादि रोग किस तत्व से सम्बोधित है।

(क)- पृथ्वीतत्व। (ख)- अग्नितत्व

(ग)- जलतत्व। (घ)- वायुतत्व

1.5 सारांश:- :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने इस बात को समझा कि मानव शरीर प्राप्त करना तथा इस जन्म में उससे अधिक उन्नति करना एवं स्वस्थ बने रहना आन्तरिक रुप हमारी जीवन चर्या है यह कुछ नियमों पर आधारित हो तभी मनुष्य आत्मिक उन्नति कर सकता है । जीवात्मा जब एक शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर में जन्मलेता है ,तो उसके पूर्व जन्म के प्रभाव उसके साथ जाते हैं । इन प्रभावों का वाहक सूक्ष्मशरीर होता है,जो जीवात्मा के साथ एक स्थूल शरीर से दूसरे स्थूल शरीर में आता है। इन प्रभावों में कुछ बुरे होते हैं और कुछ अच्छे।मानव के कर्म तीन प्रकार के होते हैं, प्रारब्ध ,संचित ,तथा क्रियमाण, पाप कर्मो का प्रारब्ध व्यक्ति को रोग एवं कष्ट प्रदान करता है। तथा इस विषय को ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से अच्छी तरह जाना जा सकता है। साथ ही कुण्डली विचार के माध्यम से अच्छी तरह जाना जा सकता है। क्योंकि व्याधि भाव से रोगों का विचार, नक्षत्रों के अनुसार रोगों का विचार ,तत्वों के अनुसार रोगों का विचार, एवं शरीर में उत्पन्न सभी प्रकार के रोगों को आप लोग भली-भांति समझ सकते हैं। एवं रोगों का निदान भी कर सकते हैं

वस्तुतः ग्रहजन्य स्थिति के अनुसार किसी भी रोग का उपचार कोई चिकित्सक कर रहे हो ,उसके बाद भी रोग ठीक नहीं हो पा रहा हो तो उस रोग को "कर्मज व्याधि" कहते हैं। तथा इस प्रकार के रोगों का निदान चिकित्सकीय निदान के साथ-साथ अनुष्ठान, मंत्र ,जप आदि, रत्न धारण के साथ, ग्रह जनित उपायों को करने पर रोग शीघ्र समाप्त हो

जाता है तथा रोगी निरोग शरीर वाला बन जाता है इन सभी विषयों की जानकारी भी आप लोग भली-भांति कर पाएंगे।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

रुज रोगे-धातु से घय प्रत्यय होकर रोग शब्द की उत्पत्ति हुई है. जिसका अर्थ होता है रोगी होना, अस्वस्थ होना।

तत्व:- पृथ्वी, अग्नि,जल, वायु, एवं आकाश पाँच तत्व होते हैं।

प्रश्नकुंडली:- जिस समय पृच्छक प्रश्न करता है ठीक उसी समय की बनी हुई कुण्डली को प्रश्न कुण्डली कहते हैं।

लग्नकुंडली:- जन्मकालिक अर्थात जन्म समय के आधार पर बनी हुई कुण्डली को लग्नकुंडली या जन्मकुंडली कहते हैं।

रक्ताल्पता= खुन की कमी, रक्तदोष= खुन में दोष, विकार =रोग,

रत्न= माणिक्य, मोती, मूंगा, पन्ना, पुखराज, हीरा नीलम, गोमेद,लहसुनिया।

सूर्यग्रह के रत्न = माणिक्य, चन्द्र के रत्न =मोती, मंगल के रत्न= मूंगा, बुध के रत्न =पन्ना, गुरु के रत्न=पुखराज, शुक्र के रत्न = हीरा, शनि रत्न=नीलम, राहु के रत्न=गोमेद, केतु के रत्न =लहसुनिया,

कंठरोघ=गले में होनेवाले रोग, मुखरोग= मुह में होने वाले रोग।

केन्द्रभाव=1,4,7,10 इन भावों को केन्द्र कहते हैं।

त्रिकोण= 9,5 इन भावों को त्रिकोण कहते हैं।

त्रिक भाव= 6,8,12

पगफर= 2,5,8,11

आपोक्लिम=3,6,9,12

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

(1):- जातकपारिजात

(2):-जातका$लंकार

(3):-चिकित्सा-ज्योतिष

(4):-जातकाभरण

(5):- ज्योतिष रत्नाकर

(6):- मुहूर्त चिन्तमणि

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1):- क

(2):- ख

(3):- ग

(4):- घ

(5):-ख

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

(1):-द्वादशभाव जनितरोग रोगों के बारे में विस्तार से वर्णन करिये।

(2):- ग्रहजनित रोगों का विस्तृत उल्लेख करें।

इकाई 02 अरिष्टयोग व प्रकार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अरिष्टयोगों का परिचय

2.4 विविध अरिष्टप्रद योगों का विचार

2.5 अरिष्टभङ्गयोग एवं अरिष्टकारक ग्रहों के दान वस्तु

2. 6 बोध प्रश्न

2.7 **सारांश**

2.8 **पारिभाषिक शब्दावली**

2.9 **बोधप्रश्नों के उत्तर**

2.10 **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

2.11 **निबन्धात्मक प्रश्न**

2.1 प्रस्तावना:-

प्रस्तुत **"चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा"** द्वितीय पत्र के प्रथम खण्ड की द्वितीय है, इस इकाई का शीर्षक है **" आरिष्ट योग व प्रकार "** इस इकाई में आप लोगों को विभिन्न प्रकार के वालारिष्ट योगों के बारे में बताया जायेगा। चूंकि शास्त्रीय गणना एवं आयुर्वेद ,चिकित्सकों के मतानुसार , मनुष्यों की विशेष मृत्यु-संख्या बाल्यावस्था में ही होती है। कुछ आध्यात्मिक तत्व और ईश्वर-प्रेम तथा दैवी-सम्पत्ति रुपी गुणों से अपने जीवन-नौका को सुगमतापूर्वक चलाने में सफल होते हैं, कतिपय भाग्यवान इस नश्वरशरीर को त्यागकर जीवन के अन्तिम ध्येय अर्थात् परब्रह्मप्राप्ति रूप मोक्ष प्राप्त करते हैं। कुछ अपने मोहवश मृत्यु के बाद पुनः संसार- सागर के यात्री बन जाते हैं, और ज्योतिष शास्त्र भी इसका प्रतिपादन करता है। अतएव अनेकों प्रकार के बालारिष्ट, ग्रहारिष्ट, योग द्वारा आयु प्रमाण , एवं अरिष्टप्रदयोगों को , अरिष्टभङ्ग योगों को ,एवं पताकीअरिष्ट योगों को, आपलोगों के अध्ययन के लिए विधिवत दर्शाया जा रहा है ताकि अरिष्टप्रदयोगों के बारे में पूर्णतया आपलोग जानकारी कर सकें। महर्षि पाराशर ने कहा है कि 24 वर्ष तक जातक को अरिष्ट होता है, इसलिए गणित द्वारा आयु निर्धारित नहीं किया जा सकता है। क्योंकि अरिष्ट योग होने पर आयु में कमी हो जाती है। इसलिए इतने समय की आयु ग्रह-योगादि द्वारा निश्चय करना कठिन होता है। फिर भी इन अरिष्टप्रद समय में जप होम शान्ति और चिकित्सा आदि से बालक की रक्षा करनी चाहिए। परन्तु महर्षि पाराशर के बहुत काल के बाद जिन महर्षियों ने आयु-विषय पर ध्यान दिया, उन्होने कहा है कि,आठ ही वर्ष तक की आयु-गणना उचित नहीं है इसका कारण यह होता है कि ,ग्रहों के हेर-फेर से और भारतवर्ष की परिस्थिति में अन्तर पड़ जाने से दैवज्ञों ने आठ ही वर्ष तक गणित द्वारा आयुगणना निषेध बतलाया है क्योंकि आठ वर्ष तक ही विशिष्ट अरिष्ट योगों को बताया गया है। इन सभी विषयों का अध्ययन आप लोग पूर्णतया कर सकेगें।

2.2 उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन से आप लोग विभिन्न अरिष्टप्रदयोगों का ज्ञान कर पायेगें—

(1):- एकमास से लेकर 12 वर्ष तक के अरिष्टयोगों की जानकारी प्राप्त करेगें।

(2):- वज्रमुष्टि संज्ञक अरिष्टप्रद योग का अध्ययन करेगें।

(3):- प्रत्येक राशि के अनुसार चन्द्र कृत अरिष्टप्रदयोगों को जान पायेगें।

(4):- पिता के लिए अरिष्टप्रदयोगों को समझेगें।

(5):- रोगों द्वारा अरिष्ट का ज्ञान कर पायेगें।

(6):- माता के लिए अरिष्टप्रदयोगों को समझेगें।

(7):- विविध अरिष्टप्रदयोगों का ज्ञान एवं अरिष्टभङ्ग कैसे होगा, इस बात को भी जानेगें।

(8):- अरिष्टकारक ग्रहों के दान सम्बन्धित वस्तुओं की जानकारी भी प्राप्त करेगें।

2.3 अरिष्ट योगों का परिचय:-

इस इकाई में हम सभी अध्ययन करेगें कि योग मुख्य रुप से भाव,राशि, एवं ग्रहों से बनते है। इसलिए जन्म कुण्डली विचार के अनुसार अरिष्ट योगों को देखना अति आवश्यक है क्योंकि इसके बिना विचार के आयु का प्रमाण बताना बहुत ही कठिन है। साथ ही जातक के समस्त फल निष्फल हो जाते हैं। क्योंकि जन्म समय में अरिष्ट योग नहीं हो तो जातक के गणित के द्वारा प्राप्त आयु बिल्कुल सही होता है। एवं अरिष्ट होने पर उस आयु में कमी आती है इस लिए हम सभी को सर्वप्रथम चाहिए कि अरिष्ट योगों का विचार अवश्य करें।

अरिष्ट शब्द का तात्पर्य कष्ट,क्लेश, इत्यादि होता है।परन्तु ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अरिष्ट से सम्बंधित उन भावों से, उन ग्रहों से है जो जातक के जीवन में विपत्ति अथवा शारीरिक समस्या ,आर्थिक समस्या, एवं मानसिक समस्या से कष्ट प्रदान कराते हैं। साथ ही इन अरिष्ट योगों के फलस्वरूप जातक दुःखी, बिमार एवं कालचक्र में भी समाहित हो जाते है।

चूंकि ग्रहों के स्त्री-पुरुष भेद धातु, तत्व एवं स्वभाव विचार के अनुसार तीन प्रकार के अरिष्टयोगों के बारे में बताया गया है।

(1):-लग्नेश से

(2):-षष्ठेश से

(3):-अष्टमेश से

सारावली ग्रन्थ के अनुसार अरिष्ट विचार:- यहाँ पर भी तीन प्रकार के अरिष्ट बताये गये है।

(1):-नियत

(2):- अनियत

(3):- योगज

इस प्रकार ये तीनों प्रकार के अरिष्ट अपने नाम के अनुसार जातक को अरिष्ट प्रदान करते है।

(1)-नियत अरिष्ट:- जन्मकुण्डली के ग्रहजनित स्थिति के अनुसार निर्धारित आयु में अरिष्टों का ज्ञान करना यहां पर नियत अरिष्ट समझना चाहिए।

(2)-अनियत अरिष्ट योग:-

आशय यह है कि समस्त आयुर्दाय विचार सामान्य परिस्थितियों में ही लागू होता है। इस प्रसंग में एक बात और द्रष्टब्य है कि असाधारण परिस्थितियों यथा युद्ध, दंगा,

आतंकवाद, भूकम्प, बाढ़, बड़ी दुर्घटना व महामारी आदि में जब एक साथ बहुत से व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है, तब लोग प्रायः यह प्रश्न करते हैं कि क्या सबका मारकेश साथ-साथ ही आया था?

क्या सबकी आयु इतने सूक्ष्म रूप से समान थी कि सबकी मृत्यु एक साथ ही हुई? इस विषय में मेरा विचार है कि जब एक समय में पूरी दुनिया में हजारों लोगों का जन्म हो सकता है तो एक साथ हजारों लोगों की मृत्यु भी सम्भव है। इसलिए इसे अनियत अरिष्ट कह सकते हैं।

(3)-योगज अरिष्ट :-योग मुख्य रूप से ग्रह, राशि और भाव से बनते हैं। आयु से जुड़े योगों को 'योगायु' अरिष्ट योग कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार योगायु छह प्रकार की होती। सद्योरिष्ट योग में एक वर्ष की आयु होती है। अरिष्ट योग होने पर दो वर्ष से 12 वर्ष की आयु होती है। अल्पायु योग में अधिकतम 23 वर्ष की आयु होती है। मध्यम आयु योग में 70 वर्ष की आयु होती है। दीर्घायु योग में अधिकतम 100 की आयु होती है और अमितायु योग वाला जातक 100 वर्षों से अधिक जीवित रहता है। किंतु आयु का निर्णय 12 वर्षों के बाद ही करना चाहिए।

जातक पारिजात के अनुसार अरिष्ट विचार:-

अष्टौ बालारिष्टमादौ नराणांयोगारिष्टं प्राहुराविंशतिः स्यात् ।
अल्पं चाद्वात्रिंशतान्मध्यमायुरासप्तत्याः पूर्णमायुःशतान्तम्।।

जन्म लेनेवाले प्राणियों के जन्म से बारह वर्षों तक आयु का निश्चय करना अति कठिन है।क्योंकि इस अवधि में माता एवं पिता के द्वारा किये पाप कर्मों के फल स्वरुप और ग्रहजन्य दोषों के कारण जातक अरिष्ट (मृत्यु को) प्राप्त करता है।

जातक अपने जीवन के प्रथम चार वर्षों में माता के द्वारा पूर्वसंचित पापों के फलस्वरूप,अगले चार वर्षों में पिता के संचित पापों के द्वारा, इसके बाद अन्तिम चार वर्षों में अपने पूर्वकृत पापकर्मों के फलस्वरूप अरिष्ट (मृत्यु को) प्राप्त करता है।

सर्वार्थचिन्तामणि के अनुसार भी जन्म से बारह वर्ष पर्यन्त आयु का विचार कठिन बताया गया है।

पाराशर ने चौबीस वर्ष पर्यन्त तक अरिष्ट के द्वारा जातक मृत्यु को प्राप्त होता । अतः चौबीस वर्ष तक आयुष्य का विचार नहीं करना चाहिए।

जन्म से आठ वर्ष पर्यन्त बालारिष्ट, बीस वर्ष तक योगारिष्ट होता है, तथा बत्तीस वर्ष तक अल्पायु, बत्तीस वर्ष से सत्तर वर्ष तक मध्यायु और सत्तर से सौ वर्ष तक पूर्णायु होता है सौ वर्ष से अधिक परम आयु कहलाती है।

फलदीपिका के अनुसार बत्तीस वर्ष से कम हो तो अल्पायु,बत्तीस से सत्तर तक मध्य आयु,और सत्तर से अधिक सौ वर्षों तक दीर्घायु कहलाती है। सौ वर्ष से अधिक उत्तम आयु कहलाती है।

बारह वर्ष पर्यन्त जप, होम, चिकित्सा आदि से जातक के अरिष्टयोगों की रक्षा करनी चाहिए।

लग्न हमारा शरीर है, छठा भाव रोग का कारण है तो आठवां भाव आयु है और बारहवें भाव से व्यय देखे जाते हैं। इस कारण जब इन सभी का संबंध किसी न किसी प्रकार से लग्न से बनता है तो अरिष्ट योग की संभावना होती है. इस प्रकार अनेक अरिष्ट योगों का वर्णन ज्योतिष शास्त्र में मिलता है। कुंडली में ग्रहों के बलाबल व स्थिति के अनुरूप बीमारियों के योग देखे जाते हैं।

लग्नेश कमजोर हो व लग्न तथा चंद्रमा पापग्रह के प्रभाव में हो तो स्वास्थ्य प्रभावित होता है। चंद्रमा राहु के साथ हो या बारहवाँ हो तो रोग कारण बनता है।और रोगों से अरिष्ट होता है।

लग्नेश सप्तम में होने पर पाप प्रभाव में हो तो स्वास्थ्य के लिए कष्टकारी होता है।

लग्नेश अष्टम में व अष्टमेश लग्न में हो तो बीमारियाँ परेशान करती हैं।

राशि स्वामी पाप ग्रहों से दृष्ट या युक्त हो, अष्टम में हो तो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है।

सूर्य, चंद्रमा और शनि एक साथ छठे, आठवें या बारहवें भाव में हो तो भयंकर शारिरिक कष्ट मिल सकता है।

चंद्रमा और बुध केंद्र में हो और शनि व मंगल की दृष्टि में होने पर रोग घेर सकते हैं।

मृत्यु का निर्णय करने के लिए अरिष्ट योगों एवं मारक ग्रहों के साथ भावों को भी अध्ययन करना आवश्यक है।

ज्योतिष शास्त्र में लग्नेश, षष्ठेश, अष्टमेश, तथा गुरु और शनि तथा चन्द्र, इनके सम्बंध से अरिष्टयोगों का विचार किया गया है।

साथ ही अष्टमेश बली होकर 3,4,6,10,12 भावों में होतो अरिष्ट होता है।

लग्नेश से अष्टमेश बलवान हो तो अष्टमेश की अन्तर्दशा अरिष्ट प्रदान करती है।

शनि षष्ठेश,अथवा अष्टमेश होकर लग्नेश को देखता हो तो
लग्नेश भी अरिष्टप्रद हो जाते है।

अष्टमेश सप्तम भाव में बैठकर लग्न को देखता हो तो पापग्रह की दशा-अन्तर्दशा में वह अरिष्टप्रदान करता है।

मंगल की दशा में शनि तथा शनि की दशा में मंगल सदा जातक को रोगी बनाते है।

यदि अष्टमेश चतुर्थ स्थान में शत्रुक्षेत्री हो तो मारक बन जाता है।

पाराशर मत के अनुसार अरिष्ट योग विचार:-

पाराशर के मत से द्वितीयभाव और सप्तमभाव अरिष्ट स्थान है। तथा इन दोनों भावों के स्वामी- द्वितीयेश, सप्तमेश, द्वितीय और सप्तम में रहने वाले पापग्रह एवं द्वितीयेश-सप्तमेश के साथ रहने वाले पापग्रह भी अरिष्ट करते है।

अभिप्राय यह है कि यदि द्वितीयेश पापग्रह हो तथा पापग्रह से दृष्ट हो तो प्रथम वही मारकेश होगा।

इसकेबाद सप्तमेश पापग्रह हो,और पापग्रह से दृष्ट हो अनन्तर द्वितीयभाव में रहनेवाला पापग्रह, एवं सप्तमभाव में रहनेवाला पापग्रह, तथा द्वितीय के साथ रहनेवाला एवं सप्तमेश के साथ रहनेवाला पापग्रह मारकेश होता है।

शनि यदि मारकेश हो तो मारकेश को हटाकर स्वयं मारक बन जाता है।

द्वादशेश भी पापग्रह होने पर मारकेश बन जाता है।

पापग्रह षष्ठेश हो या पाप रशि में षष्ठेश बैठा हो तो अथवा पापग्रह से दृष्ट हो तो छेश की दशा में भी मरण की सम्भावना होती है।

मारकेश की दशा में पष्ठेश,अष्टमेश,और द्वादशेश की अन्तर्दशा में मरण सम्भव होता है।

यदि मारकेश अधिक बलवान हो तो उसकी दशा या अन्तर्दशा में मरण होता है।

राहु या केतु 1,7,8,12 वे भाव में हों अथवा मारकेश से सातवे भाव में हो या माकेश के साथ हो तो मारक होते हैं। मकर और वृश्चिक लग्नवालों के लिए मारक बताया गया है।

कुण्डली में शुक्र और बुध वृश्चिक राशि में स्थित हों तो अरिष्ट योग बनाते हैं. इसी प्रकार मेष राशि का भाव व भावेश कमजोर हो तो जातक लाचारी भरा जीवन जीता है.

कुण्डली में बुध और चंद्रमा यदि धनु राशि में स्थित हों तो जातक को अरिष्ट बनाते हैं.

कुण्डली में द्वितीयेश और तृतीयेश यदि आठवें भाव में होंतो अरिष्ट योग बनता है।

कुण्डली में चंद्र और सूर्य यदि मकर राशि में स्थित हों तो जातक को अरिष्ट बनाते हैं।

कुण्डली में सूर्य और बुध कुंभ राशि में स्थित हों तो जातक को अशुभ फलों की प्राप्ति होती है स्वाथ्य संबंधी परेशानियां सता सकती हैं।

कुण्डली में बुध और शुक्र यदि मीन राशि में हों तो अरिष्ट योग का निर्माण करते हैं।

कुण्डली में शुक्र और मंगल मेष राशि में स्थित हों तो अरिष्ट बनाते हैं।

कुण्डली में मंगल और बृहस्पति वृष राशि में स्थित हों तो स्वास्थ्य के लिए परेशानियां देने वाले होते हैं।

कुण्डली में बृहस्पति और शनि मितुन राशी में स्थित हों तो अरिष्ट बनाते हैं।

कुण्दली में शनि यदि कर्क राशी में हो तो अरिष्ट का कारण बनता है।

कुण्डली में शनि और बृहस्पति सिंह राशि में रहते हुए अरिष्ट कि स्थिति उत्पन्न करते हैं।

कुण्डली में बृहस्पति और मंगल कन्या राशि में होने पर शुभ फल नही देते और अरिष्ट का कारण बनते हैं।

कुण्डली में मंगल और शुक्र यदि तुला राशि में हों तो अरिष्ट होता है।

ग्रहों के तत्व के अनुसार अरिष्ट विचार:-

ग्रह		तत्व
(1)- सूर्य	-	पित्त
(2)-चन्द्र	-	वायु, श्लेष्मा
(3)-मंगल	-	पित्त
(4)-बुध	-	पित,वायु,श्लेष्मा
(5)-बृहस्पति	-	श्लेष्मा
(6)-शुक्र।	-	वायु,श्लेष्मा
(7)-शनि।	-	वायु

अब उपरोक्त ग्रह तत्व के द्वारा अरिष्ट विचार करते हैं। चूंकि आप लोग इस बात को जानते है कि ग्रह तत्व के द्वारा एवं अष्टम भाव से सम्बंधित रोगजनित अरिष्ट को यहां पर बताया जायेगा।

मृत्युस्थान अर्थात् अष्टमभाव में यदि कोइ ग्रह न हो और इसीभाव पर किसी बलवान ग्रह की दृष्टि हो तो देखने वाले ग्रह के धातु के अनुसार रोगों से जातक को अरिष्ट होता है।

अष्टमभाव में स्थित राशि काल पुरुष के जिस अंग में स्थित हो जातक के उस अंग में अरिष्ट होता है।

साथ ही अष्टमभाव को देखने वाले ग्रह की धातु के प्रकोप से उत्पन्न रोग द्वारा जातक को अरिष्ट होता है।

यदि अष्टमभाव पर बहुत ग्रहों की दृष्टि हो और इस भाव में कोई ग्रह भले ही स्थित न हो तो इसभाव पर जितने ग्रहों की दृष्टि हो उन ग्रहों के तत्वों से उत्पन्न रोगों के द्वारा जातक को अरिष्ट होता है।

अष्टमभाव जनित अरिष्टप्रद योग विचार:- अष्टमभाव में यदि सूर्यग्रह बैठे हो तोअग्नि द्वारा अथवा तीव्र ताप - ज्वर आदि रोगों से, चन्द्रमा स्थित होने पर जलीय व्याधियों संग्रहणी, रक्तविकार आदि से, मंगल के होने पर शस्त्रघात, शल्यक्रिया, दुर्घटना आदि से बुध हो तो ज्वर से अथवा चर्मरोग इत्यादि से, बृहस्पति स्थित हो तो रोग के निदान न होने के कारण, शुक्र हो तो भुख लगने से जातक की मृत्यु होती है।

अष्टम भाव में यदि चर राशि हो तो परदेश में , यदि स्थिर राशि हो तो अपने स्थान में, और द्विस्वभाव राशि हो तो मार्ग में मृत्यु समझनी चाहिए।

एक स्थिति एसा भी होगा कि जब अष्टमभाव परन किसी ग्रह के द्वारा देखा जाता हो और ना ही कोई ग्रह अष्टमभाव में स्थित हो। उस स्थिति में जातक की मृत्यु अष्टमस्थ राशि के स्वामी के तत्व से सम्बंधित रोग से होगी।

दशमभाव, चतुर्थभाव ,सप्तमभाव जनित अरिष्टप्रद योग:-यदि दशम भाव में सूर्य,और चतर्थभाव में मंगल हो तो शैलाघात से, अथवा किसी उँचे स्थान से पत्थर

गिरने से, यदि चतुर्थ भाव में शनि सप्तमभाव में चन्द्रमा और दशमभाव में मंगलग्रह स्थित हो तो कुप में गिरने से, एवं

कन्या राशिगत सूर्य-चन्द्रमा यदि पापग्रहों से दृष्ट हों तो स्वजनों के दुर्व्यवहार से तथा यदि सूर्य-चन्द्र द्विस्वभाव राशि के लग्न में स्थित हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है। इस योग में सूर्य को चतुर्थ भाव में और मंगल को दशमभाव में कहा गया है। जिस योग में जातक की मृत्यु शैलाघात या शैलपात से होता है। ये दोनों ग्रह यदि स्थान परिवर्तन कर लें, अर्थात सूर्य दशमभाव में और मंगल चतुर्थ भाव में स्थित हो अथवा दोनों संयुक्त होकर चतुर्थ या दशम भाव में स्थित हो तब भी वही फल देते है।

फाँसी या अग्नि सम्बन्धित अरिष्टयोग:- यदि कर्क राशि में शनि और मकर राशि में चन्द्रमा हो तो जलोदर रोग से, मंगल की राशि का चन्द्रमा यदि पापग्रहों के मध्य में हो तो शस्त्र से अथवा अग्नि से, यदि चन्द्रमा कन्या राशि का होकर पापग्रहों के मध्य स्थित हो तो रक्तजन्य शोथ आदि से,यदि चन्द्रमा -सूर्य की राशि का होकर पापग्रहों के मध्य स्थित हो तो फाँसी या अग्नि में जलने अथवा ऊँचे स्थान से गिरने से जातक की मृत्यु होती है।

पंचमभाव नवमभाव जनित अरिष्टयोगों का विचार:- दो पापग्रह यदि लग्न से पाचवें या नौवें भाव में स्थित हों और उनको शुभग्रह न देखते हो तो बन्धन द्वारा (कारागार, जेल) आदि में मृत्यु होती है। यदि अष्टमभाव में पास,सर्प या निगड संज्ञक द्रेशकाण हो तो भी बन्धन से मृत्यु होती है।यदि लग्न में सूर्य हो, कन्याराशि का चन्द्रमा पापग्रह के साथ सप्तमभाव में स्थित हो तो, और शुक्र मेष राशि में स्थित हो तो जातक की मृत्यु अपने घर में स्त्री के कारण होता है।

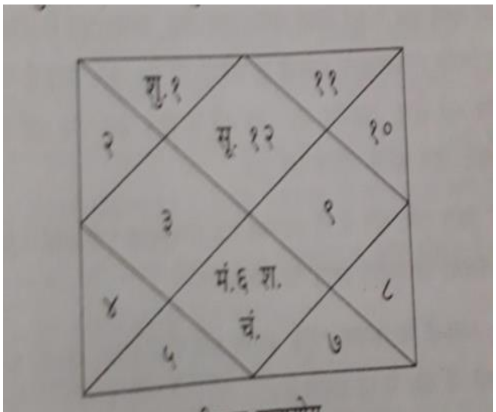

स्त्रीजन्य मृत्युयोग

वृक्ष से गिरने सम्बन्धित अरिष्टप्रद योग:- लग्न में सूर्य, पंचमभाव में शनि,अष्टमभाव में चन्द्रमा एवं नवमभाव में मंगल स्थित हो तो वृक्ष से गिरने के कारण मा।त्यु होती है।

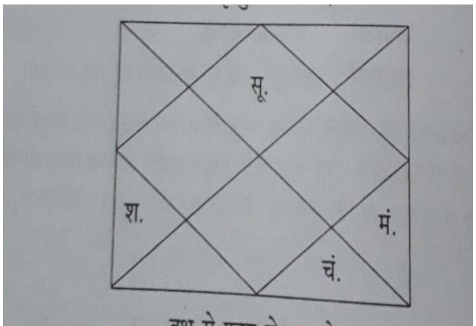

वृक्ष से पतन से मृत्युयोग

यात्रा में शत्रु द्वारा अरिष्टप्रद योग:- यदि चतुर्थ और दशमभावों में पापग्रह स्थित हों और क्षीण चन्द्रमा शत्रुराशिगत हो अथवा लग्न से अष्टमभाव में स्थित हो तो यात्रा में शत्रु द्वारा मृत्यु होती है।

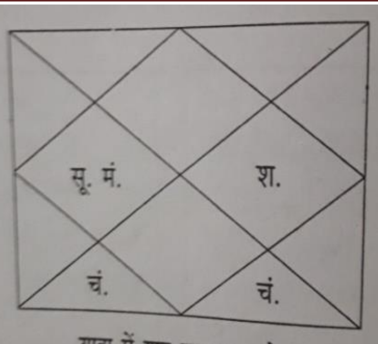

यात्रा में शत्रु द्वारा मृत्युयोग

परदेश में अरिष्टप्रद योग विचार:- यदि लग्न और द्वादशभावों में क्रमशः शनि और मंगल स्थित हों, सूर्य और चन्द्रमा बुध के साथ सप्तमभाव में स्थित हों तो एसे योग में उत्पन्न जातक परदेश, सुरालय, उद्यान या वनप्रदेश में मृत्यु को प्राप्त करता है।

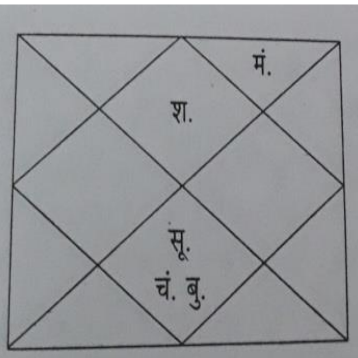

परदेश में मरणयोग

अभी तक तो आप लोग अरिष्टयोगों का आशय समझ गये होगें। आइए पुनः फिर अवधि के अनुसार जैसै एकवर्ष,दो वर्ष में होनेवाले अरिष्टयोगों के बारे में समझते हैं।

अरिष्टप्रद योग:- यदि मेष या बृश्चिक राशिगत गुरू लग्न से अष्टमभाव में हो उसपर सूर्य ,मंगल, चन्द्रमा की दृष्टि हो और शुक्र की दृष्टि नहीं हो तो जातक का मरण होता है।

तीनवर्ष में अरिष्टयोग:-जन्म समय में वक्री शनि मेष या बृश्चिक राशिगत होकर लग्न से षष्ठ या अष्टमभाव अथवा 1,4,7,10 भाव में हो उस पर बली मंगल की दृष्टि हो तो वह तीन वर्ष में अरिष्टकारक होता है।(अन्य अरिष्टयोग)

जन्मकुण्डली में सूर्य,चन्द्रमा और शनि एक साथ 6,8 भाव में हो तो 9 वर्ष में , तथा शनि, मंगल और सूर्य ये तीनों यदि 6,8 भाव में हो तो एक मास में अरिष्टप्रदान करते हैं।

एक वर्ष में अरिष्टप्रद योग:-जन्म समय में एक भी पापग्रह 6 ,8 भाव में पापग्रह से देखा जाता हो तो एक वर्ष में अरिष्टप्रद होता है। यदि जातक अमृतपान भी करे तो भी अरिष्ट होता ही है। फिर भी जो अमृतपान नहीं करता उसकी स्थिति क्या होगी। यह विचार स्वयं समझ लेना चाहिए।(अन्य अरिष्टयोग)

कर्कराशि में स्थित बुध यदि 6,8 भाव में स्थित हो उसपर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो चार वर्ष में जातक को अरिष्ट प्रदान करता है।

यदि कर्क या सिंह राशिगत शुक्र 6,8,12, भाव में स्थित हो, एवं सभी शुभग्रहों के द्वारा देखा जाता हो तो 6 वर्ष में अरिष्टप्रदान करता है।

दो मास में अरिष्टयोग:- जिस नक्षत्र में धूमकेतु, उदित हो उस नक्षत्र में (चन्द्रमा के रहने पर) जिसका जन्म हो उस जातक को दो मास में मरण होता है।(अन्य अरिष्टप्रद योग)

मंगल की या शनि की राशि में स्थित सूर्य दशमभाव में हो उसपर अधिक पापग्रह की दृष्टि हो तो जातक का शीध्र मरण होया है।

सप्तम वर्ष में अरिष्टप्रद योग:- जन्मलग्न में यदि श्रृंखला, पाश या पक्षी द्रेष्काण हो तथा पापग्रह से युक्त हो तो सातवें वर्ष में अरिष्टप्रदान करता है।(अन्य अरिष्टयोग)

यदि जन्म समय में केन्द्र में स्थित राहु को पापग्रह देखता हो तो दस या सोलह वर्ष में अरिष्टप्रदान करते है।

अष्टमवर्ष में अरिष्टप्रद:- यदि सब शुभग्रह 6,8, भाव में तथा पापग्रह 5,9 में हों उनपर पाप ग्रह की दृष्टि भी हो तो अष्टमवर्ष में अरिष्ट होता है।(अन्य अरिष्टयोग)

जन्मलग्न से 6 या 8 भाव में चन्द्रमा पापग्रहों से दृष्ट हो तो शीध्र मरण कारक होता है।

चतुर्थवर्ष में अरिष्टप्रद योग:- इन अरिष्ट योगों में यदि अरिष्टप्रद ग्रह पर शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के ग्रह की दृष्टि हो तो चारवर्ष में मरण होता है। इस प्रकार शुभ-अशुभ ग्रह की दृष्टि के अनुसार अरिष्ट समय का ज्ञान करना चाहिए।(अन्य अरिष्टयोग)

लग्न से 12, 2,में अथवा 6, 8 में या 6,12 में इन दो दो स्थानों में पापग्रह हो तो छठवें या आठवें मास में मरण होता है।

अल्पकाल में मरण योग:- कुण्डली में लग्नेश पापग्रह से युक्त होकर सप्तमभाव में हो अथवा जन्मराशीश पापयुत होकर अष्टमभाव में हो तो एक मास में ही अरिष्टप्रदान करता है। (अन्य अरिष्टप्रद योग)

जन्म लग्नेश आठवें भाव में पापग्रह से दृष्ट हो तो चतुर्थ मास में आरिष्ट होता है। सूर्य लग्न का स्वामी होकर आठवें भाव में हो तथा शुक्र से देखा जाता हो तो राशि संख्या तुल्य वर्ष में मरण होता है।

यदि सूर्य मंगल से युत चन्द्रमा मिथुन या कन्या में हो और उसपर कोई ग्रह न देखता हो तो जातक का नव वर्ष में मरण होता है।

सद्यो$रिष्ट योग:- पापग्रहों से युत चन्द्रमा यदि लग्न,7,8,12 वें भाव में हो उस पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तथा केन्द्र में नहीं हो तो जातक का शीध्र मरण होता है।(अन्य अरिष्टप्रद योग)

लग्न से 8,1,4,7,10 वें भावों में पापग्रह हो तथा क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो तो जातक का शीध्र मरण होता है।

वज्रमुष्टिनाम अरिष्टयोग:-जन्मकुण्डली में कर्क या वृश्चिक लग्न हो तथा लग्न से 6 राशि तक पापग्रह और 7 से 12 भाव तक शुभग्रह हों तो इसको वज्रमुष्टियोग कहा गया है। जन्म समय में ये अरिष्टप्रद होता है।

(अन्य अरिष्टप्रद योग)

12,6,8, वें भाव में शुभग्रह स्थित हो और 1,5,9,4,7,10, इन भावों में पापग्रह हो और सूर्योदय के समय में जन्म हो तो जातक की शीध्र मृत्यु होती है।

मकर या कुम्भ राशिगत गुरु यदि लग्न से अष्टमभाव में पापग्रह से दृष्ट हो तो 11वें दिन जातक की मृत्यु होती है।

जन्मसमय में चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में हो तथा सभीग्रह यदि 4,8 और सप्तमभाव में हो तो शीध्र अरिष्टप्रद होता है।

यदि प्रातः सन्ध्या या सायं सन्ध्या में जन्म हो ,एवं पापग्रह सब राशि के अन्त में होकर चारो केन्द्र में चन्द्रमा सहित पापग्रह हों और चन्द्रमा की होरा हो तो शीध्र मरण होता है।

जन्मलग्न से 7,8 भावों में पापग्रह हों उनपर पापग्रह की दृष्टि हो शुभग्रहों दृष्टि न हो तो माति के साथ जातक की मृत्यु होती है।

शस्त्र से निधन योग:- जन्मकुण्डली में पापग्रह के साथ राहुग्रस्त चन्द्रमा लग्न में हों और अष्टमभाव में मंगल हो तो माता के सहित जातक का शस्त्र के द्वारा मरण होता है।

(अन्य अरिष्टप्रद योग:-)

मंगल या शनि लग्न में स्थित हो सप्तमभाव में सूर्य हो अथवा मंगल या शनि से चन्द्रमा युक्त हो तो जातक का शीध्र निधन होता है।

त्रिकोण और केन्द्र में सभी पापग्रह हों उनपर किसी शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तथा लग्न में सूर्य अथवा चन्द्रमा हो तो जातक का मरण होता है।

सूर्य, शनि और शुक्र ये तीनों यदि पापग्रहों से युक्त हो, उनको यद्यपि गुरु भी देखते हो तथापि जातक का 9 वर्ष में मरण होता है।

108 वर्ष के आयु का विचार:-यदि जन्म के समय अष्टमभाव या लग्न में कोई भी पापग्रह न हो तथा किसी भी केन्द्र राशि (1,5,7,10,) में गुरु हो तो जातक 108 वर्ष जीता है। यदि केन्द्र त्रिकोण व अष्टमभाव पापग्रह से रहित हो ,तथा गुरु केन्द्र में हो तो जातक 108 वर्ष जीता है।

यदि लग्न में शुक्र हो और किसी भी केन में गुरु हो तथा अष्टमभाव में पापग्रह न हो तो 120 वर्ष जातक जीता है।

यदि कर्क लग्न में गुरु शुक्र हो या गुरु चन्द्रमा से युत हो कर्क लग्न में हो तथा अष्टम में पापग्रह न हो तो भी 120 वर्ष जातक का जीवन होता है।

यदि केन्द्र, त्रिकोण व अष्टमभाव में पापग्रह न हो तो जातक की देवतुल्य आयु होती है।

(गतायु योग ज्ञान):- यदि 8,7,11,1,9,5, इन भावों में क्षीण चन्द्रमा बलीपापग्रह से युत हो तथा शुभग्रहों से अदृष्ट हो तो जातक को आयुगत कहना चाहिए अर्थात आयु धही होती है।

आइए अभी तक तो आपलोग विभिन्न अरिष्टप्रद योगों के बारे में जानकारी प्राप्त किये साथ ही दीर्घायु योग आयु के बारे में अध्ययन हुआ। अब चन्द्र कृत अरिष्टयोगों योगों के बारे में जानेगें। साथ ही पिता- माता के अरिष्टयोगों के बारे में भी अध्ययन करते है।

प्रत्येक राशि में चन्द्र कृत अरिष्टप्रद योग ज्ञानः-

कुम्भे दिशति शशाङ्को भागे मृत्युं तथैकविंशाख्ये।
सिंहे च पञ्चमेंशे वृषे च नवमे तथैवोक्तः।।
(सारावली श्लोक सं.111 अध्याय 10)

यदि जन्म कुण्डली में चन्द्रमा (कुम्भ राशि) के 21 वें अंश में हो या (सिंहराशि) के 5 वें अंश में या (वृषराशि) के 9 अंश में हो तो मरण करता है।(वृश्चिक राशि) के 23 वें अंश में , (मेष राशि) के अष्टम अंश में,(कर्कराशि) के 22 वें अंश में ,(तुला राशि) के चतुर्थ अंश में (मकर राशि) के 20 वें अंश में चन्द्रमा हो यो निधन कारक होता है।(कन्याराशि) प्रथमांश में ,(धनुराशि) के 18 वें अंश में, (मीनराशि) के 10 वें अंश में,(मिथुन राशि) के 29 वें अंश में चन्द्रमा हो तो मरण होता है।

सारणी द्वारा समझते है ।

राशि।	अंश।	अरिष्ट
मेष।	8	मरण होता है।
वृष	9	मरण होता है।
मिथुन।	29	मरण होता है।
कर्क।	22	मरण होता है
सिंह।	5	मरण होता है
कन्या।	1	मरण होता है।
तुला।	4	मरण होता है।
वृश्चिक।	23	मरण होता है।
धनु।	18	मरण होता है।

मकर	20	मरण होता है
कुम्भ।	21	मरण होता है।
मीन।	10	मरण होता है।

जन्मकालीन समय में चन्द्रमा जिस राशि में जितने अंशों में मरण कारक कहा गया है। उतने ही वर्षों में यमराज के द्वारा रक्षा करने पर भी जातक का निधन होता है । यहां पर जिन अरिष्टों का वर्णन किया गया है उन अरिष्टों में सबका निधन नहीं होता, किन्तु अरिष्ट भंग योग होने पर इन योगों में भी जातक का जीवन होता है। प्रत्येक राशि में जिन-जिन अंशों में चन्द्र कृत अरिष्ट कहा गया है। वहां अनुपात द्वारा समय ज्ञान करके ही अरिष्ट कहना चाहिए। क्योंकि चन्द्रमा अंशकलादि से युत होता है। जैसे- मेष में अष्टम अंश में चन्द्रमा अरिष्टप्रद होता है। कुण्डली में यदि 0/07/10/02 चन्द्रमा है तो मेष के अष्टम अंश में होने पर अष्टम वर्ष में अरिष्ट कारक हुआ। अष्टम वर्ष में कब मरण होगा यह अनुपात द्वारा जानकर फलादेश कहना चाहिए । इस प्रकार समस्त प्रयत्न से जातक के राशि स्थान व केन्द्र स्थान का विचार करके अरिष्ट कहना चाहिए। गुरु जातक का जीवन है, इसलिए बृहस्पति की स्थिति के अनुसार मृत्यु का विचार करना चाहिए। जैसे -गुरु 3/4/5/7/9/10/11/1 इन भावों में हों तो क्रम से जातक 5/10/46/21/100 वर्ष तक जीवन रहता है।

भाव स्थिति गुरू।	आयु वर्ष
3	5
4	10
5	46
7	21
9,10,11,1	100

माता के लिए अरिष्टप्रद योग:-

यत्रस्थस्तत्रस्थो रुधिरार्कशनैश्चरेक्षितश्चन्द्रः।
जननीमृत्युं कुर्यान्न तु सौम्यनिरीक्षितः सद्यः।।

- ❖ यदि जन्म के समय किसी भी भाव में चन्द्रमा, मंगल, सूर्य, शनि इन तीनों से दृष्ट हो तो माता का शीध्र निधन होता है। यदि चन्द्रमा शुभग्रह से दृष्ट हो तो माता का निधन नहीं होता है।
- ❖ यदि चन्द्रमा से अष्टम राशि में ,या नवम में, या सप्तम में, समस्त पापग्रह हों या एक पापग्रह हो तो माता के साथ जातक को मारते हैं।अर्थात् दोनों का मरण होता है ।
- ❖ यदि जन्म के समय पापग्रह प्रथम,अष्टम,सप्तम,षष्ठ, एवं द्वादश, भाव में हो तो निःसंन्देह माता के साथ जातक का निधन होता है।
- ✧ **पिता के लिए अरिष्टप्रद योग:-** जिस जातक का दिन मे जन्म हो और सूर्य मंगल शनि से दृष्ट हो अथवा सूर्य,पापग्रह से युत हो तो निश्चय पिता का मरण होता है।यदि जन्म के समय में सूर्य,भौम और शनि से युत हो तथा बुध,गुरु ,शुक्र से युत न हो तो जातक के पिता व पितामह का मरण होता है । एसा जानना चाहिए।
- ❖ यदि जातक का जन्म दिन में हो और सूर्य दो पापग्रहों के मध्य में हो, अथवा सूर्य पापग्रह से युक्त हो तो अवश्य पिता का मरण होता है। यदि जन्मकाल में सूर्य की राशि से अष्टम राशि में या सप्तम राशि में शनि व मंगल शुभग्रहों से अदृष्ट हो तो पिता का शीध्र मरण करते है।यदि जन्मांक में चर राशि में सूर्य, पापग्रह से युक्त तो अल्पायु में पिता की मृत्यु विष या शस्त्र या जल से होती है।
- ❖ यदि जातक का जन्मदिन में हो और चर राशिगत सूर्य मंगल से दृष्ट हो तो जन्म के समय पिता को परदेश में जानना चाहिए। यदि जातक का जन्मरात्रि में हो और चर राशिगत सूर्य से दृष्ट हो तो, इस योग में भी जन्म के समय पिता को परदेश में कहना चाहिए । यदि जातक जन्म रात्रि में हो और चरराशिस्थ शनि , मंगल से युक्त हो तो पिता का मरण परदेश में होता है। यदि जन्माङ्क में जिस किसी भी राशि में सूर्य, शनि व मंगल से युत हो तो जन्म से पूर्व ही पिता का निधन हो जाता है एसा जानना चाहिए।
- ❖ यदि जन्म के समय पापग्रह प्रथम, अष्टमभाव, सप्तम, षष्ठ , द्वादश भाव में हों तो निःसन्देह माता के साथ जातक का निधन होता है।
- ✧ **रोग से अरिष्ट का ज्ञान:-** यदि रोग आरम्भ सयम में केन्द्र (9,5) में चन्द्रमा हो तथा चतुर्थ या अष्टम में सूर्य हों तो इस योग में दुष्ट रोग से युक्त होकर तीन दिन से अधिक जातक नहीं जीता है। यदि लग्न से चतुर्थ भाव में चन्द्रमा हो तथा षष्ठभाव में सूर्य हो तो अठारह दिन रोग से युक्त होकर मरण होता है। यदि चन्द्रमा से नवम

या पंचम भाव में सूर्य हो तो इस स्थिति में रोग आरम्भ होने पर बीस दिन तक जातक जिवित रहता है। यदि रोगकालिन लग्न से अष्टमभाव में सूर्य, शनिऔर मंगल से दृष्ट हो तो उस व्यक्ति का जीवन न होकर मरण होता है।

- **जन्म से अरिष्ट का ज्ञान:-** यदि 1/4/7/10 भाव में मंगल हो और गुरु केन्द्र में न हो तो मृतक जातक का जन्म होता है। यदि जन्मकाल में सूर्य लग्न में हो तथा गुरु केन्द्र से अन्य स्थान में हो तो जन्म के साथ ही मरण होता है।अथवा अष्टमभाव मे कोई पापग्रह हो तो जन्म के साथ मरण होता है। यदि जन्मकालिन लग्नस्थ द्रेष्काण से सप्तमराशि में पापग्रह हो और लग्न में चन्द्रमा हो तो शीघ्र मरण होता है।
- यदि लग्न में शनि हो व अष्टम में मंगल हो और गुरु केन्द्र (1,4,7,10) से अन्य भाव में हो तो मृतक का जन्म होता है।
- **अरिष्टयोगों का निर्णय:-** जिन योगों में मरण का समय नहीं लिखा है। उनमें योग करने वाले ग्रहों में से जो बलीग्रह हो उसकी राशि में जब चन्द्रमा का संचार हो तब अरिष्ट कहना चाहिए। अथवा चन्द्रमा पुनः अपनी राशि में या लग्न में आये और पापग्रहों से दृष्ट हो तो मरण होता है। यह विचार एक वर्ष के भीतर होता है । अभी तक तो आप लोग बहुत प्रकार के अरिष्ट का अध्ययन भलीभांति किये, परन्तु अब ज्योतिष शास्त्र में अनेक प्रकार के अरिष्टप्रद योग कहे गये है। वे योग अरिष्टभंग होने पर समर्थ नहीं होते (अर्थात् मरण कारक नहीं होते है)। अब उन अरिष्टनाशक योगों को भी आप लोगों जानना अति आवश्यक है,जिससे अरिष्ट भंग होता है। क्योंकि इसके बिना सही अरिष्ट के बारे जान पाना असम्भव है साथ ही अरिष्टप्रद योगों का निदान भी आप इससे कर सकते हैं। सर्वप्रथम चन्द्रमा द्वारा अरिष्ट समन के बारे में समझिये।
- **चन्द्रकृत अरिष्ट भङ्ग योग:-**

संभूतारिष्टाख्या भङ्गस्तेषां यथा भवेद्योगगैः ।
तानागमतो वक्ष्ये प्रधानभूता यतस्तेऽत्र ।।

(सारावली श्लोक सं.(1)अध्याय (11)

- यदि चन्द्रमा पूर्णबली हो,और सभी ग्रहों से देखा जाता हो अथवा अपने मित्र के नवमांश में हो और शुभग्रहों से देखा जाता हो तो सभी प्रकार के अरिष्ट को नष्ट कर देता है।अथवा क्षीण चन्द्रमा भी यदि अपने उच्चराशि (वृष) में हो और शुभग्रहों से अथवा केवल शुक्र से भी देखा जाता हो तो सभी प्रकार के अरिष्ट को नाश कर देता है।
- यदि चन्द्रमा शुभ द्रेष्काण में हो शुभग्रह से युक्त हो,और चन्द्रमा से 7,6,8 भाव में केवल शुभग्रह हो, पापग्रह नहीं हो तो सभी अरिष्टों का नाश कर देता है ।

- यदि द्वादश भाव में सब शुभग्रह हों और पूर्ण चन्द्रमा शुभग्रह की राशि में लग्नेश से दृष्ट हो अन्य ग्रह से दृष्ट नहीं हो तो अरिष्ट योग का नाश होता है। शुक्पक्ष की रात्रि में और कृष्ण पक्ष में दिन में जन्म हो,और चन्द्रमा 6,8 भाव में रहने पर भी यदि क्रमशः शुभग्रह और पापग्रह से दृष्ट हो तो वह "अरिष्ट नहीं करके" बालक की पिता के समान रक्षा ही करता है।
- यदि चन्द्रमा पापग्रह की राशि में हो किन्तु उस राशिके स्वामी से दृष्ट हो या उसके षड्वर्ग में हो या उससे युक्त हो तो वह मंगलकारी ही होता है।

यदि जन्मलग्नेश बलवान शुभग्रहों और मित्रग्रहों से दृष्ट हो, या लग्न में स्थित होकर सब शुभग्रह से दृष्ट हो तो चन्द्र कृत अरिष्ट नष्ट हो जाता है।

- यदि पूर्णबली चन्द्रमा अपने उच्चराशि, स्वराशि, या नवमांश, अपनेवर्ग में शुभग्रह या मित्र के वर्ग में होकर शुभग्रहों से दृष्ट हों, पापग्रह से दृष्ट नहीं हो तो सब अरिष्टों का नाश हो जाता है।
- चन्द्रमा से दशम भाव में गुरु, द्वादशभाव में बुध, ग्यारहवेंभाव में पापग्रह हों, अथवा लग्नेश से 3,4,2,12,11 भाव में चन्द्रमा शुभग्रह से दृष्ट हो तो सब अरिष्टों का नाश करते है।
- यदि जन्मलग्नेश बलवान हो उनपर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो चन्द्रजन्य सब अरिष्टों का नाश हो जाता है।
- यदि पूर्ण चन्द्रमा अश्विनी, कृतिका, या पुष्य, के वर्गोत्तम नवमांश में स्थित हो तो तिथि-वार -नक्षत्रों से उत्पन्न अरिष्ट अर्थात सभी प्रकार के अरिष्टप्रदयोगों का नाश हो जाता है। साथ ही चन्द्रमा यदि पुष्प नक्षत्र के द्वितीय या तृतीय चरण में अथवा रोहिणी के द्वितीय चरण में शुभग्रह से दृष्ट हो तो सभी प्रकार के अरिष्टप्रदयोगों से रक्षा करते हैं।
- यदि चन्द्रमा कर्क मा मेष राशि के हो और केन्द्र(1,4,7,10) में स्थित हो और उनपर शुभग्रह की दृष्टि हो तो राहु से ग्रस्त होने पर भी अरिष्टप्रदयोगों का नाश करते है।

✧ समस्त अरिष्ट भङ्ग योग:-

प्रसूतिकाले विजयाधिशाली शुभो हरेद्रिष्टमपापदृष्टः।
कश्चिद्ग्रहश्चेत्परिवेषगामी क्रूरैः प्रदृष्टः किल रिष्टभङ्गः।।

(जातकाभरणश्लोकसं.(5) सकलारिष्टभङ्गाध्याय)

- जन्म समय में शुभग्रह विजयी होउनको शुभग्रह देखते हों और इनको पापग्रह नहीं देखते हो तो अथवा कोई ग्रह परिवेश (मंडल) युक्त होकर पापग्रह से दृष्ट हो तो भी सभी प्रकार के अरिष्टप्रदयोगों का नाश होता है। यदि लग्न से 3,6,11 वें भाव में

राहु शुभग्रह से दृष्ट हो,अथवा सब ग्रह शीर्षोदयराशि में हो तो भी अरिष्टप्रदयोगों का नाश होता है।

- ❖ जन्मसमय में आकाश निर्मल, ग्रह और नक्षत्र देदीप्यमान रश्मि युक्त, नीलवर्ण के मेघ और मन्द-मन्द वायु बहती हो तो अरिष्टों का नाश होता है।

अगस्त्य तारा के उदय समय में जन्म हो तो समस्त ग्रहकृत अरिष्टप्रदयोगों का नाश होता है

यदि राहु वृष,मेष या कर्क लग्न में हो तो अरिष्टप्रदयोगों का नाशकारक होताहै। अथवा जन्म समय में अधिक शुभयोग हो तो भी अरिष्टों का नाश होता है।

मकर, कुम्भ या मीन राशिस्थ केतु यदि 11,6 त्रिभाव में हो तो अरिष्टप्रदयोगों का नाश करनेवाला होता है। अथवा शुक्र, बृहस्पति, बुध ये परस्पर त्रिकोण में हो तो अरिष्टों का नाश होता है।

- ❖ यदि जन्म के समय में सभी ग्रह दृश्यचक्रार्ध (7,8,9,10,11,12 भाव) में हो तो सन्ध्या ,वैधृति, गण्डान्त आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।
- ❖ यदि उच्चस्थ सूर्य 3,11,6, भाव में हो तो ग्रहणकाल जनित आरिष्ट नहीं होता है। अथवा एक राशि में होकर 6,3,10 या 11 वें भाव में सभी ग्रह हो तो भी आरिष्ट का नाश होता है।
- ❖ यदि गुरू अपनी राशि में स्थित होकर चतुर्थ भाव में हो उसपर प्रबल चन्द्रमा की दृष्टि हो तो शीध्र ही अरिष्टों का नाश होता है।
- ❖ यदि राहु सहित सबग्रह द्विस्वभाव राशि में हों परस्पर चतुर्थ स्थान में स्थित हो तो अरिष्टों का नाश हो जाता है।
- ✧ **30 वर्ष से 40 वर्ष तक के आयु का ज्ञान:-** बलवान शुभग्रह केन्द्र में हो तथा अष्टम स्थान में कोई ग्रह नहीं हो तो जातक की आयु 30 वर्ष, यदि उसपर शुभग्रह की दृष्टि भी हो तो 49 वर्ष आयु होती है।
- ✧ **27 से 100 वर्ष तक के आयु का ज्ञान:-** बृहस्पति यदि अपनी राशि या द्रेष्काण में हो तो 27 वर्ष की आयु होती है। यदि उच्चगत गुरु लग्न में और शुक्र केन्द्र में हो तो 100 वर्ष की आयु होती है।
- ✧ **60 से 80 वर्ष के आयु का ज्ञान:-** वृषराशिस्थ पूर्णचन्द्रमा

यदि लग्न में हो और शुभग्रह अपनी-अपनी राशि हो तो 60 वर्ष आयु होती है। शुभग्रह अपने-अपने मूल त्रिकोण में हो और गुरु अपने उच्चस्थ लग्न में हो तो 80 वर्ष की आयु होती है। अपनी राशि में स्थित पापग्रह- यदि लग्न 8,6 चन्द्रमा से युक्त नहीं हो। अन्य 2 ग्रह बलवान हो तो 100 वर्ष की आयु होती है।

अष्टम भाव में कोई ग्रह नहीं हो, शुभग्रह केन्द्र में अथवा लग्न में गुरू और शुभग्रह 3,11,6 भाव में हों उनफर पापग्रहों की दृष्टि नहीं हो तो जातक की 70 वर्ष की आयु होती है।

✧ **बोध प्रश्न :-**

(1):- यदि मेष या वृश्चिक राशिगत गुरु लग्न से अष्टम भाव में हों उन पर सूर्य,मंगल,चन्द्र की दृष्टि हो और शुक्र की दृष्टि नहीं हो तो किस प्रकार का अरिष्ट होता है।

(क):- मरण होता है (ख):- रोगी होता है

(ग):-दुर्घटना होती है (घ):- या मानसिक समस्या

(2):- जिस नक्षत्र में धूमकेतु उदित हो, उसनक्षत्र में

(चन्द्रमा के रहने पर) जिसका जन्म हो, ऐसे जातक की आयु कितने मास की होती है।

(क):- 4 मास की। (ख):- 3 मास की

(ग):- 2 मास की। (घ):- 5 मास की

(3):- जन्मकुण्डली में पापग्रह के साथ राहुग्रस्त चन्द्रमा लग्न में हो, और अष्टम भाव में मंगल हो तो जातक को अरिष्ट किससे होता है।

(क):- अस्त्र-शस्त्र से (ख):- वृक्ष से गिरने से

(ग):- जल में डुबने से (घ):- पर्वत से गिरने से

(4):- यदि चन्द्रमा कर्क या मेष राशि में हो और केन्द्र-

(1,4,7,10) में स्थित हो, और उनपर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो क्या होता है।

(क):- अरिष्ट निश्चित होता। (ख):-समान्यअरिष्ट

(ग):-अरिष्ट प्रबल होता (घ):-अरिष्टभङ्ग होता

(5):-यदि बृहस्पति अपनी राशि में स्थित होकर चतुर्थ भाव में हो तो, और उनपर प्रबल चन्द्रमा की दृष्टि हो तो क्या होता है।

(क):- अरिष्ट में बृद्धि होती है।

(ख):-अरिष्टप्रद योग भङ्ग होता है।

(ग):- अरिष्ट मजबुत होता है।

(घ):- मारकेश अरिष्ट होता है।

अभी तक तो आप लोग अरिष्टयोग तथा अरिषटभङ्गयोग को भलीभांति समझ गये होगें अब आइए।इनके निवारण के लिए ग्रहजन्य उपाय के बारे में अध्ययन करते हैं। चूंकि ग्रहों के द्वारा ही अरिष्टप्रदयोगों का निर्माण होता है अतः किस ग्रह के लिए क्या दान करें जिससे कि उस ग्रहजनित अरिष्टप्रदयोगों से शुभफल की प्राप्ति हो सके--

- **सूर्य ग्रह सम्बन्धित दान वस्तु:-** सूर्य की शान्ति के लिए माणिक्य, गेहूँ, बछड़ा सहित गाय, लालवस्त्र, गुड़, सोना, ताँबा,लालचन्दन, और कमल के फूल का दान करना चाहिए।
- **चन्द्र ग्रह सम्बन्धित दान वस्तु;-** चन्द्र जनित अरिष्टप्रदयोगों की शान्ति के लिए बाँस के पात्र में स्वेत चावल, कपूर, मोती, श्वेतवस्त्र, हल और बैल तथा चाँदी दाध करना चाहिए।
- **मङ्गल ग्रह सम्बन्धित दान वस्तु:-** मनगल के प्रसन्नार्थ मूँगा, गेहुँ, मसूर ,लालरंग का बैल, गुड़ सोना, लालवस्त्र, करवीर फूल, और ताँबा दान करना चाहिए।
- **बुध ग्रह सम्बन्धित दान वस्तु:-** बुध जनित अरिष्ट खत्म करने के लिए नीलेरंग के वस्त्र,सुवर्ण, काँसा, मूँग,घृत,पन्ना रत्न, फूल,नौकरानी,और हाथी का दाँत दाध करना चाहिए।
- **बृहस्पति ग्रह सम्बन्धित दान:-** गुरु के लिए चीनी,हल्दी, घोड़ा, पीलाधान्य, पीलावस्त्र, पोखराज रत्न, नमक और सोना दान करना चाहिए।
- **शुक्र ग्रह सम्बन्धित दान:-,** शुक्र प्रसन्नार्थ -अनेकरंग के वस्त्र ,श्वेतघोड़ा,गाय, हीरा रत्न, चाँदी, सोना,उत्तम चावल,घृत और सुगंध पदार्थ दाध करना चाहिए।
- **शनि ग्रह सम्बन्धित दान:-** शनि ग्रह जनित अरिष्टों की शान्ति के लिए उड़द, तेल, नीलम रत्न, तिल, कुल्थी, भैस लोहा, ये सभी वस्तु दक्षिणा सहित ब्राह्मण को दान देना चाहिए।
- **राहु ग्रह सम्बन्धित दान:-** राहु जनित अशुभ फल शान्ति के लिए गोमेदरत्न, घोड़ा, नीलवस्त्र, कम्बल,तिलतैल, और लोहा दान करना चाहिए।
- **केतु ग्रह सम्बन्धित दान:-** केतु ग्रह जनित अरिष्टप्रदयोगों की शान्ति के लिए निम्नलिखित वस्तुओं का दान करना चाहिए। जैसे- वैदूर्यमणि रत्न, तिल तेल, कम्बल, कस्तूरी, और शस्त्र(तलवार आदि) दान करना चाहिए।

2.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप लोगों को भलि-भाँति ज्ञान हो गया होगा कि बालारिष्ट कितने प्रकार के होते हैं।आईए इस विषय को विस्तृत विवेचना पूर्वक जानने का प्रयास करते हैं। यहाँ पर विशेष रुप से तीन प्रकार के अरिष्टप्रदयोगों का विचार किया गया है। (1)- गण्ड अरिष्ट (2)- ग्रह अरिष्ट (3)- पताकी अरिष्ट ,अब यहां पर गण्ड अरिष्ट के बारे में विस्तार से आप लोग के समक्ष रखने का प्रयास किया जा रहा है।

गण्ड अरिष्ट के अनुसार श्लेषा के अन्त और मघा के आदि का जो दोषयुक्त काल है, उसको रात्रि गण्ड, एवं ज्येष्ठा और मूल के दोषयुक्त काल को दिवा गण्ड कहते है।

इसी को अभुक्त भी कहते हैं। रेवती और अश्विनी गण्ड को सन्ध्या गण्ड कहते हैं। साथ ही इस बात का उल्लेख है कि अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती का अन्तिम (चार डण्ड) आधा प्रहर और मघा,मूल और अश्विनी के आदि का(चार डण्ड) आधा प्रहर के बीच में यदि बालक का जन्म हो तो विशेष अरिष्ट माना जाता है। साथ ही अभुक्त मूल में जन्म लेने वाले बालक के पिता की मृत्यु उसी क्षण होती है। यदि एसा बालक जीवित रहता है तो अपने वंश परम्परा को बहुत आगे बढ़ाता है। और कभी-कभी किसी बड़े पद का पदाधिकारी भी बन जाता है। अश्विनी का गण्डान्त दोष रहने से 16 वर्ष,मघा का 8 वर्ष, मूल का 4 वर्ष, अश्लेषा का 2 वर्ष ,ज्येष्ठा का 1 वर्ष,और रेवती का 1 वर्ष, पर्यन्त अनिष्ट फल का भय बना रहता है। एवम प्रातःकाल अथवा सन्ध्या के सन्धि समय में जन्म हो और सन्ध्या गण्डदोष हो तो उस बालक को अरिष्ट होता है। रात्रि काल में जन्म हो तो रात्रि गण्ड दोष से जातक की माता को अरिष्ट होता है। दिवा गण्ड में दिन में जन्म होने से बालक के पिता को अरिष्ट होता है। दिन में जन्म होने से रात्रि गण्ड और रात में जन्म होने से दिवा गण्ड अरिष्टकारी नहीं होता है। दिवा गण्ड में कन्या का और रात्रि गण्ड में पुरूष का जन्म होने से गण्ड दोष नहीं लगता है।

जातकपारिजात के अनुसार वैशाख, श्रावण,और फाल्गुन में गण्डदोष आकाश निवासियों को लगता है। आषाढ़, पौष, मार्गशीर्ष, और ज्येष्ठ मास में गण्डदोष मनुष्य को, तथा चैत्र, भाद्रपद, आश्विन, और कार्तिक, में गण्डदोष पाताल वासियों को लगता है। माघमास में गण्डदोष मृत्युकारक होता है। इसकारण आकाश और पाताल वाले गण्डमासों में गण्डदोष लगने से (मानव) जातक को दोष नहीं होता है। अतः आषाढ़, पौष, मार्गशीर्ष, ज्येष्ठ और माघ में गण्डदोष हो तो (मानव जातक) को गण्डदोष होगा। जिस नक्षत्र में जातक का जन्म होता है। उसे "जन्मर्क्ष" कहते हैं। और उस नक्षत्र से दशवें नक्षत्र का नाम "कर्मर्क्ष" है। जन्मनक्षत्र से 16 वाँ नक्षत्र साँघातिका, 18 वाँ समुदाय, 19 वाँ आधान, 23 वाँ, वैनाशिक, 25 वाँ, जाति, 26 वाँ, देश, और 27 वाँ, अभिषेक कहलाता है। ऋषियों का यह मत है कि जन्म नक्षत्र आदि उपर लिखे हुए नक्षत्रों में यदि जन्म समय पाप ग्रह की स्थिति में हो तो जातक की सद्यः मृत्यु होती है, परन्तु शुभग्रह रहने से शुभदायी भी होता है।

दोनों पक्षों की पंचमी, दशमी, पूर्णिमा, और अमावश्या के अन्तिम दण्ड में जन्म होना अरिष्टकारी माना गया है। यह भी कहा गया है कि वैशाख शुक्ल षष्ठी, ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्थी, आषाढ़ शुक्ल अष्टमी, श्रावणकृष्ण षष्ठी, भाद्रपद कृष्ण दशमी, आश्विन कृष्ण अष्टमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी, मार्गशीर्षकृष्ण दशमी, पौष शुक्ल द्वितीया, माघकृष्ण द्वादशी, फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी, तथा चैत्र कृष्ण द्वितीया, इस तिथियों में जन्म होने से सद्यः अरिष्ट होता है। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को किसी भी अंश में जन्म होने से कोई न कोई अनिष्ट अवश्य होता है।

साथ ही पताकी अरिष्ट के बारे में यहीं पर बताने का प्रयास किया जा रहा है।सर्वप्रथम त्रिपताकी चक्र निर्माण के बारे में समझते हैं।

तीन रेखा परस्पर सम और समानान्तर उर्ध्वाधर लिखकर उन पर तीन रेखा परस्पर समसमानान्तर तिर्यक् लिखें। पुनः दो दो रेखाओं से परस्पर क्रम से कर्णाकार छः रेखा लिखें, अग्नि कोण से बायब्यकोण तक छै एवं ईशानकोण से नैऋत्य कोण तक छै रेखा लिखें, इस तरह तीन पूर्वापर तीन याम्योतर तथा 6+6 कर्णाकार =18 रेखाओं से यह त्रिपताकी चक्र बनता है। इस प्रकार त्रिपताकी चक्र से बनाकर नियम से ग्रहों को बैठाकर बालारिष्ट का विचार किया जाता है। त्रिपताकी चक्र में प्रथम पूर्वापर रेखा के अन्त्य (दक्षिण) रेखाग्र से मेषादि राशियों की स्थापना करनी चाहिए।

वेधकारक पापग्रह यदि बलवान रहे तो वेधकारक पापग्रह जिस राशि में हो उस राशि संख्यातुल्य दिन पर बालारिष्ट समझना चाहिए। पापग्रह यदि मध्यबली हो तो ग्रहराशि गतांक तुल्य मास पर बालारिष्ट होता है, यदि दुर्बलग्रह हों तो वेधकारक पापग्रह गतांक राशि तुल्य वर्ष पर बालारिष्ट समझना चाहिए।

यदि वेधकारक शुभग्रह बली हों तो शुभग्रह गतांक राशि तुल्य वर्ष पर, मध्यबली हो तो तद्राशि गतांक तुल्यमास पर और क्षीणबली हों तो तद्राशि गतांक तुल्य दिन पर बालारिष्ट समझना चाहिए। इस प्रकार अनेक प्रकार के अरिष्टप्रदयोगों के बारे में आपलोग अध्ययन कर पायेगें तथा इससे निदान भी कर सकेंगे।

कर्क, मीन एवं वृश्चिक के अन्तिम नवांश में और मेष,सिंह और धनु, के प्रथम नवांश में जन्म होने से जातक के लिए अरिष्टप्रद होता है। इस इकाई में विशेष रुप से ग्रह ,राशि एवं भाव जनित योगारिष्ट को विशेष रुप से बताया गया है। प्रायःदेखने में आता है कि यदि चन्द्रमा निर्बल या पापग्रहों के द्वारा देखे जाय तो बालक के लिए अरिष्टकारी होता है। इसी प्रकार सभी पापग्रहों से समझना चाहिए। वस्तुतः उपरोक्त योगों में अरिष्ट के साथ बालक रोगी तो अवश्य ही होता है। इसलिए इस इकाई में अनेक प्रकार के भाव एवं ग्रहयोगारिष्टों के बारे में बताया गया है कि, इसका समय रहते निदान आप सभी कर सकें। साथ ही ग्रहों के उपाय भी बताये गये हैं, कि किस ग्रह की अरिष्टशान्ति के लिए क्या दान करें। इन सभी विषयों की जानकारी कर सकें,एवं अरिष्टप्रद योग इसका प्रकार साथ ही आरिष्टभंङ्ग कैसे होता है, किन योगों के द्वारा, इन सभी विषयों की जानकारी आपलोग विस्तृत रुप से अध्ययन कर पायेगें।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

अरिष्ट =कष्ट,क्लेश (मरण इत्यादि) को भी प्रबल अरिष्ट कहते है।

योग= ग्रह , राशि एवं कुण्डली के भाव से योग का निर्माण होता है।

रात्रिबली राशियां = वृष ,मिथुन ,कर्क ,धनु, मन ष, मकर

दिवाबली राशियां= सिंह,कन्या,तुला ,कुम्भ

दोनों संन्ध्या बली= मीन
विप्र वर्ण राशि= कर्क,वृश्चिक, मीन
क्षत्रीय वर्ण राशि= मेष,सिंह,धनु
वैश्य वर्ण राशि=वृष,कन्या मकर
शूद्र वर्ण राशि= मिथुन, तुला कुम्भ
ह्रस्व राशि= मेष,वृष,कुम्भ
दीर्घ राशि= सिंह,कन्या,तुला,वृश्चिक
समराशि=मिथुन,कर्क,धनु,मकर,मीन
पुरुष राशियाँ= मेष,मिथुन,सिंह,तुला,धनु,मकर
स्त्रीराशियां=वृष,कर्क,कन्या,वृश्चिक, मकर,मीन
पूर्वदिशा= मेष,सिंह,धनु
पश्चिम दिशा= मिथुन,तुला कुम्भ
उत्तर दिशा= कर्क,वृश्चिक, मीन
दक्षिण दिशा=वृष,कन्या,मकर
क्रूर राशि=मेष,मिथुन,सिंह,तुला,धनु,कुम्भ
शुभराशियाँ=वृष,कर्क,कन्या,वृश्चिक, मकर ,मीन
चर राशियाँ= मेष,कर्क,तुला,मकर
स्थिर राशियाँ= वृष,सिंह,वृश्चिक, कुम्भ
द्विस्वभाव राशियाँ= मिथुन , कन्या ,धनु ,मीन
पृष्ठोदय राशियाँ= मेष,वृष,कर्क,धनु ,मकर
शीर्षोदयराशि= मिथुन,सिंह,कन्या,तुला,वृश्चिक, कुम्भ
उभयोदयराशि= मीन

2.8 बोधप्रश्नों के उत्तर

(1):- क
(2):- ग
(3):- क
(4):- घ
(5):-ख

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1):- जातकाभरण
(2):- सारावली
(3):- जातकपारिजात
(4):-जैमिनी सूत्रम्

(5):-पञ्चस्वरा

(6):-ज्योतिष रत्नाकर

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(1):-विभिन्न अरिष्टप्रदयोगों को परिभाषित करते हुए उल्लेख कीजिये।

(2):- अरिष्टप्रद योग एवं अरिषटभङ्ग योगों को विस्तृत रुफ में समझाईए।

इकाई 03 अरिष्ट काल निर्माण

इकाई की संरचना

3.1 **प्रस्तावना**

3.2 **उद्देश्य**

3.3 **अरिष्ट काल की परिभाषा**

3.4 **अरिष्ट काल निर्माण कैसे होता है।**

3.5 **ग्रह, भाव, दशा सम्बन्धित अरिष्ट काल निर्माण**

3.6 बोध प्रश्न

3.7 **सारांश**

3.**8** **पारिभाषिक शब्दावली**

3.**9** **बोध प्रश्नों के उत्तर**

3.**10** **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

3.1**1** **निबन्धात्मक प्रश्न**

3.1 प्रस्तावना

ब्याकरण शास्त्र के अनुसार " रुष् रिष् हिंसायां" इसमें रिष् धातु से अनिट् "क्त" प्रत्यय का आदान करके रिष्टपद सिद्ध होता है, नन् समास सिद्ध अरिष्ट पद का अर्थ विपरीत जान पड़ता है। परन्तु ज्योतिष ग्रन्थों में सर्वत्र रिष्ट और अरिष्ट पद तुल्यार्थवाची होते हैं। अब अरिष्ट योग कहते हैं कि वर्षलग्न का स्वामी अष्टम स्थानों में हो इसपर मंगल की दृष्टि हो अथवा अष्टमेश लग्न में भौमदृष्ट हों उपलक्षण से पापदृष्ट हो अथवा बुध बृहस्पति अस्तगत हों तो शस्त्र से चोट लगने से विपत्ति आती है और मृत्यु भी होती है ये तीन फल निर्बलता क्रम से जैसे प्रथम सामान्य बल में शस्त्राघात, हीनबल में विपत्ति, अति हीन बल में मृत्यु इस क्रम से जानना चाहिते।

मानव शरीर में आत्मबल, बुद्धि बल, मनोबल, शारीरिक बल कार्य करते हैं। चन्द्रमा के क्षीण होने से मनुष्य का मनोबल कमजोर हो जाता है, विवेक काम नहीं करता और अनुचित अपघात पापकर्म कर बैठता है। ग्रहों के दूषित प्रभाव से अल्पायु, दुर्घटनाग्रस्त, आत्महत्या, आकस्मिक, घटनाओं का जन्म होता है। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप लोग इस प्रकार के बहुत सभी अरिष्ट काल निर्माण योगों का अध्ययन करेगें साथ ही अरिष्टों के समाधान भी कर पायेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित विषयों को आप लोग अध्ययन कर पायेगें

(1):- अरिष्ट काल की परिभाषा समझेगें

(2):- अरिष्ट काल निर्माण के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें।

(3):- मार्क स्थिति को समझेगें।

(4):- लग्नों के अनुसार अरिष्ट काल निर्माण के बारे में जान पायेगें।

(5):- दशा के अनुसार अरिष्ट काल के निर्माण का अध्ययन करेगें।

(6):- छिद्र ग्रहों के अनुसार भी अरिष्ट निर्माण काल को जानेंगे।

(7):- ग्रहों के अनुसार अरिष्ट निर्माण काल एवं ग्रहों से सम्बन्धित अरिष्ट निवारण उपाय का भी अध्ययन आपलोग करेगें।

3.3 अरिष्ट काल की परिभाषा:-

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार काल की परिभाषा बहुत ही विस्तृत रुप में वर्णित है, परन्तु यहां पर जो "अरिष्ट काल का निर्माण " विषय आप लोगों के अध्ययन के लिए दिया जा रहा है। इसके लिए कुण्डलियों में स्थित ग्रहों के अनुसार , भावों के अनुसार, राशि एवं पापत्व-शुभत्व दशा इत्यादि के अनुरुप अरिष्ट काल का निर्माण होता। साथ ही इस बात को भी समझना होगा कि अरिष्ट का आशय आपत्ति ,विपत्ति, अशुभ अमंगलकारी लक्षण, दुर्भाग्य, कष्ट,दैवीय आपदा भूकम्प इत्यादि, अथवा अशुभ

लक्षण दुष्ट ग्रहों का योग जिसका फल इस शास्त्र के अनुसार अनिष्ट होता है, या मरण कारक योग से यहां पर "अरिष्ट काल निर्माण" का सम्बन्ध समझना चाहिए।
अब आईए इसको समझते हैं-----

यहाँ पर कुछ अरिष्ट काल निर्माण सम्बन्धित योगों को बताया जा रहा है जिससे यह ज्ञात होगा कि जातक की मृत्यु कितने दिन में होगी। साथ ही जातक के शरीर में कोइ न कोइ समस्या हो जैसे रोग(बिमारी) इत्यादि तो इसके आरम्भ समय में जो तिथि,नक्षत्र,वार तथा ग्रह स्थिति हो उसे देखकर जातक के जिवन- मरण का विचार करना चाहिए। परन्तु यह विचार प्रश्न कुण्डली के अनुसार भी होता है।

इस शास्त्र में अरिष्ट काल का विचार सामान्यतः अष्टम भाव से किया जाता है। इसके साथ ही अष्टमेश,कारक शनि, लग्न ,लग्नेश राशि-राशिश, चन्द्रमा, कर्मभाव एवं कर्मेश, व्ययभाव एवं व्ययेश, तथा इसके अलावा हर एक लग्न के लिए मारक अर्थात् शत्रुग्रह, द्वितीय, सप्तम,तृतीय एवं अष्टम भाव तथा इस भाव के अधिपतियों के द्वारा शुभ एवं अशुभ पापग्रहों द्वारा दिये जाने वाले प्रभाव पर भी विचार करना आवश्यक होता है। तभी आपलोग अरिष्ट काल निर्माण के बारे में समझ पायेगें। वस्तुतःमारकेश का आशय यही होता है कि मारनेवाला या (मृत्युदेने) वाला ग्रह जिससे आयु में ह्रास करके मृत्यु प्रदान करता है। दूसरे शब्दों हम यह कह सकते है कि लग्न के स्वामी से शत्रुता रखने वाला ग्रह मारकेश होता है। जैसे - मंगल एवं बुध एक दूसरे के लिए मारकेश हैं। सूर्य एवं शनि एक दूसरे के लिए मारकेश हैं। शनि एवं चन्द्र एक दूसरे के लिए मारकेश हैं। गुरु एवं बुध एक दूसरे के लिए मारकेश है। राहु एवं केतु छाया ग्रह सूर्य,चन्द्र, मंगल,एवं बृहस्पति के लिए मारकेश हैं।

3.4 अरिष्ट काल निर्माण का ज्ञान:-

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार किसी भी ब्यक्ति की मृत्यु का समय जानने के लिए मारकेश ग्रहों और बाधक स्थान के स्वामी की स्थिति का विचार कर लेना चाहिए। जैसे- लग्न कुण्डली में आठवां भाव आयु का स्थान कहा गया है। और आठवें से आठवां मतलब तीसरा स्थान आयु के समय के लिए माना गया है। किसी भी भाव से बारहवां भाव उस भाव के आयु का ह्रास करता है। इस स्थिति में आठवें भाव का बारहवां भाव यानी सप्तम भाव, तथा तीसरे भाव का बारहवां भाव मतलब दूसरा भाव जातक की कुंडली में मारक बतायें गये हैं। इन भावों में स्थित राशियों के स्वामी की दशा, अन्तरदशा, शुक्ष्मदशा इत्यादि में जातक के आयु में अरिष्ट काल का निर्माण करता है। यथा---

अष्टमं ह्यायूषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत् ।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते ।।

(लघुपाराशरी)

यहां पर भी अरिष्ट का समय बताया गया है। दोनों मारक स्थान 2,7 में सप्तम स्थान से ज्यादा द्वितीय मारक स्थान मजबुत बताया गया है। मारक स्थान में पापग्रह हों और मारकेश से युक्त हों मारक स्थान स्थित पापग्रह की महादशा,अन्तर्दशा में मृत्यु होती है। अगर यदि उसकी दशा में मृत्यु नहीं हुई तो, जन्मलग्न से व्ययेश की दशा में मृत्यु होती है। साथ ही मारक स्थान स्थिति पापग्रह को प्रबलमारकेश कहा गया है। उसकेबाद मारकेश स्वयं मारक बनता है। चूंकि मारकेश की दशा,अन्तर्दशा में मृत्यु हो जाय इसकी जानकारी तो आप लोगों को हो गयी ,लेकिन इसका निर्णय करने के लिए कुछ और तथ्य प्रस्तुत किया जा रहा है। जैमिनी सूत्र के अनुसार--

(1):- लग्नेश अष्टमेश चर राशि में हो अथवा लग्नेश स्थिर राशि में, और अष्टमेश द्विस्वभाव में हो अथवा लग्नेश द्विस्वभाव राशि में हो और अषटमेश स्थिर राशि में हो तो दीर्घायु योग होता है।

- ❖ लग्नेश और अष्टमेश द्विस्वभाव राशि में हो अथवा लग्नेश चर राशि में और अष्टमेश स्थिर राशि में हो तो अथवा लग्नेश स्थिर राशि में और अष्टमेश चर राशि में हो तो मध्यमायु होती है | लग्नेश+अष्टमेश स्थिर राशि,लग्नेश चर राशि+अष्टमेश द्विस्वभाव राशि, लग्नेश द्विस्वभाव राशि+अष्टमेश चर राशि में हो तो अल्पायु योग होता है।

(2):- लग्नेश तथा शुभ ग्रह केन्द्र में हो तो दीर्घायु पणफर में हो तो मध्यमायु, आपोक्लिम में हो तो अल्पायु समझना चाहिए।

(3):- अष्टमेश तथा पापग्रह केन्द्र में हो तो अल्पायु, पणफर में हो तो मध्यमायु, आपोक्लिम मे हो तो दीर्घायु समझना चाहिए। उपरोक्त नियम के अनुसार या अन्य आयु निर्णय नियम के अनुसार जातक मध्यमायु, अल्पायु या दीर्घायु है। इसका पता लगाने के बाद जातक के अरिष्टकाल निर्णय के बारे में बताना चाहिए। इसकाल ,समय में आनेवाली मारकदशा में मृत्यु का फलादेश सम्भव हो सकता है उससे पहले आने वाली मारक दशा में मृत्यु नहीं होती पर शारीरिक कष्ट या मृत्यु तुल्य कष्ट सम्भव है।

❖ इस सिद्धांत के अनुसार मारक की स्थिति

(1):- 2,7,12 स्थान मारक स्थान है

(2):- मारक स्थान के स्वामी मारक बनते है।

(3):- मारक स्थान स्थित ग्रह मारक बनते है।

(4):- द्वितीयेश सप्तमेश युक्त ग्रह मारक बनते है।

(5):- पापग्रह मारक ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो मारक बनते है।

(6):- द्वितीयेश सप्तमेश चन्द्र या सूर्य हो तो मारक नहीं बनते हैं।

❖ लग्न एवं ग्रहों के अनुसार अरिष्ट काल का निर्माण:-

(1):- मेष लग्न में शुक्र, बुध, शनि मारक बनते हैं (शुक्र की दशा में मृत्यु नहीं होती है परन्तु मृत्यु के समान कष्ट होता है।)

(2):- वृषलग्न में बुध और मंगल मारक है(बुध द्वितीय और सप्तम में हो तो मारक बनता है) गुरु मारक गुणों से युक्त हो तो मारक बनता है।

(3):- मिथुन लग्न में मंगल मारक बनते है चन्द्र मारक नहीं बनते है।

(4):- कर्क लग्न में बुध, शुक्र, शनि का मारक के रुप में विचार करना चाहिए। यहां सूर्य मारक नहीं बनते है।

(5):- सिंह लग्न में बुध , शनि

(6):- कन्या लग्न में मंगल , बृहस्पति प्रबल मारक बनते है शुक्र यहां मारक नहीं बनते है।

(7):- तुला लग्न में गुरु मंगल प्रबल मारक होते है।

(8):- वृश्चिक लग्न में बुध, शुक्र, शनि मारक होते हैं।

(9):- धनु लग्न में शुक्र, शनि मारक होते है।

(10):- मकर लग्न में गुरु मंगल प्रबल मारक होते है।

(11):- कुम्भ लग्न में गुरु ,पापग्रह मारक बनते है।

(12):- मीन लग्न में शुक्र, शनि मारक बनते है यहां पर मंगल मारक नहीं होते है।

❖ **दशा अनुसार अरिष्ट काल निर्माण:-**

"लग्नपञ्चमभाग्यादिभावेष्वेकत्र संस्थितैः ।
चतुराद्यैर्ग्रहैर्जाता दीर्घ मध्याल्पजीविनः "।।
(जातकादेश)

त्रिमण्डलेष्वथैकस्मिन् पापस्तिष्ठति दुर्बलः ।
न सौम्यग्रहसंयुक्तस्तद्दशान्ते मृतिं वदेत् ।।
(जातकपारिजात आयु.श्लोक 45)

त्रिमण्डल-त्रिकोण-लग्न,पञ्चम और नवम भावों से आरम्भ होने वाले चार लगातार भावों के तीन मण्डलों (लग्न,द्वितीय तृतीय और चतुर्थ भावों का प्रथम मण्डल; पंचम,षष्ठ,सप्तम और अष्टम भावों का द्वितीय मण्डल नवम,दशम,एकादश तथा द्वादश भावों का तृतीय मण्डल) में से किसी एक मण्डल में निर्बल पापग्रह शुभग्रहों से असंयुक्त होकर स्थित हो तो उसकी दशा के अन्त में मृत्यु होती है। तीन मण्डलों में द्वादश भावों के विभाजन की यह व्यवस्था में भी बताया गया है--

❖ लग्नादि, पञ्चमादि,और नवमादि भावों के तीन मण्डलों में यदि लग्नादि प्रथम मण्डल में कोई चार ग्रह लगातार भावों में स्थित हो तो जातक दीर्घायु, पञ्चमादि द्वितीय मण्डल में हो तो मध्यमायु और नवमादि तृतीय मण्डल के लगातार भावों

में स्थिति हो तो अल्पायु होता है। राशि सन्धि में स्थित ग्रह की दशा रोगप्रद और राशि के अन्तिम अंश (30 वें अंश में) स्थित ग्रह मृत्युप्रद होते है।

(1):- यदि कोई पापग्रह अपनी राशि(या पापग्रह की राशि) का होकर छठें,आठवें भाव में अपने शत्रुग्रह से दृष्ट हो तो युद्ध में पराजित ग्रह की महादशा में अपनी अन्तर्दशा प्राप्त होने पर जातक के लिए मृत्यु कारक होता है।

(2):- महादशा क्रम में पांचवीं दशा के स्वामी मंगल हो अथवा छठी दशा के अधिपति बृहस्पति हो अथवा चौथी दशा के स्वामी शनि हो अथवा सातवीं दशा के स्वामी राहु हो तो ये सभी दशायें मृत्युदेनेवाली होती है। अर्थात इनमें से किसी भी दशा में मृत्यु हो सकती है। यथा--

" शनेश्चतुर्थी च गुरोस्तु षष्ठी दशा कुजाह्योर्यदि पञ्चमी सा।
कष्टा भवेद्राश्यवसानभागस्थितस्य दुःस्थानपतेस्तथैव " ।।
(फलदीपिका)

इस मन्त्रेश्वर के वचन के अनुसार पाँचवीं दशा के स्वामी मंगल या राहु हों तब भी वह मृत्युकारक होती है।

(3):- नीचराशिस्थ ग्रह की तीसरी दशा , शत्रुगृहस्थ ग्रह की पाँचवीं दशा और अस्त ग्रह की आठवीं दशा यदि महादशाक्रम में हो तो मृत्युदेनेवाली होती है। यदि ये दशापति पापन्वित हो तो विशेषरुप से मृत्यु देनेवाले होते है। विचारणीय भाव से द्वितीय और सप्तम भाव के स्वामी यदि उसभाव के कारक से युत या दृष्ट हो तो उनकी (द्वितीयेश और सप्तमेश की) दशान्तर्दशा में विचारणीय भाव के फल की हानि होती है।

अर्थात् द्वितीय और सप्तमभाव को मारक स्थान कहते हैं। इनके स्वामी और इन द्वितीय सप्तम भावों में स्थित ग्रह बलवान हो तो अपनी दशा में और निर्बल अष्टमेश या द्वादशेश की अन्तर्दशा में मृत्युदायक होता है।

(4):- अष्टमभाव में जिस राशि का द्रेष्काण उपस्थित हो,उसके स्वामी द्वारा अधिष्ठित राशि में शनि के संक्रमित होने पर मृत्यु होती है।अथवा द्रेष्काणेश की नवमांश राशि में शनि के संक्रमण काल में भी मृत्यु सम्भव होती है।

❖ छिद्र ग्रह के अनुसार अरिष्ट काल निर्माण:-

(1):- अष्टमभाव का स्वामी, (2):-अष्टमस्थग्रह (3):-अष्टमभाव को देखने वाले ग्रह (4):- खर--22 वें द्रेष्काण के स्वामी (5):-अष्टमेश के साथ स्थित ग्रह, (6):- 64 वें नवांश के स्वामी(7):-अष्टमेश के अधिशत्रु-- ए सात छिद्र ग्रह कहे जाते है। इनमें जो सर्वाधिक बलवान हो उसकी दशा मृत्युकारक होती है।

एक राशि में कुल 3 द्रेष्काण होते है।

इस प्रकार मेष राशि से मीन पर्यन्त कुल 36 द्रेष्काण होते है। इनमें 22 वें द्रेष्काण को खर द्रेष्काण कहते है। इसकी गणना लग्नस्थ द्रेष्काण से करना चाहिए। लग्न से सप्तमभाव

तक 21 द्रेष्काण होते है।अतः अष्टम भाव का प्रथम द्रेष्काण अर्थात् लग्न से 22 वां द्रेष्काण खर द्रेष्काण होता है। इसी प्रकार 12 राशियों में कुल नवांशों की संख्या 108 होती है। इसमें 64 वां नवमांश भी अष्टमभाव का प्रथम नवमांश होता है। इसकी गणना चन्द्रमा के नवमांश से ही की जाती है।

किसी भाव से द्वादशभावस्थ ग्रह और द्वादश भाव के स्वामी ग्रह इनमें जो बलवान हो उसकी दशा में उस भाव के अभिव्यक्त सम्बन्धी की मृत्यु होती है शनि,मान्दी,खरद्रेशकाणेश,रन्ध्रेश (अष्टमेश) और उसके नवांशपति इन ग्रहों में जो सर्वतो निर्बल हो उसकी महादशा में जब गोचर का शनि दुःख स्थान(6,8,12 वाँ भाव, लग्न या चन्द्रमा) में संक्रमित होता है तब जातक की मृत्यु होती है।

❖ **निर्याण काल विचार:-**

जीवमृत्युतनुयोगराशिगे गोचरेण रविजे धनक्षयः ।
तत्त्रिकोणगृहगेऽथवा नृणां तन्नवांशकयुते मृतिं वदेत्।।
भावत्रिकोणगे। मन्दे भावनाशं वदेब्दुधः।
भावाधिपतिकोणे वा गुरौ प्राप्ते मृतिर्भवेत् ।।
(जातक पारिजात)

लग्न स्पष्ट को 5 से गुणाकर गुणनफल में मान्दि के स्पष्ट मान को जोड़ने से योगफल मनुष्य का जीव होता है।

लग्नस्पष्ट *5+मान्दिस्पष्ट = जीव

चन्द्रमा के स्पष्ट मान को 8 से गुणाकर मान्दि के स्पष्ट मान में जोड़ने से योगफल देह होता है।

चन्द्र स्पष्ट *8+ मान्दि स्पष्ट = देह

तथा सप्तगुणित मान्दि स्पष्ट में सूर्य के स्पष्ट मान को जोड़ने से योगफल मृत्यु कहलाता है।

मान्दि स्पष्ट *7+ स्पष्ट सूर्य=मृत्यु

(1):- उक्त जीव, देह और मृत्यु के मानों की योगज राशि में जब गोचर का शनि प्रवेश करता है तब धन का क्षय होता है। उस योगज राशि से पंचम और नवम राशि में अथवा उसकी नवांश राशि में गोचर के शनि के संक्रमण काल में मृत्यु होती है।

जिस भाव से त्रिकोण (5,वें 9 वें) भाव में शनि स्थित हो उस भाव के फल का नाश होता है । लग्नेशाधिष्ठित राशि से पंचम या नवम राशि में गोचर के बृहस्पति के संक्रमण काल में मृत्यु होती है

(2):- लग्न सूर्य और मान्दि के स्पष्ट राश्यादि की योगज राशि में अथवा उस राशि से पंचम और नवम राशि में गोचर का बृहस्पति जब प्रवेश करता है तब जातक की मृत्यु होती है।

उदाहरण:-माना कि स्पष्ट लग्न-

2 राशि/ 20 अंश/ 59 कला/ 52 विकला है।

सूर्यस्पष्ट:- 2 राशि/ 29 अंश/ 15 कला/ 12 विकला है।

मान्दि स्पष्ट:- 7 राशि/ 2अंश/ 30कला/ 6 विकला है। अतः नियमानुसार सबका योग किया-

लग्न स्पष्ट = 2/20/59/52

सूर्यस्पष्ट। = 2/29/15/12

मान्दिस्पष्ट =7/2/30/6

योग। = 0/22/45/10

अर्थात् मेष राशि के 22 अंश / 45 कला/ 10 विकला पर जब गोचर का बृहस्पति पहुंचेगा उस समय अथवा उससे पंचम सिंह या नवम धनु राशि के 22/45/10 अंशादि पर बृहस्पति के पहुचने पर जातक की मृत्यु होगी।

लग्नेश के स्पष्ट राश्यादि भोग में यमकण्टक (यमघण्ट) के स्पष्ट राश्यादि भोग को घटाने से अवशिष्ट राश्यादि के नवमांश राशि में गोचर के बृहस्पति के प्रवेश करने पर निःसंन्देह मृत्यु होती है।

(3):- मान्दि (गुलिक) के स्पष्ट राश्यादि भोग में शनि के स्पष्ट राश्यादि भोग को घटाने से अवशिष्ट राश्यादि की नवांश राशि से त्रिकोण (पंचम या नवम) राश्यादि में गोचर के शनि के आने पर मृत्यु होती है।

अथवा धूमादि पाँच उपग्रहों की योगज राश्यादि में जिस राशि का द्रेष्काण हो उस राशि में शनि के जाने पर मृत्यु होती है।

मान्दि और शनि की स्पष्ट राश्यादि को अलग-अलग नव से गुणाकर दोनों गुणनफलों की योगज राश्यादि में शनि के संक्रमण काल में मृत्यु होती है।

(4):- सूर्य ,शनि और मान्दि की स्पष्ट राश्यादि को नव से गुणाकर इनके योगफल में नवगुणित सूर्य और मान्दि के स्पष्ट भोग को युत करने से प्राप्त योगज राशि की नवांश राशि में सूर्य के संक्रमण काल में मृत्यु होती है।

पंचमेश अथवा लग्नेश से युतग्रह के दशा में
12 (दिननायक=सूर्य=12) से भाग देने पर शेष तुल्यमास में मृत्यु होती है।

चन्द्रमा ,शनि और मान्दि के स्पष्ट राश्यादि भोग को 9 से अलग-अलग गुणाकर उनके योग में अथवा इध तीनों के स्पष्ट राश्यादि भोग के योग को 6 से गुणाकर गुणनफल में नवगुणित मान्दि के स्पष्ट राश्यादि को जोड़ दें। इस योजक राश्यादि को चन्द्रमा के

स्पष्ट राश्यादि में जोड़ने से प्राप्त राश्यादि की नवांश राशि में चन्द्रमा के संक्रमण काल में जातक मृत्यु को प्राप्त करता है।

- **अरिष्टकाल निर्माण की दिशा:-** दिन में जन्म हो और यदि रात्रिबली राशि लग्नस्थ हो अथवा रात्रि में जन्म हो और दिवाबली राशि लग्नस्थ हो तो जन्मलग्न के नवमांशपति से दृष्ट ग्रह ,उसके साथ स्थित ग्रह में बलवान(स्थानबली) ग्रह की दिशा में मृत्यु होती है।
- **मोहकाल और शव परीणाम:-** उदित नवमांश राशि यदि अपने स्वामी से दृष्ट हो तो तथि अनुदित नवांश भाग से जो अनुपातिक काल (यदि 108 नवांश में 60 घटी लब्ध हो तो अनुदित नवांश में क्या ?) हो तो उतने समय तक मृत्यु पूर्व मूर्छावस्था में जातक रहता है।यदि उक्त नवांश राशि पापग्रह से दृष्ट हो तो उक्त मुर्छाअवधि द्विगुणित तथा यदि शुभग्रहों से दृष्ट हो तो उक्त मुर्छा अवधि त्रिगुणित होता है।

लग्न द्रेष्काण से 22वाँ द्रेष्काण यदि क्रूर,शुभ या जलचर मिश्र द्रेष्काण हो तो जातक का शव अग्नि से , भूमि में गाड़ने से , जल से अथवा वन्य पशुओं के आहार से पंचतत्व में विलीन हो जाता है।

- **मृत्यु के बाद जीव की गति:-** मृत्युकालिक लग्न में यदि बृहस्पति स्थित हो तो मृत्यु के अनन्तर जीव देवलोक में , सूर्य और मंगल हो तो मृत्यु लोक में, यदि चन्द्रमा शुक्र हो तो पितर लोक में और यदि बुध और शनि हो तो जीव नरक में जाता है।
- शुभग्रह अपनी उच्च राशि में स्थित होकर व्ययभाव में पाप और शुह दृष्टि से युत हों और शुभवर्ग में स्थित हो तो स्वर्गादिभोग विपुल यात्रा में सुलभ होता है । बृहस्पति दशमेश होकर यदि द्वादव भाव में प्राप्त हो अथवा सौम्यग्रहों से दृष्ट हो तो जातक मृत्यु के अनन्तर देवत्व प्राप्त करता है।
- धनु राशि के नवमांश में स्थित बृहस्पति बलान्वित होकर यदि कर्क राशि के लग्न में स्थित हों तीन या चार ग्रह केन्द्र भावों में स्थित हों तो जातक मरणोपरान्त ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।
- मेषादि के नवांश का होकर बृहस्पति धनुराशि के लग्न में , सप्तमभाव में शुक्र और बली चन्द्रमा कन्या राशिगत हो तो जातक मृत्यु के उपरान्त परमपद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है।
- **द्रेष्काण के अनुसार अरिष्ट काल निर्माण:-** जन्मलग्न द्रेष्काण से 22 वाँ द्रेष्काण जातक के मृत्यु का कारण होता है। इस 22वें द्रेष्काण के स्वामी अपने स्वभाव के अनुसार अपनी दशा काल में मृत्यु हेतु उपस्थित करते है। यथा--

"उदयाद्द्वाविंशतितमद्रेष्काणो भवति कारणं मृत्योः।

तस्याधिपतिर्भवो वा निर्याणं सूचयेत्स्वगुणैः" ॥ (सारावली)

- **मेषः-**

22 वाँ द्रेष्काण यदि मेष का प्रथम द्रेष्काण पापग्रह से दृष्ट या युत हो तो जल, अग्नि, विष से, अथवा पित्त के प्रकोप से , द्वितीय द्रेष्काण हो तो जल , शीत या ओले एवं वन्य जन्तुओं से , तृतीय द्रेष्काण हो तो तडा़ग (पोखर) या कूएँ में गिरने से मृत्यु होती है।

- **वृषः-**

22 वाँ द्रेष्काण यदि वृष राशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो बैल ,अश्व, गधा और ऊँट से, द्वितीय द्रेष्काण हो तो पित्तप्रकोप, अग्नि और चोर से , तृतीय द्रेष्काण हो तो वाहन,आसन और अश्वादि से गिर कर अथवा शस्त्राघात से मृत्यु होती है.

- **मिथुनः-**

22 वाँ द्रेष्काण मिथुन राशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो कास-श्वास से , द्वितीय द्रेष्काण हो तो भैंस, विष अथवा सन्निपात ज्वर से , तृतीय द्रेष्काण हो तो वन में रहनेवाले पशुओं से मृत्यु होती है।

- **कर्कः-** बाईसवाँ द्रेष्काण यदि कर्क का प्रथम द्रेष्काण हो तो मगर,केकड़ा और मद्यपान, काँटे आदि से,द्वितीय द्रेष्काण हो तो आघात या विषपान से ,तृतीय द्रेष्काण हो तो श्वास, प्रमेह, गुल्म या श्रमाधिक्य जन्यमूर्छा से मृत्यु होती है।
- **सिंहः-** बाईसवाँ द्रेष्काण यदि सिंह राशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो जल,विष या पैर की व्याधि से ,द्वितीय द्रेष्काण हो तो जलज व्याधि या वन में विचरण के समय पशु वन्य में ,तृतीय द्रेष्काण हो तो विष ,शस्त्र अथवा अभिशाप या गिरने से मृत्यु होती है।
- **कन्याः-** बाईसवाँ द्रेष्काण यदि कन्या का प्रथम द्रेष्काण हो तो मस्तक की व्याधि से अथवा अथवा वातज व्याधि से , द्वितीय द्रेष्काण हो तो सर्प से ,वन पर्वतीय प्रदेश में अथवा राजा के पुत्र से ,तृतीय द्रेष्काण हो तो हाथी ,ऊँट गधे से ,जल या गढ्ढे में गिरने से , स्त्री के द्वारा या मद्य पान से मृत्यु होती है।
- **तुलाः-** बाईसवाँ द्रेष्काण तुला राशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो स्त्री से ,चौपायों से गिरने से द्वितीय द्रेष्काण हो तो उदरव्याधि से तृतीय द्रेष्काण हो तो सर्प या जलीय जन्तुओं से मृत्यु होती है।
- **वृश्चिकः-** बाईसवाँ द्रेष्काण यदि वृश्चिक का प्रथम द्रेष्काण हो तो विष, स्त्री शस्त्राघात से अथवा भोजन पानादि से ,द्वितीय द्रेष्काण हो तो वस्त्र में फँसने , किसी भारी वस्तु में दबने से तृतीय द्रेष्काण हो तो कंकण,पत्थर जन्य वेदना या घाव से अथवा अस्थिभंग से मृत्यु होती है।

- **धनु:-** बाईसवाँ द्रेष्काण यदि धनु राशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो विष या वायु प्रकोप से गम्भीर व्याधि से, तृतीय द्रेष्काण हो तो जल में डूबने से अथवा जल - जन्तुओं से, उदर व्याधि से मृत्यु होती है।
- **मकर:-** बाईसवाँ द्रेष्काण यदि मकर राशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो राजा और सिंह व्याघ्र आदि हिंसक वन्यप्राणियों से,जङ्घास्थितिभङ्ग होने से ,जलचर विष, अश्व या सर्पदंश से द्वितीय द्रेष्काण हो तो ज्वरादि से ताप से,अस्त्र-शस्त्रादि से चोर मानवेत्तर प्राणियों से मा़त्युभय होता है।
- **कुम्भ:-** बाईसवाँ द्रेष्काण यदि कुम्भराशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो स्त्री, जल उदरविकार, पर्वत, वन आदि स्थानों में हिंसक जीवों के द्वारा ,द्वितीय द्रेष्काण है तो स्त्रीकृत आपदा से , गुह्यप्रदेश के रोग से , तृतीय द्रेष्काण हो तो मैथुनाधिक्यता से , चतुष्पदों से अथवा मुखरोग से मृत्यु होती है।
- **मीन:-** बाईसवाँ द्रेष्काण यदि मीन का प्रथम द्रेष्काण हो तो गुल्म , संग्रहणी प्रमेह या युवती स:त्री के कारण , जङ्घास्थिभङ्ग से उदरव्याधियों से , दूषित ग्रह के द्वारा , द्वितीय द्रेष्काण हो तो नौका- दुर्घटना से जल में मछलियों के द्वारा , तृतीय द्रेष्काण हो तो कठिन व्याधियों से मृत्यु होती है।

❖ **चन्द्रमा के अनुसार अरिष्टप्रद योग निर्माण:-**

बलवान अरिष्ट कारक ग्रह जिस राशि में स्थित हो उस राशि में, जन्मलग्न की राशि में अथवा जन्मकालिक चन्द्र राशि में जब गोचर का चन्द्रमा संक्रमण करे और उसपर पापग्रहों की दृष्टि हो तो मृत्यु होती है। महर्षियों के कथनानुसार वर्ष के भीतर ही यह मृत्यु होती है।

❖ चन्द्रमा अपने भ्रमण काल में भचक्र की एक परिक्रमा में 27,38305 दिन लगता है। इस प्रकार एक वर्ष की अवधि में वह भचक्र की 365/27,38305=13,32941 परिक्रमा करता है।

अर्थात् भचक्र के किसी निश्चित स्थान पर वर्ष में कुल 13 बार चन्द्रमा आता है। जन्मलग्न ,जन्मराशि और प्रबल योगकारक ग्रह स्थित राशि पर वर्ष में 13-13 बार आयेगा।

इस योग के अनुसार इन स्थानों पर चन्द्रमा(प्रबलमारक) जब-जब आयेगा तब-तब जातक के मृत्यु की सम्भावना होगी। वर्ष में ऐसी स्थितियों की कुल संख्या 13*3=39 होगी। चन्द्रमा क्षीण होने या छठे, आठवें भाव का स्वामी होने पर प्रबल मारक होता है। एक वर्ष में चन्द्रमा 13 बार क्षीण होगा और 13 बार ही वह छठे या आठवें भाव का स्वामी होगा तथा इसी 13 बार में जब चन्द्रमा सभी पापग्रहों से दृष्ट होगा उस समय जातक की मृत्यु होगी

' योगे बलिन: स्थानं स्वं वा लग्नं गते$पि वा लग्नं।

बलवति पापैर्दृष्टे वर्षान्ते मृत्युकालः स्यात् ' ॥

- **दोवर्ष,तीनवर्ष के आयु में अरिष्टकाल निर्माण:-**वृश्चिक राशि का शनि वक्री होकर केन्द्र अथवा छठे या आठवें भाव में स्थित होकर यदि बलवान मंगल से दृष्ट हो तो जातक की दो वर्ष की आयु होती है।

मंगल की राशि (मेष-वृश्चिक) का बृहस्पति यदि अष्टम भाव में सूर्य, चन्द्रमा , मंगल, और शनि से दृष्ट हो तो तथा शुक्र उसे न देखता हो तो जातक की तीन वर्ष में कालकवलित होता है।

- **चारवर्ष के आयु में अरिष्ट निर्माण:-** जन्मलग्न से छठे, आठवें भाव में कर्कराशिगत बुध यदि चन्द्रमा से दृष्ट होकर हर प्रकार के बल से युक्त होने पर भी जातक चार वर्ष के भीतर ही मृत्यु को प्राप्त करता है।
- **आठवें भाव के राशि के अनुसार अरिष्ट निर्माण काल:-.** प्राचीन आचार्यों ने कहा है कि आठवें स्थान की राशि कालपुरुष के जिस अंग पर अधिकार करती है, मानव के उसी अंग में मरणकारक रोग पैदा होता है।

राशियां।	**मरणकारक**
मेष।	सिर की पीड़ा, मानसिक रोग
वृष।	आँख, कान, नाक,मुँह,गला रोग
मिथुन	हाथ, फेफड़े, सांस नली का रोग
कर्क।	हृदयरोग
सिंह	उदर रोग
कन्या।	नाभि तथा गुर्दा रोग
तुला।	मूत्र यथा वस्थि रोग
वृश्चिक।	अण्डकोष तथा गुप्त रोग
धनु।	गठिया रोग
मकर।	जंघा रोग
कुम्भ।	जाघ की हड्डी टूटना
मीन।	पोलियो

- **तृतीय भाव में स्थित ग्रहों से अरिष्ट निर्माण:-** कुण्डली के तीसरे भाव से आयु का विचार किया जाति है। इस भाव में सूर्यादि ग्रह स्थित हो तो निम्न रोगों की वजह से मरण होता है।

ग्रह।	**मरणकारक रोग**
सूर्य	सरकारी दण्ड

चन्द्र	टी.बी
मंगल	हथियार की चोट,आग से जलना तथा घाव
बुध	बुखार
बृहस्पति।	शोक, रोग
शुक्र।	प्रमेह पीड़ा
शनि, राहु।	जहर से पीड़ा, जलरोग,आग लगना, खड्डे में गिरना, ऊँचाई से गिरना.तथा फाँसी।

- **जल सम्बन्धित अरिष्टकाल निर्माण:-** सूर्य लग्न में स्थित हो या सप्तम में हो, दोनों को पापग्रह देखते हो तो कलह के करण या जल में डूबने से मृत्यु होती है।

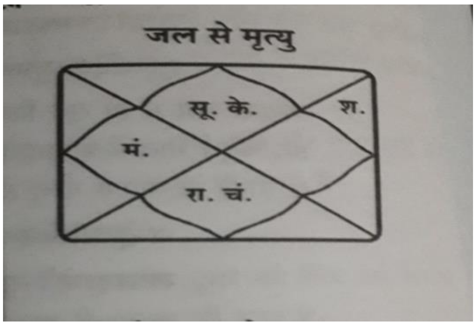

- **फांसी सम्बन्धित अरिष्टकाल निर्माण:-** यदि किसी जातक की जन्मकुंडली में पञ्चम या नवम स्थान में पापग्रह स्थित हो व शुभ ग्रह नहीं देखते हों तो ऐसे जातक की फाँसी लगने से या रस्सी के बन्धन से मृत्यु होती है।

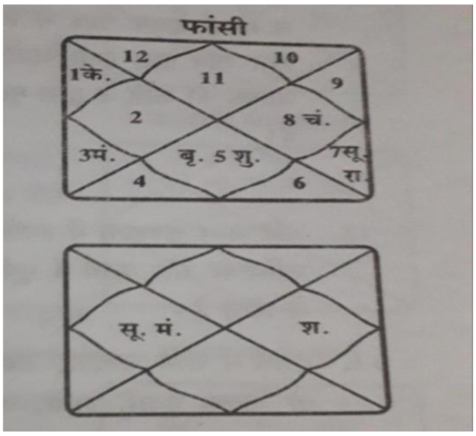

यदि जन्मांक में चन्द्रमा शनि की राशि में बैठा हो व दो पापग्रहों के मध्य हो तो जातक की मृत्यु फाँसीसे या अग्नि से होता है।

यदि जन्मकुंडली में लग्न से चतुर्थ स्थान में सूर्य या मंगल हो और दशम स्थान में शनि हो तो जातक की शूल के प्रभाव से मृत्यु होती है।

आईए अभी तक तो आपलोग विभिन्न अरिष्ट काल निर्माण के योगों को भलीभांति समझ गये होगें अब आपलोग कुण्डली में इन अरिष्टकाल को समझकर ग्रहों के जप कराकर इससे लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

बोधात्मक प्रश्न

(1):- लग्नेश तथा शुभग्रह केन्द्र में हो तो होता है ?

(क)- दीर्घायु योग। (ख)- मध्यायु योग

(ग)- अल्पायु योग। (ग)- कोई नहीं

(2):- पापग्रह मृत्यु कारक ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो क्या देते हैं।

(क)- आयु कारक बनते हैं।

(ख)-मारक बनते हैं।

(ग)-आयु में वृद्धि करते हैं।

(घ)- परम आयु प्रदान करते हैं।

(3):- कर्क लग्न में बुध,शुक्र,शनि मार्केश होते हैं।लेकिन इसी लग्न में कौन से ग्रह मारक नहीं होते हैं।

(क)-चन्द्र (ख)- मंगल

(ग)- गुरु। (घ)- सूर्य

(4):- द्वितीयेश सप्तमेश चन्द्रमा या सूर्य हो तो होता है?

(क)- मारक बनते हैं।

(ख)- मारक नहीं बनते।

(ग)- निश्चित मारक बनते हैं।

(घ)- कुछ नहीं करते हैं।

(5):- वृश्चिक राशि का शनि वक्री होकर केन्द्र अथवा छठें या आठवें भाव में स्थित होकर बलवान मंगल से दृष्ट हो तो कितने वर्ष की जातक की आयु होती है।

(क)- 2 वर्ष। (ख)- 4 वर्ष

(ग)- 3 वर्ष। (घ)- 1 वर्ष

❖ **सूर्यः-** भगवान सूर्य सिंह राशि के स्वामी है। इनकी महादशा छ:वर्ष की होती है। सूर्यः- की प्रसन्नता और शान्ति के लिए नित्य सूर्याघ्र्य देना चाहिए और हरिवंश पुराण का श्रवण करना चाहिए माणिक्य धारण करना चाहिए तथा गेहूं , सवत्सा गाय गुड़, ताॅंबा, सोना एवं लाल वस्त्र ब्राह्मण को दान करना चाहिए। सूर्य की शान्ति के लिए उनके बीज मन्त्र का जप 7000 करें। इससे सूर्य जनित अरिष्टों से निजात मिलेगा।

- **चन्द्रमा:- चन्द्र देव** की प्रतिकुलता से भौतिक रुप से मनुष्य को मानसिक कष्ट तथा श्वसन समस्या जनित अरिष्ट होता है। इनकी प्रसन्नता और शान्ति के लिए सोमवार का व्रत,शिवोपासना करनी चाहिए तथा मोती धारण करना चाहिए। चावल, कपुर, सफेद, वस्त्र ,चादी,शंख,वंशपात्र, सफेद चन्दन , स्वेतपुष्प, चीनी, बैल ,दही,और मोती ब्राह्मण को दान करना चाहिए। साथ ही इनके बीज मन्त्र का 11000 हजार जप करने से लाभ होता है।
- **मङ्गल:-** मङ्गल ग्रह की शान्ति के लिए शिव-उपाशन तथा प्रवाल रत्न धारण करने का विधान है। दान में तांबा सोना, गेहूं , लालवस्त्र,गुड़, लाल चन्दन, लाल फूल,केवल, कस्तुरी, लालवृषभ, मसूर की दाल तथा भूमि दान करना चाहिए। मंगलवार का व्रत-पूजन करना चाहिए तथा हनुमानजी के चालिसा का पाठ करना चाहिए। इनकी महादशा साथ वर्षो तक रहती है। यह मेष तथा वृश्चिक राशि के स्वामी हैं। इनके शान्ति के लिए इनके बीज मन्त्रों का 10000 हजार जप करना चाहिए।
- **बुध:-** के बीज मन्त्रों का जप 9000 करना या कराना चाहिए। विशेष परिस्थितियों में विद्वान ब्राह्मण का सहयोग लेना चाहिए।
- **बृहस्पति:-** बृहस्पति धनु और मीन राशि के स्वामी है।इसकी महादशा सोलह वर्ष की होती है।इनकी शान्ति के लिए प्रत्येक अमावश्या को तथा बृहस्पति का व्रत करना चाहिए । और पीला पोखराज धारण करना चाहिए। ब्राह्मण को दान में पीलावस्त्र ,सोना, हल्दि, घृत, पीला अन्न,पुखराज ,अश्व ,पुस्तख मधु, लवण ,शर्करा, भूमि तथा छत्र देना चाहिए। इनकी शान्ति के लिए बीज मन्त्र का 19000 जप करना चाहिए।
- **शुक्र:-** नवग्रह मण्डल में शुक्र का प्रतीक पूर्व में श्वेत पंचकोण है। शुक्र की प्रतिकूल दशा में इनकी अनुकूलता और प्रसन्नता हेतु " ऊँ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः" इस मन्त्र का 16000 हजार जप करने से शुक्र जनित अरिष्टों टका समन होता है।
- **शनि:-** शनि के अधिदेवता प्रजापति ब्रह्मा और प्रत्यधिदेवता यम हैं।इनका वर्ण कृष्ण, वाहन गीध तथा रथ लोहे का बना हुआ है। यह एक-एक राशि में तीस-तीस महिने रहते हैं। यह मकर और कुम्भ राशि के स्वामी है। तथा इनकी महादशा 19 वर्ष की होती है। इनकी शान्ति के लिए मृत्युञ्जय जप, नीलम,धारण करना चाहिए। तथा ब्राह्मणों को तिल, उड़द,भैस ,लोहा, तेल ,कालावस्त्र,नीलम,काली गौ, जूता ,कस्तूरी, और सुवर्ण का दान देना चाहिए। शनि के बीज मन्त्र का जप 23000 हजार करने से निकृत अरिष्टप्रदयोगों का दोष दूर होता है।

- **राहुः-** राहु की शान्ति के लिए मृत्युञ्जय जप,तथा फिरोजा धारण करना चाहिए। इनके लिए अभ्रक, लोहा, तिल नीला वस्त्र , ताम्रपात्र,सप्तधान्य, उड़द, गोमेद,तेल, कम्बल, घोड़ा तथा खड्ग का दाध करना चाहिए। साथ ही राहु के बीज मन्त्र का 18000 हजार जप करने से शनि कृत अरिष्टों से छुटकारा मिलता है।
- **केतुः-** केतु के बीज मन्त्र का "ऊँ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः" का श्रद्धापूर्वक जप करना चाहिए। तथा जप का समय रात्रि में होना चाहिए। विशेष परिस्थितियों में विद्वान ब्राह्मण का सहयोग लेना चाहिए। इनकी जप संख्या है 17000 है।

नवग्रहों के जो जो स्वरूप तथा वर्ण बताये गये है , उन्ही के अनुसार वस्त्र तथा पूजन करनी चाहिए। जिस ग्रह को जो अन्न प्रिय है उसीग्रह का प्रसाद उन्हें चढ़ाना चाहिए ग्रहों षोडश उपचार से पूजन करनी चाहिए। नवग्रहों के जप के बाद उनके दशांश संख्या का हवन भी होता है।सूर्य की आर्क, चन्द्रमा की पलास, मंगल की खदिर,बुध की अपामार्ग, गुरु की अश्वत्थ, शुक्र की उदुम्बर, शनि की शमी,राहु की दूर्वा, तथा केतु की कुशा होती है। इन समिधाओं से नवग्रह का हवन होता है।

3.6 सारांश

मान्दि स्फुट और चन्द्र स्फुट को जोड़कर18 से गुणा करें उसमें शनि स्फुट को जोड़कर 9 से गुड़ाकर जोड़ दे, जब गोचर चन्द्रमा उस राशि के नवांश में जाता है तो उस दिन अरिष्ट दिन होगा। लग्न स्फुट मान्दि स्फुट और चन्द्र स्फुट को जोड़ देने से जो राशि आती है, उसी राशि के उदय होने पर जातक की मृत्यु होती है।

लग्न स्फुट और मान्दि स्फुट को जोड़कर जो राशि आवे एवं नवांश हो उस राशि के उसी नवांश पर जब गोचर में सूर्य आते हैं, तब जातक की मृत्यु होती है।

लग्नेश के साथ जितने ग्रह हो उन ग्रहों की महादशा वर्षजोड़कर 12 का भाग लें। जो शेष बचे उसी संख्या अनुसार सौरमास में अरिष्ट होता है।

3.7 पारिभाषिक शब्दावली

अरिष्ट= आपत्ति, विपत्ति ,अशुभ, अमंगलकारी लक्षण, मरण कारक योग,

निर्माण=बनना

काल= समय

अहोरात्र= अहोरात्र में तीन सन्ध्या में होती है। (1) प्रातः कालीन सन्ध्या (2) मध्याह्न कालीन सन्ध्या (3) सायंकालीन सन्ध्या, घट्यर्ध= आधा घटी

ग्रह अस्त कब होते हैं = सूर्य और चंद्रमा का अन्तर 12 अंश से कम होने पर चन्द्रमा अस्त होते हैं।

(2)-सूर्य और मंगल का अन्तर 17 अंश से कम होने पर मंगल अस्त होते हैं।

(3)- सूर्य और बुध का अन्तर 14 अंश से कम होने पर बुध अस्त होता है। किन्तु बुध के वक्री। होने पर यह अन्तर घटकर 12 अंश का हो जाता है।

(4)- सूर्य और बृहस्पति का अन्तर 11 अंश से कम होने पर बृहस्पति अस्त हो जाते हैं।

(5)- सूर्य और शुक्र का अन्तर 10 अंश से कम होने पर शुक्र अस्त होता है।किन्तु शुक्र के वक्री होने पर यह अन्तर घटकर 8 अंश हो जाता है।

(6)- सूर्य और शनि का अन्तर 15 अंश से कम होने पर शनि अस्त हो जाता है ।

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1)- क

(2)- ख

(3)- घ

(4)- ख

(5)- के

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1)- जातक पारिजात

(2)- चिकित्सा ज्योतिषम

(3)- सारावली

(4)- पञ्चस्वरा

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(1)- अरिष्ट काल निर्माण का विस्तृत विवेचन किजिये।

(2)- दशा अनुसार अरिष्ट काल निर्माण का उल्लेख सविस्तार प्रदर्शित करिये।

इकाई 04 आयु परीक्ष

इकाई की संरचना

4 . 1 प्रस्तावना।

4 . 2 उद्देश्य।

4 . 3 आयु की परिभाषा एवं आयु परिक्षण।

4 . 4 अरिष्ट दशानुसार आयु ज्ञान, निसर्गायु,अंशायु, पिण्डायु के अनुसार आयुनिर्णय।

4 . 5 बोधप्रश्न।

4 . 6 सारांश।

4 . 7 पारिभाषिक शब्दावली।

4 . 8 बोधप्रश्नों के उत्तर।

4 . 9 सन्दर्भ ग्रन्थ सुचि।

4 . 10 निबन्धात्मक प्रश्न।

4 . 1 प्रस्तावना

आयु की सीमा निर्धारण में मारक ग्रह का भी एक निर्णायक स्थान होता है। मारक ग्रहों के निर्णय के उपरान्त उनमें बल के तारतम्य से क्रम का निर्धारण किया जाता है। और बली मारकेश की दशा-अन्तर्दशा एवं योगायु अथवा मध्य- दीर्घायु के वर्षों का जबतक समन्वय होता है तभी तक वास्तव में आयु मानी जाती है। यदि कोई ब्यक्ति यह कहें कि चाहे मैं कुछ भी असावधानी करूं इस अवधि में से पूर्व तो मेरी मृत्यु नहीं होगी, यह यह धारणा नितान्त अतर्क संगत है ।आशय यह है कि समस्त आयुर्दाय विचार सामान्य परिस्थितियों में ही लागू होता है आयुर्दाय जिससे कि आयु का ज्ञान किया जाता है इसे आयुर्दाय कहते हैं। साथ ही आयु परीक्षण से यहां पर इस बात का भी विचार करना चाहिए कि आयुष्य उन लोगों के लिए है जो धर्म मार्ग का अनुसरण करतें हैं। संतुलित भोजन, इन्द्रियों पर जिनका पूर्ण अधिकार है,तथा जो अपने कुल की मर्यादा के अनुसार आचार -ब्यवहार का निर्वहन करते हैं। साथ ही पाप कर्म में निरत, लोभग्रस्त चोरी करने वाला हमेशा अल्पायु ही होता है। इन सभी विषयों को आप लोग अध्ययन करेंगे साथ ही आयु का परीक्षण भी कुण्डली के अनुसार करेंगे।

4 . 2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आपलोग निम्नलिखित विषय का अध्ययन करेंगे।

(1):- आयु की परिभाषा और परिक्षण का आशय जानेंगे।

(2):- अरिष्ट दशा के अनुसार आयु परीक्षण करेंगे।

(3):- दीर्घायु , मध्यायु , अल्पायु , परमायु , अमितायु के बारे में अध्ययन करेंगे।

(4):- कुण्डली के अनुसार आयु परीक्षण के योगों को पढ़ेंगे।

(5):- आठ प्रकार के आयुनिर्णय के बारे में जानेंगे।

(6):- निसर्गायु , अंशकायु , पिण्डायु के अनुसार आयु निर्णय करके आयु में बृध्दि - ह्रास के बारे में भी अध्ययन करेंगे।

4 . 3 आयु की परिभाष

इस इकाई में आयु से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन किया जायेगा। आपलोग पहले ये समझें कि आयु किसे कहते हैं। वस्तुत: जीवन काल को आयु कहते हैं। या जीवन से सम्बन्धित अवस्था पूर्ण आयु , मध्य आयु , या अल्पायु अवस्था को , या जीवन लीला समाप्त होने तक के काल को आयु से सम्बन्धित ही समझना चाहिए।

परीक्षण :- यहां पर परीक्षण के सम्बन्ध हैं आठ प्रकार के जो आयु साधन बताये गये है जैसे-

(1)- निसर्गायु

(2)- पिण्डायु

(3)- लग्नायु

(4)- अंशकायु

(5)- रश्मिजायु

(6)- चक्रायुध

(7)- नक्षत्रायु

(8)- अष्टवर्गजायु

के अनुसार इस जातक की आयु कितनी होगी, क्या यह जातक अधिक उम्र जिवित रहेगा या नहीं इन सभी विषयों को आप लोग समझेंगे।

जातक के जन्मकुंडली में लग्न , सूर्य , चन्द्र इन तीनों में से जो बलवान हो उसकी दशा प्रथम होती है। अथवा जो ग्रह जन्म के समय अपनी उच्च राशि में या स्व राशि में या अपने नवांश में या मित्र की राशि में बली हो या दशा आरम्भ काल में बलवान हो मित्र के नवमांश में या उच्च नवमांश में शुभग्रह से दृष्ट हो वह अपनी दशा में शुभफल देता है अर्थात आयु में बृध्दि करता है।

जन्म के समय जो ग्रह नीच या शत्रु राशि में, शत्रुग्रह राशि के नवांश में नीचांश में सूर्य के सानिध्य में (अस्त) , रस्मि हीन , पापग्रह से दृष्ट या युक्त होता है । उसकी दशा अशुभ फल देने वाली होती है। अर्थात् आयु में कभी होती है।

जिस ग्रह की जो आयु होती है वह उस ग्रह की दशा होती है। समस्त ग्रह अपनी-अपनी दशा में अपने-अपने गुण दोष के आधार पर शुभ अशुभ फल प्रदान करते हैं।

जैसे:- जन्मकाल में यदि शुक्र - बृहस्पति और बुध अष्टम भाव में या स्थिर राशि (बृष, सिंह , वृश्चिक , कुम्भ) में रहें तो जातक निश्चित ही कठिन कार्यों को करने वाला और कठोर हृदय वाला होता है। अष्टमेश यदि एकादश भाव में रहे तो जातक बाल्यावस्था में दुःखी और बाद में सुखी होता है। इस प्रकार अष्टमेश पापग्रह हों और

यदि वह एकादश भाव में रहे तो जातक अल्पायु होता। यदि अष्टमेश शुभग्रह हो या शुभ ग्रह से युक्त होकर एकादश भाव में रहे तो दीर्घायु होता है।

अष्टमेश यदि पाप ग्रह से युत होकर षष्ठ या द्वादश भाव में रहे तो जातक अल्पायु होता है। यदि अष्टमेश अष्टम भाव में ही रहे तो दीर्घायु होता है अष्टमेश यदि लग्नेश से युत होकर षष्ठ या द्वादश भाव में रहे तो भी जातक अल्पायु होता है। यदि शनि अष्टम भाव में रहे तो जातक दीर्घायु होता है इस प्रकार आयु का शास्त्र विधि के अनुसार परीक्षण करना चाहिए।

4.4 अरिष्ट दशा अनुसार आयु ज्ञान, निसर्गायु

अंशायु , पिण्डायु के अनुसार आयु निर्णय

त्रिमण्डल-त्रिकोण लग्न,पंचम और नवम भावों से आरम्भ होने वाला चार लगातार भावों के तीन मण्डलों,

(प्रथम मण्डल के भाव:- 1,2,3,4

(प्रथम-द्वितीत-तृतीय-चतुर्थ) भाव को प्रथम मण्डल कहते हैं।

द्वितीय मण्डल के भाव:- 5,6,7,8 (पंचम,षष्ठ,सप्तम और अष्टम भाव) को कहते हैं।

तृतीय मण्डल के भाव:- 9,10,11,12

(नवम,दशम,एकादश, द्वादश भाव को) तृतीय मण्डल कहते हैं। इन मण्डलों में से किसी एक मण्डल में निर्बल पापग्रह शुभग्रह से असंयुक्त होकर स्थित हो तो उसकी दशा के अन्त में मृत्यु होती है। यथा----

" त्रिमण्डलेष्वथैकस्मिन् पापतिष्ठति दुर्बल:।

न सौम्यग्रहसंयुक्तस्तद्दशान्ते मृतिं वदेत्" ।।

दीर्घायु , मध्यायु , अल्पायु परीक्षण:-

लग्नपञ्चमभाग्यादिभावेष्वेकत्र संस्थितै: ।

चतुराद्यैर्ग्रहैर्जाता दीर्घमध्याल्पजीविन दीर्घमध्याल्पजीविन: ।।(जातकादेश)

लग्नादि , पञ्चमादि और नवमादि भावों के तीन मण्डलों में यदि लग्नादि प्रथम मण्डल में कोई चार ग्रह लगातार भावों में स्थित हों तो जातक दीर्घायु , पंचमादि द्वितीय मण्डल

में हो तो मध्यायु , नवमादि तृतीय मण्डल के लगातार भावों में ग्रह स्थित हो तो अल्पायु समझना चाहिए।

परमायु योग:- यदि किसी के जन्मकुंडली में अन्तिम नवांशस्थ मीन लग्न हो एवं बुध वृष राशि में 25 कला पर हो और शेष समस्त ग्रह अपने-अपने परमोच्च स्थान में हो तो ऐसे जातक की परमायु होती है|

अमित आयु योग:- यदि किसी जातक के कुण्डली में चन्द्रमा के साथ गुरू हो एवं बुध शुक्र केन्द्र में हो शेष ग्रह तृतीय, एकादश, एवं षष्ठ भाव में हो तो जातक का अमित आयु होती है।

मनुष्य के परम आयु का परीक्षण प्रमाण:- 60 वर्ष को 2 से गुणा करने पर 120 वर्ष 5 दिन मनुष्य की परम आयु होती है। हाथियों की परम आयु 32 वर्ष होती है। घोड़े एवं बकरे आदि की आयु 16 वर्ष , गदहा ऊंट, की आयु 25 वर्ष। बैल, भैंस आदि की परम आयु 24 वर्ष, कुत्ते की परम आयु 12 वर्ष, होती है। मनुष्य के अनुसार पशुओं का आयु साधन करना चाहिए जैसे- हाथी आदि की आयु साधन करने के लिए अपने-अपने आयु प्रमाण से गुणा करके 120 से भाग देने से स्पष्ट आयु होती है।

पथ्य उचित भोजन करने वाला, सुशील, सदाचारी, जितेन्द्रिय मनुष्य ही परम आयु को प्राप्त करता है ऐसा ऋषियों का कथन है | यहां पर पराशर आदि आचार्य गण आयु परीक्षण के लिए आयु के 8 भेदों का वर्णन किया है। निसर्गायु ,पिण्डायु , लग्नायु , अंशकायु , रश्मिजायु चक्रायु , नक्षत्रायु , अष्टवर्गजायु ।

अन्य आचार्य के मत में सात प्रकार के भेद बताये गये है।

(1):- बालारिष्ट, जन्म से 8 वर्ष पर्यन्त

(2):- योगारिष्ट 8 से 20 वर्ष पर्यन्त

(3):- अल्पायु, 32 वर्ष पर्यन्त

(4):- अरिष्ट भङ्गागत आयु

(5):- मध्यम आयु , 70 वर्ष पर्यन्त

(6):- दीर्घायु, 100 वर्ष पर्यन्त

(7):- देव आयु, 100 वर्ष से अधिक (अनुष्ठान आदि से प्राप्त)

जन्मकुण्डली के अनुसार आयु परीक्षण योग:- (1):-पापग्रह यदि लग्न से अथवा चन्द्रमा से केन्द्रवर्ती हों और शुभग्रहों से युत-दृष्ट न हों तो मध्यम आयु देते हैं।

(2):- मेष या वृश्चिक राशि में चन्द्रमा और लग्न में पापग्रह स्थित हों, और शुभग्रह केन्द्रेतर भावों में स्थित हो तो 33 वर्ष जातक की आयु होती है।

(3):- पापग्रह के नवांशगत पापग्रह यदि कर्क राशि में स्थित हों और पापग्रह केन्द्रस्थ हो तो जातक की मध्यम आयु होती है।

(4):- पंचम और दशम भावों में शुभग्रह, अष्टमभाव में सूर्य व्ययभाव में चन्द्रमा तथा बृहस्पति और शुक्र एट राशि में स्थित हों तो जातक की मध्यम आयु होती है।

(5) :- शनि से युक्त चन्द्रमा हो, कुम्भराशि में मंगल स्थित हो तो जातक को तैतीस वर्ष की आयु होती है।

(6);- बृहस्पति और शुक्र केन्द्र में स्थित हों और लग्नेश पापग्रहों से युक्त होकर आपोक्लीम में और भावसन्धि में प्राप्त हों तो एसे जातक की आयु 36 वर्ष की होती है।

(7):-शत्रुराशि का सूर्य पापग्रहों के मध्य लग्न में स्थित हो तो जातक रोगार्त होकर छतीस वर्ष जीवन रहता है।

(8):- जिसके लग्न में मंगल के साथ चन्द्रमा स्थित हो, केन्द्र और अष्टमभावों को छोड़कर अन्यभावों में शुभग्रह स्थित हो और गुलिक काल का जन्म हो तो जातक की आयु छतीस वर्ष की होती है।

(9):- अष्टमभाव के अधिपति केन्द्र में , लग्न में मंगल स्थित हों तथा सूर्य और शनितृतीय आथवा छठें भाव में स्थित हों तो जातक की इयु 44 वर्ष की होती है।

(10);-उच्च राशिगत मंगल लग्न में स्थित हों बृहस्पति सप्तमभाव में तथा दशमभाव में शनि स्थित हों तो जातक धनाढ्य, अनेक शास्त्रों को जानने वाला तथा चौवालिस वर्ष की आयुवाला होता है।

(11):- पंचमभाव में शनि अपनी नीचराशिस्थ हो तथा सूर्य सप्तमभाव में स्थित हों 70 वर्ष का जीवन होता है।

(12):- सूर्य मंगल और शनि एक राशिगत हों और बृहस्पति निर्बल हों, पंचम या द्वादश भाव में चन्द्रमा स्थित हो , शुभग्रह बलवान होकर केन्द्र गत हो, अष्टमभाव शुभग्रह से हीन हो किन्तु लग्नेश से दृष्ट हो तो सत्तर वर्ष की आयु होती है।

(13):- जन्मलग्न या जन्मराशि के स्वामी अष्टमेश से संयुक्त होकर यदि केन्द्रगत हो, लग्न और केन्द्रेतर स्थानों में बृहस्पति स्थित हो तो जातक की आयु 65 वर्ष की होती है।

(14):- लग्नेश से छठें आठवें और बारहवें भाव में पापग्रह तथा शुभग्रह आठवें भाव के अतिरिक्त अन्यभावों में स्थित हो तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक की आयु 60 वर्ष होती है।

(15):- लग्नेश व्ययभाव में निर्बल या पापग्रह से संयुक्त हो तथा लग्न बृहस्पति से रहित हो तो साठ वर्ष की आयु होती है।

(16):-जिसके केन्द्र में पापग्रह संयुक्त हो , लग्न क्रूरग्रहों से मुक्त हो तथा पंचमभाव में क्रूरग्रह न हों तो जातक साठ बर्ष पर्यन्त जीवित रहता है।

(17):- यदि लग्नेश शनि के नवमांश में स्थित होकर अष्टमेश से युक्त हो तथा चन्द्रमा त्रिकस्थ हो तो जातक 58 वर्ष जीवित रहता है।

(18):- धनुराशि का बृहस्पति लग्न में यथा राहु के साथ बृहस्पति अष्टम भाव में स्थित हो तो सतावन वर्ष तथा अष्टमेश सप्तम भाव में और चन्द्रमा पापग्रह से युक्त हो तो 58 वर्ष की आयु होती है।

(19):-द्विस्वभाव राशि के लग्न में शनि, बारहवें या आठवें भाव में चन्द्रमा स्थित हो तो जखतक 52 वर्ष तक जीवित रहता है।

(20):- लग्नेश अष्टमभावस्थ राशि के नवांश में और अष्टमेव लग्नराशि के नवमांश में स्थित हो तथा दोनों पापग्रहों से संयुक्त हो तो जातक की आयु पचास वर्ष की होती है।

(21):- मेष राशि का पूर्णचन्द्र लग्न में यदि शुभग्रहों से दृष्ट हों, पापग्रहों की दृष्टि से मुक्त हों तो जातक राजा होता है और 47 वर्ष तक जीवित रहता है।

(22):- लग्नेश अष्टम भावस्थ राशि के नवमांश में और अष्टमेश लग्नराशि के नवांश में स्थित हो तो तथा दोनों पापग्रहों से संयुक्त हो तो जातकी आयु 50 वर्ष की होती है।

(23):-चन्द्रमा वर्गोतमांश में स्थित होकर लग्न में पापग्रहों से देखा जाता हो तथा शुभग्रह निर्बल हों तो 48 वर्ष की आयु होती है।

(24):- पापग्रह से युक्त जन्मराशिश अष्टमभाव में हो , पापग्रहो से युक्त लग्नेश छठें भाव में बलवान होकर अथवा शुभदृष्टि से हीन हो तो 45 वर्ष जातक जीवित रहता है।

अब आईए सर्व प्रथम निसर्ग आयु के बारे में समझते हैं। आयु परीक्षण में आठ प्रकार के जो आयु कहे गये है इसी के अनुरूप आयु को समझना चाहिए।

जन्मकुण्डली में लग्न ,सूर्य ,चन्द्रमा इन तीनों में यदि लग्नबली हो तो अंशायु , यदि सूर्य बलवान हो तो पिण्डायु , चन्द्रमा बली हो तो निसर्गायु ग्रहण करनी चाहिए। यदि ये तीनों (लग्न, सूर्य, चन्द्रमा) निर्बल हों तो जीवशर्मोक्त परमायु 120 वर्ष, 5 दिन, के सप्तमांश = 17 वर्ष, 1 माह,22 दिन, 8 घटी, 54 पल के तुल्य प्रत्येक ग्रह की आयु होती है । सूर्यादि ग्रहों के निसर्गायु वर्ष क्रमशः 20 वर्ष सूर्य की, चन्द्रमा की 1 वर्ष, मंगल की निसर्गायु 2 वर्ष, बुध की निसर्गायु 9 वर्ष , बृहस्पति की निसर्गायु 18 वर्ष , शुक्र की निसर्गायु 20 वर्ष, तथा शनि की निसर्गायु 50 वर्ष , की होती है।

यदि लग्न, सूर्य चन्द्रमा इन तीनों में कोई दो बली हों आर्थात् बल में समता हो तो दोनों आयुर्दाय का योग करके आधा करने पर आयु होती है। यदि तीनों के बल में समता हो तो तीनों प्रकार के आयुर्दाय के योग का तृतीयांश ग्रहण करनी चाहिए। यथा:-

❖ निसर्गायु साधन विधि:-

स्वोच्चोनस्फुटखेचरं यदि रसादल्पं भचक्रोद्धतं।

लिप्तीकृत्य निजायुरब्दगुणितं तच्चक्र लिप्ताहतम्।।

लब्धं वासरनायकादिखचरैर्दत्तायुरब्दादिकं।

नीचार्द्धक्रमशो वदन्ति मुनयः पैण्ड्ये च नैसर्गिके।।

(जातकपारिजात श्लोक 6आयुर्दायाध्यायः)

अपनी उच्च राश्यादि को ग्रहभोग से घटाने पर शेष यदि 6 राशि से अल्प हो तो उस राश्यादि शेष को 12 राशि से हीन करें, शेष की कला बनाकर ग्रह की पिण्डायु से या निसर्गायु से गुणा कर गुणनफल में 21600 से भाग देने से लब्ध वर्षादि फल उस ग्रह की पिण्ड या निसर्गायु होती है। उच्चोन ग्रह यदि 6 राशि से अधिक हो तो उसकी ही कला बनाकर शेष क्रिया पूर्ववत करने से ग्रह की पिण्डायु अथवा निसर्गायु होती है।पिण्डजआयु अथवा निसर्गजआयु साधन की सम्पूर्ण क्रिया तीन चरणों में सम्पन्न होती है।

(1):- स्फुट ग्रहभोग- उच्चराश्यादि =शेष (यदिग्रह भोग से उसकी उच्च राशि अधिक हो तो ग्रह में 12 राशि जोड़कर उच्च को घटाना चाहिए)

यदि शेष < 6 राशि हो तो शेष को 12 राशि में घटाकर आगे की क्रिया करनी चाहिए।

यदि राश्यादि शेष > 6 राशि , तब उसी राश्यादि शेष से आगे की क्रिया करनी चाहिए।

(2):- राश्यादि शेष= (राशि ×30+ अंश)×60+ कला=कलादि शेष

(3):- कलादि शेष × ग्रहपिण्डायु / 21600=पिण्डजायु वर्षादि,

यदि उक्त राश्यादि शेष < 6 राशि , तब

(1) 12 राशि-राश्यादि शेष=द्वितीय शेष राश्यादि

(2) द्वितीय शेष राश्यादि ×30×60=द्वितीय शेषकलादि।

(3) द्वितीय शेष कलादि × पिण्डायु वर्षादि / 21600= पिण्डायु वर्षादि।

उदाहरण:- कल्पना कीजिए किसी के जन्म कुण्डली में मंगल स्पष्ट 11 राशि, 4 अंश, 27 कला, 34 विकला है, और शनि स्पष्ट 4 राशि, 27 अंश, 8 कला, 13 विकला है। इनके पिण्डायु और निसर्गायु का साधन करना है। पहले मंगल की पिण्डज आयु का विचार करते हैं।

प्रथम चरण--- ग्रह स्फुट राश्यादि-उच्च राश्यादि

11|4°|27'|34" - 9|28°|0'|0"

= 1|6°|27'|34" राश्यादि शेष

अतः राश्यादि शेष 6 राशि से कम है।

चूंकि 12राशि|0°|0'|0" - 1|6°|27'|34"

= 10|23°|32'|26" राशि द्वितीय शेष

द्वितीय चरण = 323°|32'|26" अंशादि

=19412'|26" कलादि

तृतीय चरण कलादि द्वितीय शेष×पिण्डायु वर्ष/21600

=19412'|26"×2 / 21600 [भौमपिण्डायु=2 वर्ष

भौम पिण्डज आयु= 1वर्ष 9माह 17दिन 4घटी 52पल

इसी प्रकार शनि के निसर्गज आयु के वर्षादि ज्ञात करने के लिए प्रथम चरण में शनि के राश्यादि स्पष्ट में शनि के उच्च राश्यादि को घटाया।

4|27°|8'|13" - 6|20°|0'|0"

=10|7°|8'|13" राश्यादि शेष

(शनिभोग +12--शनिउच्च)

अतः राश्यादि शेष 6 राशि से अधिक है अतः द्वितीय चरण में इस राश्यादि शेष में 30 और 60 का गुणा करने से

राश्यादि शेष= 307°|8'|13" अंशादि शेष

=18428'|13" कलादि

अब तृतीय चरण में इस कलादि शेष को शनि के निसर्ग आयु वर्ष 50 से गुणाकर गुणनफल में 21600 का भाग देना चाहिए। लब्ध वर्षादि शनि के स्फुट निसर्गज आयु के वर्षादि होगें। इस प्रकार शनि के निसर्गज आयु

18428'|13"×50 / 21600 = 42 वर्ष, 7 मास, 26 दिन, 50 घटी, 50 पल हुए। इसी प्रकार अन्य जगह समझना चाहिए।

❖ आयु में ह्रास एवं बृद्धिः

चूंकि जब ग्रह अपनी नीच गत राशि में रहता है तो उसके आयुर्दाय में आधे की कमी हो जाती है | लग्न के जितने नवांश उदित हो चुके हो उतने वर्ष मासादि लग्नायु होती है। कुछ अन्य आचार्य मेषादि से गत राशि तुल्य वर्ष लग्नायु होती है।

शत्रुगृहस्थ ग्रह के आयुर्दाय में उसके सम्पूर्ण आयुर्दाय का तृतीयांश कम हो जाता है। यदि भौम शत्रु के घर में स्थित हो तो उसके आयुर्दाय में ह्रास नहीं होता।

सूर्य से अस्त ग्रह के आयुर्दाय का अर्धभाग नष्ट हो जाता है। किन्तु शुक्र और शनि इस नियम के अपवाद है।अर्थात् इनके अस्त होने पर भी इनके आयुर्दाय में ह्रास नहीं होता।

आयु परीक्षण के लिए ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अलग-अलग आयु का साधन किया गया गया है चूंकि आप लोगों को पहले भी बताया जा चुका है कि जन्मकुंडली के अनुरुप ही आयु का साधन किया जाता है।

इसप्रकार सारावली ग्रन्थ में उल्लेख है कि लग्न, सूर्य, चन्द्रमा इन तीनों में जो बली हो उसी के अनुरुप आयुपरीक्षण (आयु साधन) करना चाहिए।

(1):- लग्न बलवान हो तो अंशायु साधन करके आयु जानना चाहिए।

(2):-यदि सूर्य बलवान हो तो पिण्डायु के द्वारा आयु साधन करके जानना चाहिए।

(3):- यदि कुंडली में चन्द्रमा बली हो तो निसर्गायु से आयु परीक्षण कर लेना चाहिए।

(4):- यदि ये तीनों (लग्न, सूर्य, चन्द्रमा) निर्बल हों तो मानव जीवन के सम्पूर्ण आयु 120 वर्ष 5 दिन का सातवां अंश यानी 17 वर्ष 1 माह 22 दिन 8 घटी 54 पल के हर एक ग्रह की आयु समझनी चाहिए अर्थात् इतना आयु ग्रह प्रदान करते है।

❖ आयु में कमी :-

(5):- यदि लग्न सूर्य चन्द्रमा इन तीनों में कोइ दो बली हो अर्थात् समान बल वाले हों तो दोनों के आयु का योग करके

आधा करने पर आयु होती है।

(5):- यदि तीनों के बल में समानता हो तो तीनों प्रकार के आयु के योग का तृतीय अंश ग्रहण करना चाहिए।

❖ अंशायु साधन:-

स्वमतेन किलाह जीवशर्मा ग्रहदायं परमायुष: स्वरांशम्।

ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यं बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम्।।

(जातक पारिजात श्लोक17आयुर्दायध्याय)

यहां पर सर्व प्रथम कुण्डली में लग्न और ग्रह स्पष्ट को समझकर अथवा लग्न व ग्रह जिसकी आयु साधन करनी हो उसकी (ग्रह व लग्न) कला बनाकर 200 का भाग देने से जो लब्धि हो उसकी वर्ष संज्ञा होती है। यदि यह लब्धि 12 से अधिक हो तो बारह का भाग देकर ग्रहण करना चाहिए। शेष को 12 से गुणा करके 200 से भाग देने से जो फल आता है वह माह होता है। पुनः शेष को 30 से गुणा करके 200 सौ से भाग देने पर

लब्ध दिन, होता है। अब दिन शेष को 60 से गुणा करके 200 से भाग देने पर लब्धि घटी, होती है। घटी शेष को 60 से गुणा करके 200 से भाग देने पर लब्धि पल होता है।

लग्न के सर्वाधिक बली होने पर आयु गणना के लिए अंशायु सर्वोत्तम विधि है। अंशायु के अन्तर्गत ग्रह , नवमांश राशि के तुल्य वर्ष प्रत्येक ग्रह आयु देता है। एक नवमांश एक वर्ष की आयु प्रदान करता है। इस गणना से एक राशि नौ वर्ष तथा बारह राशियां 108 वर्ष की आयु प्रदान करती है।

❖ **पिण्डायु साधनः-** उच्च राशिगत सूर्यादि प्रमुख ग्रहों के पिण्डायु वर्ष इस प्रकार है---

सूर्य के	19 वर्ष
चन्द्रमा के	25 वर्ष
मंगल के	15 वर्ष
बुध के	12 वर्ष
बृहस्पति के	15 वर्ष
शुक्र के	21 वर्ष
शनि के	20 वर्ष ,

उपरोक्त ग्रहों के पिण्डायु होते हैं। यदि ग्रह परम नीच का हो तो इनका आयु पिण्ड आधा ही समझना चाहिए और मध्य में रहने वाले ग्रह को अनुपात द्वारा ज्ञान कर लेना चाहिए

। जिस ग्रह की पिण्डायु साधन करनी हो उस स्पष्ट ग्रह में अपने ही उच्च राशि अंश को घटाकर निर्णय करना चाहिए, यदि लब्धि(शेषफल) (6 राशि से अधिक हो तो यथावत ग्रहण करना चाहिए 6 राशि से कम हो तो 12 राशि में से घटाकर ग्रहण करना चाहिए) (उसे ग्रह के पूर्वोक्त आयु पिण्ड के वर्षों से गुणा करने पर वर्षादि ग्रह की पिण्डायु होती है) पिण्डायु साधन के अनुसार आयु में ह्रास - बृद्धि इस प्रकार समझना चाहिए।

(क):- शुक्र एवं शनि को छोड़कर सभी ग्रहों के पूर्व कहे हुए आयु का आधा अंश समाप्त हो जाता है।

(ख):- वक्री ग्रह को छोड़कर सभी ग्रह शत्रु क्षेत्री कुण्डली में स्थित हो तो उसके पूर्व प्रदान आयु का तृतीयांश अर्थात ⅓ भाग नष्ट हो जाता है।

लग्नदायोंऽशतुल्य:स्यादन्तरे चनुपातत: ।

तत्पतौ बलसंपन्ने राशितुल्यं स्वभाधिपे ॥(सारावली)

4.5 बोधप्रश्न

(1):- यदि किसी जातक की कुण्डली में चन्द्रमा के साथ गुरु हों एवं बुध,शुक्र केन्द्र में हो तो शेष ग्रह तृतीय एकादश एवं षष्ठ भाव में हो तो जातक को कौन सी आयु प्रदान होती है ।

(क)- अमितायु (ख)- परमायु

(ग)-मध्यायु (घ)- अल्पायु

(2):- योगारिष्ट कितने वर्ष पर्यन्त तक होता है?

(क)-7 से 9 वर्ष पर्यन्त

(ख)- 5 से 7 वर्ष पर्यन्त

(ग)- 8 से 20 वर्ष पर्यन्त

(घ)- 9 से 12 वर्ष पर्यन्त

(3):- वालारिष्ट कितने वर्ष तक होता है?

(क)- जन्म से 10 वर्ष पर्यन्त

(ख)- जन्म से 8 वर्ष पर्यन्त

(ग)- जन्म से 5 वर्ष पर्यन्त

(घ)- जन्म से 2 वर्ष पर्यन्त

(4):- यदि लग्न सूर्य चन्द्रमा तीनों के बल में समानता हो तो तीनों प्रकार के आयु के योग का कितना अंश ग्रहण करना चाहिए।

(क)- तृतीयांश (ख)- चतुर्थांश

(ग)- द्वितीयांश (घ)- पंचमांश

(5):- उच्चराशिगत सूर्य का पिण्डायु वर्ष कितना होता है?

(क)- 25 वर्ष (ख)- 15 वर्ष

(ग)- 19 वर्ष (घ)-12 वर्ष

4.6 सारांश

चूकिं अब तो आपलोग भलि-भांति समझ गये होगें कि आयु परीक्षण किस प्रकार किया जाता है साथ ही आयु में ह्रास-बृद्धि के बारे में भी जानगये होंगे, लेकिन मूल रूप से इस बात को जानना परमावश्यक है कि द्वादशभाव से आरम्भ करके विपरीत क्रम से सप्तमभाव पर्यन्त भावों में पापग्रह की स्थिति होने से अपनी सम्पूर्ण आयुष्य की आधी, तृतीय, चतुर्थांश, पंचमांश, षष्ठांश, आयुष्य की हानि करते है। एक से अधिक ग्रह यदि एक ही भावगत हों तो उनमें बलवान् ग्रह के अनुसार ही आयुष्य का क्षय होता है। उक्त भावों में यदि शुभग्रह स्थित हों तो उक्त कथित क्षय के अर्धांश का ही क्षय होता है। कहने का तात्पर्य है कि यदि द्वादश भाव में पापग्रह स्थित हो तो अपने द्वारा प्रदत्त सम्पूर्ण आयु की हानि करता है। अर्थात वह अपनी पूर्ण आयुष्य नहीं देता । एकादशस्थ पाप-ग्रह अपनी आधी आयु का , दशमस्थ पापग्रह एक तिहाई, नवमस्थ पापग्रह एक चौथाई, अष्टमभावस्थ पापग्रह अपनी आयु का पञ्चमांश, सप्तमस्थ पापग्रह अपनी आयु के छठें भाग की हानि करता है। द्वादशभाव में यदि शुभग्रह हो तो उसकी आधी आयु का क्षय होता है। एकादशभाव में हो तो उसकी आधी आयु का क्षय होता है। एकादशभाव में हो तो चतुर्थ भाग की , दशम भाव में स्थित हो तो अपनी आयु के छठें भाग की, नवें भाव में स्थिति हो तो अपनी आयुष्य के आठवें भाग की , आठवें भाव में शुभग्रह हो तो दसवें भाग की, सातवें भाव में शुभग्रह हो तो अपनी आयु के बारहवें भाग की हानि करता है। इस प्रकार आयु परिक्षण करके ग्रहों के पुर्णायु का, मध्यायु का ,अल्पायु का विचार करके आयु को कहना चाहिए।

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

वर्ग= दश वर्ग होते है। लग्न, होरा ,द्रेष्काण, स्वरांश= सप्तमांश, नवमांश,दशमांश,द्वादशांश, कलांश= षोडशांश, त्रिशांश और षष्ट्यंश ये राशि के दश वर्ग होते हैं। ये दश वर्ग मनुष्य को व्यय, कष्ट, उन्नति और धन-धान्य को देने वाले होते है|

होरा= राशि के अर्धभाग को होरा कहते है। विषम राशि (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, और कुम्भ राशियों) में प्रथम होरा सूर्य की होती है।और दूसरी होरा चन्द्रमा की होती है।सम राशि में प्रथम होरा चन्द्रमा की द्वितीय सूर्य की होती है।

द्रेष्काण:- राशि के तृतीय भाग को द्रेष्काण कहते हैं। इस प्रकार एक राशि में तीन द्रेष्काण होते है। इनमें प्रथम द्रेष्काण उसी राशि का, द्वितीय द्रेष्काण उससे पंचम राशि का, तृतीय द्रेष्काण उससे नवम राशि का होता है।

जातक ग्रन्थों में कुल सोलह वर्गों की चर्चा है। यहां उनमें से केवल दश वर्गों का ही विवरण प्राप्त है जन्मपत्र के अध्ययन में इन दश वर्गों का व्यवहार भी कम ही प्रचलित है। प्रचलन में इसमें से षडवर्ग या सप्तवर्ग का ही प्रयोग अधिक होता है।

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1):- क

(2):- ग

(3):- ख

(4):- क

(5):- ग

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची

(1)- जातकपारिजात

(व्याख्याकार डॉं. हरिशंकर पाठक)

चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन

(2)- सारावली।

(व्याख्याकार डॉं. मुरलीधर चतुर्वेदी)

मोतीलाल वानारसीदास प्रकाशन वर्ष 1989

(3)-चिकित्सा ज्योतिषम्

(4)- पञ्चस्वरा

(5)- जातकालंकार

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(1):- कुण्डली के अनुसार आयु परीक्षण के योगों को विस्तार पूर्वक लिखिए

(2):- अंशायु साधन स्पष्ट कीजिए।

इकाई 05 आयु के प्रकार

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना।
5.2 उद्देश्य।
5.3 आयुकेविभाग, दीर्घायु-मध्यायु-अल्पायुयोग।
5.4 बालारिष्ट-योगारिष्ट-अरिष्टभङ्गागत-एवं अमितायु का विचार।
बोधप्रश्न।
5.5 सारांश।
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबन्धात्मकप्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के "चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा" पर आधारित है, इस पाठ्यक्रम के अनुसार यह पाँचवीं इकाई हैं, इस इकाई के शीर्षक है, " आयु के प्रकार" इस इकाई में आपलोगों को आयु विभाग के बारे में पूर्णतया बताने का प्रयास किया गया है। जैसा कि आप लोग जानतें है कि मनुष्य फल की कामना से ही सभी प्रकार के कार्य को करता है। यहां पर आयुष्य की वृद्धि के लिए जो शास्त्रगत उपाय बताये गये है। उनको करने से निश्चित रूप से आयु में लाभ प्राप्त होगा क्योंकि आयु के प्रकार का चिंन्तन करना सात्विकता से ही सम्भव है। अतः अपने इष्ट का ध्यान करके सात्विकता पूर्वक अगर यदि आपलोग इस इकाई का अध्ययन करेगें तो निश्चित रुप से आयु के प्रकार को समझने में सक्षम होंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आपलोग निम्नलिखित विषयों का अध्ययन करेगें।

(1):- आयु के प्रकार को जानेगें।

(2):- दीर्घायु-मध्यमायु-अल्पायु योगों का अध्ययन करेंगे।

(3):-बालारिष्ट के अनुसार जन्म से आठ वर्ष पर्यन्त आयु
का अध्ययन करेंगे।

(4):- योगारिष्ट के अनुसार आठ वर्ष से बीस वर्ष तक के
आयु का अध्ययन करेंगे।

(5):- अरिष्टभङ्गागत आयु को जानेगें।

(6):-देव आयु सौ वर्ष से अधिक आयु(अनुष्ठान आदि से)
प्राप्त आयु के बारे में अध्ययन करेगें।

आयु का विभाग इस प्रकार किया गया है, आठ वर्ष तक बालारिष्ट, बारहवर्ष पर्यन्त योगारिष्ट ,बत्तीस वर्ष तक अल्पायु , एवं सत्तरवर्ष तक मध्यायु, सौ वर्ष तक पूर्णायु और उसके बाद एक सौ बीस वर्ष तक उत्तमायु और तत्पश्चात अपरिमित आयु कहलाती है।

5.3आयु के प्रकार

(1)- बालारिष्ट , जन्म से आठ वर्ष पर्यन्त

(2)- योगारिष्ट , आठ वर्ष से बीस वर्ष पर्यन्त

(3)- अल्पायु , बत्तीस वर्ष पर्यन्त

(4)- अरिष्टभङ्गागत आयु ,

(5)- मध्यम आयु , सत्तर वर्ष पर्यन्त

(6)- दीर्घायु , सौ वर्ष पर्यन्त

(7)- देव आयु , सौ वर्ष से अधिक (अनुष्ठान आदि से प्राप्त)

अब आइए महर्षि जैमिनी के अनुसार आयु के प्रकार के बारे इस तरह समझतें है। शास्त्रों के अनुसार 64 से 120 वर्ष तक की आयु को दीर्घायु कहे है। अब दीर्घायु से सम्बन्धित योगों के बारे में समझिये।

5.3 दीर्घायुयोगविचार

(1)-केन्द्र में शुभग्रह स्थित हो तथा लग्नेश शुभग्रहों से संयुक्त होकर यदि बृहस्पति से दृष्ट हो तो जातक दीर्घायु होता है।

(2)-यदि कर्क लग्न में जन्म हो ,शुक्र केंद्र में स्थित हो, चन्द्र गुरु लग्न में स्थित हो ,और अष्टम में कोई ग्रह न हो तो दीर्घायु होती है।

(3)- यदि 3 ग्रह अपनी उच्च राशि में स्थित हो,अष्टम में कोई पापा ग्रह स्थित ना हो अष्टमेश लग्न में वह तो भी दीर्घायु होता है।

(4)- अष्टमेश एवं तृतीयेश केंद्र त्रिकोण में हो, अथवा नवम एकादश स्थान में उच्च राशि हो तो दीर्घायु होता है।

(5)- बृहस्पति और शुक्र के साथ लग्नेश यदि केंद्र में हो, अथवा केन्द्रस्थ लग्नेश बृहस्पति और शुक्र से दृष्ट हो तो जातक दीर्घायु होता है।

(6)- तीन ग्रह अष्टम भाव में स्थित हो, और वे अपनी- अपनी उच्च राशि, मित्र की राशि,या अपनी राशि के वर्ग में स्थित हो और लग्नेश बली हो तो जातक दीर्घायु होता है ।

(7)- तीसरे छठे और एकादश भाव में पाप ग्रह केंद्र एवं त्रिकोण में सभी शुभ ग्रह स्थित हो बलवान हो तो जातक पूर्ण आयु होता है । यथा--

चतुष्टये शुभैर्युक्ते लग्नेशे शुभसंयुते।

गुरुणा दृष्टिसंयोगे पूर्मायुर्विनिर्दिशेत्॥

केन्द्रान्विते विलग्नेशे गुरुशुक्रसमन्विते।

ताभ्यां निरीक्षिते वाऽपि पूर्णमायुर्विनिर्दिशेत्॥

(जातक पारिजात श्लोक सं.85,86 अरिष्टाध्याय)

छठें, सातवें और आठवें भावों में शुभग्रह स्थित हो या तीसरे, छठें और आठवें भाव में पाप ग्रह स्थित हों तो जातक दीर्घायु होता है।

लग्नेश केन्द्रस्थ हो, छठें और बारहवें भाव में पाप ग्रह स्थित हो,अथवा अष्टम भाव में पापग्रह स्थित हों और कर्मेश(दशमाधिपति) अपनी उच्च राशि में स्थित हो तो उपर्युक्त दोनों योगों में जातक दीर्घायु होता है।

अष्टमेश जिस राशि में स्थित हों उसका स्वामी जिस राशि में स्थित हो उस राशि का स्वामी और लग्नेश यदि केन्द्र में स्थित हों तो जातक दीर्घायु होता है।

द्विस्वभाव राशि के लग्न का स्वामी यदि केन्द्रस्थ हो, अपनी उच्च या मूलत्रिकोण राशि में स्थित हो जातक चिरायु होता है।

द्विस्वभाव राशि का लग्न हो और लग्नेश से केन्द्र स्थान (1,4,710) भाव में दो पाप ग्रह स्थित हो तो जातक दीर्घायु होता है।

सूर्य ,मंगल, और शनि यदि चर राशि के नवमांश में स्थित हो , शुक्र और बृहस्पति स्थिर राशि के नवमांश में स्थित हों तथा अन्य ग्रह यदि द्विस्वभाव राशि के नवमांश में स्थित हो तो जातक दीर्घायु होता है।

यहां पर महर्षि जैमिनी अपने ग्रन्थ "जैमिनीसूत्रम्" में तीन प्रकार की आयु का वर्णन किया है। उनके कथनानुसार लग्न और आठवें भाव के स्वामी से आयुष्य का विचार करना चाहिए।

(1)- चर राशियों में इन दोनों ग्रहों की स्थिति के अनुसार दीर्घायु, मध्यायु, अल्पायु के तीन भेद होते हैं।

(2)-लग्नेश और अष्टमेश यदि दोनों चर (प्रथम) या द्विस्वभाव राशियों में स्थित हो तो जातक दीर्घायु होता है।

(3)- लग्नेश और अष्टमेश में से एक स्थिर राशि(द्वितीय)में और दूसरा घर(प्रथम)या दोनों द्विस्वभाव राशि में स्थित हों तो मध्यायु होता है।

(4)- लग्नेश और अष्टमेश दोनों स्थिर राशि में स्थित हों अथवा एक चर राशि में और दूसरा द्विस्वभाव राशि में स्थित हो तो जातक मध्यायु होता है।

उक्त तथ्यों को तालिका के रूप में जिज्ञासुओं के लाभार्थ नीचे दिया गया है।

	दीर्घायु	मध्यायु	अल्पायु
१.	लग्नेश चरराशि में अष्टमेश चरराशि में	लग्नेश चरराशि में अष्टमेश स्थिरराशि में	लग्नेश चरराशि में अष्टमेश द्विदेहराशि में
२.	लग्नेश स्थिरराशि में अष्टमेश द्विदेहराशि में	लग्नेश स्थिरराशि में अष्टमेश चरराशि में	लग्नेश स्थिरराशि में अष्टमेश स्थिरराशि में
३.	लग्नेश द्विदेहराशि में अष्टमेश स्थिरराशि में	लग्नेश द्विदेहराशि में अष्टमेश द्विदेहराशि में	लग्नेश द्विदेहराशि में अष्टमेश चरराशि में

5.3 मध्यायुयोग:-

कुछ ज्योतिष के विद्वान 70 वर्ष तक मध्यायु मानते हैं।

कुंडली के अनुसार मध्यायु के कुछ योग आप लोगों को बताया जा रहा है।

(1):- लग्नेश निर्बल हो, केंद्र और त्रिकोण भाव में शुभ बृहस्पति ग्रह तथा छठें, आठवें एवं बारहवें भाव में पाप ग्रह स्थित हो तो जातक मध्यम होता है

(2)- 32 से 70 वर्ष पर्यंत मध्यायु होता है।

जन्म काल से 32 वर्ष तक अल्पायु 32 से 70 वर्ष तक मध्यम आयु और 70 वर्ष से अधिक 100 वर्ष तक दीर्घायु होता है। 100 वर्ष की पूर्ण आयु 100 वर्ष के ऊपर 120 वर्ष पर्यन्त परमायु होती है।

(3)- जिसके जन्म कुंडली में मंगल के साथ चंद्रमा स्थित हो, और अष्टम भाव को छोड़कर भाव में शुभ ग्रह स्थित हो और गुलिककाल का जन्म हो तो जातक की आयु 36 वर्ष की होती है।

(4)- पाप ग्रह के नवांश गत पाप ग्रह यदि कर्क राशि में स्थित हो और पाप ग्रह केन्द्रस्थ हो तो जातक कि मध्य आयु होती है।

(5)- पापा ग्रह यदि लग्न से अथवा चन्द्रमा से केद्रवर्ती हों और शुभ ग्रहों से युत-दृष्ट न हो तो मध्यम आयु होता है।

(6)- पंचम और दशम भाव में शुभग्रह, अष्टम भाव में सूर्य, व्यय भाव में चंद्रमा, तथा बृहस्पति और शुक्र एक राशि में स्थित हो तो जातक की मध्यम आयु होती है।

(7)- मेष या वृश्चिक राशि में चंद्रमा और लग्न में पाप ग्रह स्थित हों और शुभ ग्रह केन्द्रेतर भाव में स्थित हो तो 33 वर्ष में जातक की मृत्यु हो जाती है।

(8)- पंचमभाव में मंगल, शनि अपनी नीच राशि में स्थित हों तथा सूर्यसप्तम भाव में स्थित हो तो 70 वर्ष का मध्यायु जातक होता है।

(9)- उच्च राशिगत मंगल लग्न में स्थित हो , बृहस्पति सप्तम भाव में तथा दशम भाव में शनि स्थित हो तो जातक धनाढ्य, शास्त्रों का मर्मज्ञ होता है तथा 44 वर्ष मध्यायु को प्राप्त करता है।

(10)- पाप ग्रह से युक्त जन्म राशिश अष्टम भाव में, पापग्रहों से युक्त लग्नेश छठे भाव में बलवान होकर अथवा शुभ दृष्टि से हीन हो तो 45वर्ष में जातक का निधन होता है।

(11)- मेष राशि का पूर्ण चंद्रमा लग्न में यदि शुभ ग्रहों से दृष्ट हो,पाप ग्रहों की दृष्टि मुक्त हो तो जातक राजा होता है 47 वर्ष में मृत्यु को प्राप्त करता है।

(12)- यदि लग्नेश शनि के नवमांश में स्थित होकर अष्टमेश से युक्त हो तथा चंद्रमा त्रिकस्थ हो तो जातक 58 वर्ष तक जीवित रहता है।

(13)-जिसके केद्र में पापग्रह संयुक्त हों,लग्न क्रूर ग्रहों से मुक्त हो, तथा पंचम भाव में क्रूर ग्रह ना हो तो 60 वर्ष तक जीवित रहता है।

(14)- लग्नेश से छठें आठवें और बारहवें भाव में पाप ग्रह तथा शुभग्रह आठवें भाव के अतिरिक्त अन्य भावों में स्थित हो तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक की आयु 60 वर्ष की होती है।

(15)- जन्म लग्न या जन्म राशि के स्वामी अष्टमेश से संयुक्त होकर यदि केद्र गत हो, लग्न और केन्द्रेतर स्थानों में वृहस्पति स्थित हो तो जातक की आयु 65 वर्ष की होती है।

(16)- सूर्य ,मंगल और शनि एक राशि गत हों और बृहस्पति निर्बल हो, पंचम या द्वादश भाव में चंद्रमा स्थित हो, शुभग्रह बलवान होकर केन्द्रगत हो ,अष्टम भाव शुभग्रह से हीन हो किन्तु लग्नेश से दृष्ट हो तो 70 वर्ष की आयु होती है। यथा--

बलहीने विलग्नेशे जीवे केन्द्रत्रिकोणगे ।

षष्ठाष्टमव्यये पापे मध्यमायुरूदाहृतम्।।

द्वात्रिंशद्वत्सरादुपरि सप्ततिपर्यन्तं मध्यायुर्योग:।

(जातक पारिजात श्लोक सं.84 अरिष्टाध्याय)

5.3 अल्पायुयोग:-

__ज्योतिष के विद्वान लोग बताते हैं कि जन्म से बत्तीस वर्ष तक अल्पायु होता है। तथा आपलोग कुण्डली के अनुसार अल्पायु योग के बारे में अध्ययन करेंगे यहां कुछ योग बताये जा रहे हैं।

(1)- छठें, आठवें और बारहवें भाव में पाप ग्रह तथा लग्नेश निर्बल हों और शुभग्रह से युत- दृष्ट ना हो तो जातक अल्पायु और निसंतान होता है।

(2)- अष्टमभावाधिपति अथवा शनि यदि क्रूरषष्ट्यंश में स्थित हो और पाप ग्रह से संयुक्त हों तो जातक अल्पायु होता है।

(3)- क्रूरषष्ट्यंशस्थ पापग्रह यदि द्वितीय और द्वादश भावों में शुभग्रहों से युत-दृष्ट न हों तो जातक अल्पायु होता है।

(4)- लग्नेश और राशीश(चन्द्र राशीश) में स्फुट योग (अंश,कला, और विकला में साम्यता) हो और वे केन्द्र अथवा अष्टमभाव में पाप ग्रहों से युत हों तो सत्ताईसवें वर्ष में मृत्यु को प्राप्त करता है।

(5)- सूर्य ,चंद्रमा और राहु लग्न तथा व्यय भाव में स्थित हो तो अठाईस वर्ष में जातक की मृत्यु होती है।

(6)- द्वितीय एवं द्वादश भाव में पाप ग्रह स्थित हो ,बृहस्पति राहु से युत होकर सप्तम या अष्टम भाव में स्थित हो तो 30 वर्ष के बाद मृत्यु होती है।

(7)- क्षीण चंद्रमा अपनी राशि में ,अष्टमेश केंद्र में तथा पापग्रह अष्टम भाव में स्थित हो और यदि लग्नेश निर्बल हो तो जातक की आयु 30 वर्ष की होती है।

(8)- लग्नेश षष्ठ भाव में, पाप ग्रहों के साथ चन्द्रमा और शुक्र पंचम भाव में स्थित हों तथा अष्टमेश केद्र में स्थित हो तो जातक की आयु 30 वर्ष की होती है।

(9)- लग्नेश के साथ चंद्रमा आपोक्लिम (3,6,9,12 वें) भाव में पापग्रहों से दृष्ट हो तो जातक 32 वर्ष तक जीवित रहता है।

(10)- चंद्रराशि, लग्न और अष्टम भाव के स्वामी केन्द्र में स्थित हो , अष्टम भाव में कोई ग्रह स्थित हो और केद्र में यदि कोई पापग्रह न हो तो जातक 32 वर्ष तक जीवित रहता है।

5.4 अब आइए यहां पर बालारिष्ट का विचार करते हैं।

(1)- चन्द्र छठें, आठवें या बारहवें भाव में पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो जन्म के बाद शीध्र ही मृत्यु होती है।

(2)-जब चन्द्रमा को केवल शुभ देखते हो तो आठ वर्ष की आयु में मृत्यु होती है।

(3) -पाप ग्रहों तथा शुभ ग्रहों की सम्मिलित दृष्टि हो तो चार वर्ष तक की आयु में मृत्यु होती है।

(4)- यदि चन्द्रमा उक्त भावों में दृष्ट हो तो कष्ट नहीं होता है।

(5)-छठें, आठवें या बारहवें भाव में पाप दृष्ट वक्री शुभग्रह एक महीने के अन्दर मृत्यु प्रदान करतें हैं।

विशेष:-(क)-छठें या आठवें भाव में शुभ ग्रह अगर वक्री पाप ग्रह से दृष्ट हों तथा शुभ ग्रहों से अदृष्ट हों तो जन्म से एक माह के अन्दर मृत्यु देते हैं।

लग्न किसी शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो जन्म से एक माह के अन्दर ही मृत्यु हो जाती है। यह एक बहुत ही सामान्य योग है।

(6)-सूर्योदय या सूर्यास्त के समय, चन्द्र की होरा में या गण्डान्त (कर्क, वृश्चिक या मीन के अन्त में अथवा मेष, सिंह या धनु के प्रारम्भ में) जन्म हो और केन्द्रों में पाप ग्रह तथा चन्द्र हो, तो नवजात की मृत्यु की सूचना देते है।

विशेष-सायंकाल में, चन्द्र की होरा में जन्म हो और पाप ग्रह राशि के अन्त (किसी राशि में 29 अंश या अधिक) में चन्द्र के साथ किसी केन्द्र में हो तो जन्म के बाद शीघ्र ही मृत्यु होती है|

(7)- लग्नेश किसी पाप ग्रह से पराजित होकर सप्तम भाव में हो तो जन्म से एक माह के अन्दर मृत्यु होती है। सूर्य तथा चन्द्र को छोड़कर, कोई दो ग्रह यदि एक अंश के अन्दर स्थित हों तो ग्रह युद्ध समझा जाता है। दोनों में से अंशो में आगे गया प्रह पराजित समझा जाता है।

(8)-चन्द्र तथा सभी पाप ग्रहों का केन्द्र में होना नवजात के लिए मूत्युकारक है।

(9)-लग्न में चन्द्र तथा सप्तम में पाप ग्रह शीघ्र मृत्यु देते है।

(10)-चन्द्रमा व लग्नेश शनि एवं सूर्य से युत हों तो 12 वर्ष तक अरिष्ट रहता है।

(11)- चन्द्रमा 6,8,12 में हो और लग्नेश अष्टम में गया हो तो 5 वर्ष तक अरिष्ट होता है।

अब आइए इस बात को जानते हैं कि अरिष्ट योगों के फलीभूत होने का समय कब होता है।

(1)- पाप प्रभाव डालने वाले सबसे बली ग्रह पर जब गोचर का चन्द्रमा आवें ।

(2)- गोचर का चन्द्रमा जब जन्मकालिक चन्द्र से गुजरे

(3)- लग्न पर चन्द्रमा का गोचर हो।

जब गोचर का चन्द्रमा स्वयं पीड़ित हो तो प्रतिकुल घटना घटीत नहीं होती है।

(1)- चन्द्र छठें, आठवें या बारहवें भाव में पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो जन्म के बाद शीध्र ही मृत्यु होती है।

(2)-जब चन्द्रमा को केवल शुभ देखते हो तो आठ वर्ष की आयु में मृत्यु होती है।

(3) -पाप ग्रहों तथा शुभ ग्रहों की सम्मिलित दृष्टि हो तो चार वर्ष तक की आयु में मृत्यु होती है।

(4)- यदि चन्द्रमा उक्त भावों में दृष्ट हो तो कष्ट नहीं होता है।

(5)-छठें, आठवें या बारहवें भाव में पाप दृष्ट वक्री शुभग्रह एक महीने के अन्दर मृत्यु प्रदान करतें हैं|

विशेष:-(क)-छठें या आठवें भाव में शुभ ग्रह अगर वक्री पाप ग्रह से दृष्ट हों तथा शुभ ग्रहों से अदृष्ट हों तो जन्म से एक माह के अन्दर मृत्यु देते हैं।

लग्न किसी शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो जन्म से एक माह के अन्दर ही मृत्यु हो जाती है। यह एक बहुत ही सामान्य योग है।

(6)-सूर्योदय या सूर्यास्त के समय, चन्द्र की होरा में या

गण्डान्त (कर्क, वृश्चिक या मीन के अन्त में अथवा मेष, सिंह या धनु के प्रारम्भ में) जन्म हो और केन्द्रों में पाप ग्रह तथा चन्द्र हो, तो नवजात की मृत्यु की सूचना देते है।

विशेष-सायंकाल में, चन्द्र की होरा में जन्म हो और पाप ग्रह राशि के अन्त (किसी राशि में 29 अंश या अधिक) में चन्द्र के साथ किसी केन्द्र में हो तो जन्म के बाद शीघ्र ही मृत्यु होती है।

(7)- लग्नेश किसी पाप ग्रह से पराजित होकर सप्तम भाव में हो तो जन्म से एक माह के अन्दर मृत्यु होती है। सूर्य तथा चन्द्र को छोड़कर, कोई दो ग्रह यदि एक अंश के अन्दर स्थित हों तो ग्रह युद्ध समझा जाता है। दोनों में से अंशो में आगे गया प्रह पराजित समझा जाता है।

(8)-चन्द्र तथा सभी पाप ग्रहों का केन्द्र में होना नवजात के लिए मृत्युकारक है।

(9)-लग्न में चन्द्र तथा सप्तम में पाप ग्रह शीघ्र मृत्यु देते है।

(10)-चन्द्रमा व लग्नेश शनि एवं सूर्य से युत हों तो 12 वर्ष तक अरिष्ट रहता है।

(11)- चन्द्रमा 6,8,12 में हो और लमेश अष्टम में गया हो तो 5 वर्ष तक अरिष्ट होता है।

अब आइए इस बात को जानते हैं कि अरिष्ट योगों के फलीभूत होने का समय कब होता है।

(1)- पाप प्रभाव डालने वाले सबसे बली ग्रह पर जब गोचर का चन्द्रमा आवें।

(2)- गोचर का चन्द्रमा जब जन्मकालिक चन्द्र से गुजरे

(3)- लग्न पर चन्द्रमा का गोचर हो।

(5)- जब गोचर का चन्द्रमा स्वयं पीड़ित हो तो प्रतिकुल घटना घटीत नहीं होती है।

(6)- जन्मलग्न से छठे, आठवें भाव में कर्कराशिगत बुध यदि चन्द्रमा से दृष्ट होकर हर प्रकार से बलयुक्त होने पर भी जातक चार वर्ष के भीतर ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

सारावली

'कर्कधामनि सौम्यः षष्ठाष्टमसंस्थितो विलग्नात्। चन्द्रेण दृष्टमूर्तिर्वर्षचतुष्केण मारयति'।।

इस उदाहरण कुण्डली में छठें भाव में कर्क राशि में स्थित बुध ,द्वादशभाव स्थित चन्द्र से, तथा आठवें भाव में स्थित बुध ,द्वितीय भाव स्थित चन्द्र से, दृष्टियोग होने से चारवर्ष की आयु योग बन रहा है।

।। चार वर्ष के आयु योग।।

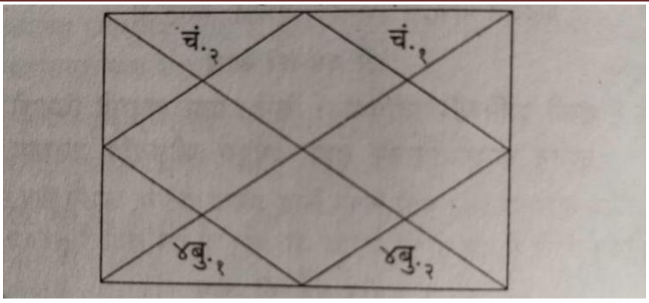

॥ पांच वर्ष की आयु॥

रविचन्द्रभौमगुरुभिः कुजगुरुसौरेन्दुभिः सहैकस्थैः । रविशनिभौमशशाङ्कैर्मरणं खलु पञ्चभिर्वर्षैः।|

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और बृहस्पति; मंगल, बृहस्पति, शनि और चन्द्रमा अथवा सूर्य, शनि, मंगल और चन्द्रमा एक ही राशि में एकत्र हों तो जातक के लिए पाँच वर्ष में मृत्युकारक होते हैं

॥छः वर्ष की आयु॥

लग्नाधिपे चन्द्रदृशा समेते जातस्य घड्वर्षमितं तदाऽऽयुः ॥

चन्द्रमा के नवांश में स्थित शनि यदि चन्द्रमा से दृष्ट हो तथा लग्नेश पर चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि हो तो जातक की छः वर्ष की आयु होती है।

कर्क राशि के नवमांशस्थ शनि और लग्नेश दोनों पर चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि होने पर ही यह योग घटित होगा और यह स्थिति तभी सम्भव है जब शनि और लग्नेश संयुक्त हों और उनसे सप्तम भाव में चन्द्रमा स्थित हो तभी यह योग फलद होगा।

॥सात वर्ष की आयु॥

लग्ने यद्द्रेक्काणो निगलाहिविहङ्गपाशधरसञ्ज्ञः ।

मरणाय सप्तवर्षैः क्रूरयुतो न स्वपतिसन्दृष्टः ॥

लग्न में निगल, अहि, विहग और पाशधर नामक द्रेष्काण हो, लग्न पापाकान्त और अपने स्वामी से दृष्ट न हो तो सात वर्ष में मृत्यु होती है

॥ पांच वर्ष की आयु॥

रविचन्द्रभौमगुरुभिः कुजगुरुसौरेन्दुभिः सहैकस्थैः । रविशनिभौमशशाङ्कैर्मरणं खलु पञ्चभिर्वर्षैः॥

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और बृहस्पति; मंगल, बृहस्पति, शनि और चन्द्रमा अथवा सूर्य, शनि, मंगल और चन्द्रमा एक ही राशि में एकत्र हों तो जातक के लिए पाँच वर्ष में मृत्युकारक होते हैं

।।छः वर्ष की आयु।।

लग्नाधिपे चन्द्रदृशा समेते जातस्य षड्वर्षमितं तदाऽऽयुः ।।

चन्द्रमा के नवांश में स्थित शनि यदि चन्द्रमा से दृष्ट हो तथा लग्नेश पर चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि हो तो जातक की छः वर्ष की आयु होती है।

कर्क राशि के नवमांशस्थ शनि और लग्नेश दोनों पर चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि होने पर ही यह योग घटित होगा और यह स्थिति तभी सम्भव है जब शनि और लग्नेश संयुक्त हों और उनसे सप्तम भाव में चन्द्रमा स्थित हो तभी यह योग फलद होगा।

।।सात वर्ष की आयु।।

लग्ने यद्द्रेक्काणो निगलाहिविहङ्गपाशधरसञ्ज्ञः ।

मरणाय सप्तवर्षैः क्रूरयुतो न स्वपतिसन्दृष्टः ।।

लग्न में निगल, अहि, विहग और पाशधर नामक द्रेष्काण हो, लग्न पापाकान्त और अपने स्वामी से दृष्ट न हो तो सात वर्ष में मृत्यु होती है

कर्क का द्वितीय द्रेष्काण, मीन का तृतीय और वृश्चिक का प्रथम अहि या भुजङ्ग, वृश्चिक का द्वितीय द्रेष्काण पास मकर का प्रथम द्रेष्काण निगम और सिंह का प्रथम द्रेष्काण विहंगम या पक्षी कहलाता है।

यदि कर्क लग्न 10° से 20° के मध्य हो (भुजंग); मीन लग्न 20° से 30° के मध्य हो (भुजंग); वृश्चिक लग्न 1° से लेकर 20° के मध्य हो (भुजंग,पास); मकर लग्न 1° से 10° के मध्य में हो (निगण); अथवा सिंह लग्न 1° से 10° के मध्य में हो(विहंग); और इन्हीं अंशों में यदि पाप ग्रह लग्न में स्थित हों और द्रेष्काणपति से अदृष्ट हों तो निश्चय ही सात वर्ष में जातक की मृत्यु हो जाती है।

(1)-दो राशियों की सन्धि में जन्म हो और वह पापग्रह से दृष्ट या युत हो तो बालक शीध्र मरता है।

(2)- केन्द्र, त्रिकोण वह अष्टम स्थान में पाप ग्रहों की स्थिति।

(3)- मृत्युभागांश में चन्द्रमा यदि केन्द्र या अष्टम में हो तथा पाप ग्रहों से युति करता हो तो भी बालक मृत्यु को प्राप्त करता है।

मेषादि राशियों के मृत्यु भाग

राशि।	मृत्यु भाग
मेष	26°
वृष	12°
मिथुन	13°
कर्क	25°
सिंह।	24°
कन्या	11°
तुला।	26°
वृश्चिक।	14°
धनु।	13°

मकर।	25°
कुम्भ	5°
मीन।	12°

आयु के सात भेद

बालारिष्टं योगसञ्ज्यातमल्पं तेषां भङ्गान्मध्यमं दीर्घमायुः।

दिव्यं योगाभ्यासमन्त्रक्रियाद्यैरायुः सप्तैतानि सङ्कीर्तितानि ॥

आयु के निम्नलिखित सात भेद आचार्यों ने कहे हैं-1- बालारिष्ट, जन्म से 8 वर्ष पर्यन्त । 2- योगारिष्ट, 8-20 वर्ष पर्यन्त । 3- अल्पायु, 32 वर्ष पर्यन्त 4- अरिष्ट- भङ्गागत आयु। 5- मध्यम आयु, 70 वर्ष पर्यन्त । 6- दीर्घायु, 100 वर्ष पर्यन्त । 7- देवायु, 100 वर्ष से अधिक (अनुष्ठानादि से प्राप्त)।

5.4 योगारिष्टविचार

आप लोगों को इस बात की जानकारी हो गई होगी कि योगारिष्ट 8 वर्ष से 20 वर्ष पर्यन्त तक होता है अब योगारिष्ट के बारे में कुण्डली में घटित योगों का अध्ययन करेगें।

8 वर्ष की आयु विचार:- (क)- यदि चन्द्रमा निर्बल हो और अष्टम स्थान में पाप ग्रह हो तो जातक की आयु आठ वर्ष की होती है।

(ख) यदि पंचम तथा नवम भाव में पापग्रह स्थित हो और षष्ठ और अष्टम शुभग्रह हो और पंचम तथा नवम भाव पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो बालक स्थान में की मृत्यु आठवे वर्ष में होती है।

9 वर्ष के आयु विचार:- (क) - यदि सू. चं. और मं. पंचम स्थान में हो और उसके साथ कोई शुभग्रह न हो और न उस पर शुभग्रह की दृष्टि पड़ती हो तो बालक की मृत्यु कोई नौ वर्ष में होती है।

(ख)- लग्नेश जिस स्थान में बैठा हो, यदि उस स्थान से अष्टम स्थान में निर्बल चन्द्रमा हो और उस पर सब पापग्रहों हो तो बालक नौ वर्ष पूर्ण होने पर मर जाता।

(ग)- यदि लग्नेश पापग्रह हो और चन्द्रमा के स्थान से द्वादश स्थान में बैठा हो और उस पर (लग्नेश के अतिरिक्त) किसी अन्य पापग्रह की दृष्टि हो और प्रकार यदि लग्नेश पापगृह होकर चन्द्रमा से द्वादशस्थ हो और लग्नेश चन्द्र नवांश में हो तो ऐसे योगों में जातक की आयु नौ वर्ष की होती है। ("लग्नेश के अतिरिक्त)।

(घ) - यदि लग्नाधिपति और चन्द्रराश्याधिपति अस्त होकर 6, 8, 12 स्थान में बैठे हों तो जिस राशि पर लग्नाधिपति और राश्यधिपति बैठा हो, उसी की संख्या वाले वर्ष में मृत्यु होगी।

(ङ)- यदि चन्द्रमा मिथुन और कन्या गत हो,और साथ में सूर्य और मंगल बैठें हों, और शुभग्रह की दृष्टि से वंचित हो, अर्थात यदि सूर्य, चन्द्र,मंगल तीनों ग्रह मिथुन अथवा कन्या राशिगत हो और शुभग्रह की दृष्टि उनपर न पड़ती हो तो जातक की मृत्यु नव वर्ष में होती है।

(च)- यदि लग्नेश सूर्य हो और उसके साथ शनि भी हो और चन्द्र से दृष्ट हो तो नव वर्ष की आयु होती है। यदि चन्द्रमा,सूर्य और शनि अष्टम स्थान में हों तो नव वर्ष के अन्दर ही मृत्यु होती है।

10 वर्ष के आयु विचार:- यदि राहु सप्तम स्थान में हों और उसपर सूर्य और चन्द्र की दृष्टि पड़ती हो और शुभग्रहों की दृष्टि न पड़ती हो तो बालक की मृत्यु दशवें या बारहवें वर्ष में होती है। यदि शनि मकर के नवमांश में हो और उस पर बुध कु दृष्टि हो तो ऐसे बालक की आयु दश वर्ष की होती है। और जन्म से ही लोग उससे शत्रुता करते हैं। पाप दृष्टि राहु के केन्द्र वर्ती होने से 10 वर्ष अथवा 16 वर्ष के जातक को अरिष्ट होता है।

11 वर्ष का आयु विचार:- सूर्य से युक्त बुध यदि शुभग्रहों से दृष्ट हो तो अधिक सम्पत्ति वाला बनाकर 11 वर्ष में आयु का नाश करते हैं।

यहां पर सूर्य-बुध की युति पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो देवता की गोद में स्थित होने पर भी जातक का ग्यारहवें वर्ष में निधन होता है।

12 वर्ष का आयु योग:- चन्द्र राशि का स्वामी यदि सूर्य हों और अपने पुत्र शनि से युत होकर लग्न से अष्टम भाव में स्थित हों और शुक्र से दृष्ट हो तो बारहवें वर्ष में मृत्यु कारक होता है।

वृश्चिक के नवमांश गत शनि यदि सूर्य से दृष्ट हो तो जातक पितृद्वेषी होता है,तथा बारहवें वर्ष में मृत्यू को प्राप्त करता है।

13 वर्ष की आयु विचार:-तुला के नवमांश में स्थित शनि यदि बृहस्पति से दृष्ट हो तो पिति से वैर रखने वाला जातक 13 वें वर्ष में मृत्यु को प्राप्त करता है।

14 वर्ष की आयु का विचार:- कन्या के नवमांश में स्थित शनि बुध से दृष्ट हो तो जातक क्रोधी होता है तथा उसकी आयु 14 वर्ष की होती है।

15 वर्ष की आयु का विचार:- यदि शनि सिंह के नवमांश में स्थित होकर राहु से दृष्ट हो तो शस्त्राघात से (शल्यक्रिया आदि से) कष्ट होता है और जातक 15 वें वर्ष में मृत्यु को प्राप्त करता है।

16 वर्ष के आयु का विचार:- कर्क नवमांश गत शनि यदि केतु से दृष्ट हो तो 16 वें वर्ष में सर्पदंश से मृत्यु होती है।

17 वर्ष के आयु का विचार:- मिथुन नवमांशगत शनि यदि लग्नाधिपति से दृष्ट हो तो जातक वीर और होगी होता है तथा 17 वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है।

18 वर्ष के आयु योग:- लग्नेश और अष्टमेश में दोनों पाप ग्रह हों और उनमें व्यत्यय सम्बन्ध (परस्पर एक दूसरे के घर में बैठें हों) अथवा मकर लग्न में अष्टमेश सूर्य तथा अष्टमभाव भाव में लग्नेश शनि होने से 18 वें वर्ष में मृत्युदायी होता है।

19 वर्ष के आयु का विचार:-यदि शनि बृहस्पति के नवमांश में स्थित हो और राहु से दृष्ट हो तो शिशु की तत्काल मृत्यु होती है। किन्तु यदि लग्नेश उच्चराशिगत हो तो वह 19 वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है।

20 वर्ष के आयु का विचार:- केन्द्रस्थ पापग्रह यदि शुभग्रहों और चन्द्रमा से अदृष्ट हो और चन्द्रमा छठें या आठवें भाव में स्थित हो तो जातक 20 वर्ष पर्यन्त सुखी रहता है।

5.4 अरिष्ट भङ्गात आयु का विचार

चूंकि आप लोग इस बात को भली-भांति समझ गए होगें कि

ग्रह राशि, भाव भावेश, दशा इत्यादि से उत्पन्न अरिष्ट कैसे भङ्ग होते हैं, तथा यहां पर अरिष्ट भङ्गागत आयु का ज्ञान किन योगों से किया जायेगा। आईए इसका अध्ययन करते हैं।

यदि जन्मकुंडली में समस्त शुभग्रह पूर्ण बलवान हों तथा सब पापग्रह निर्बल हों और शुभग्रह की राशि में लग्न , शुभग्रह से दृष्ट हो तो जातक के समस्त अरिष्टों (आपत्तियों) का विनाश होता है। जैसे सभी ग्रहों के पुजा करने वाला पापों से रहित होता है।

यदि अरिष्टकारक ग्रह किसी ग्रह से घिरा हुआ (युत) पाप ग्रह से दृष्ट हो तो अरिष्ट का नाश करता है, जैसे सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में स्नान करने से पाप का नाश होता है। यदि जन्मकाल में सुन्दर मन्द वायु तथा मेघ हों और ग्रह समुदाय बली व निर्मल बिम्ब हो तो क्षणभर में अरिष्ट का शमन होता है, जैसे जलधारा धुलिसमुदाय का समन करती है।

5.4 देवायु (देवतुल्यआयु)

6 प्रकार से आयुष्य की हानि के बारे में बताया गया गया है। (1)-क्रुरोदयगत हरण, (2)-अस्थगत हरण,(3)-शत्रुक्षेत्रगत हरण,(4)-नीचस्थानगत हरण,(5)-ग्रहयोगगत हरण,(6)-व्ययादि हरण

इन 6 प्रकार से सूर्यादि ग्रहों के द्वारा प्रदत्त आयुर्दाय में ह्रास होता है। इन 6 प्रकार के ह्रासों से युक्त सूर्यादि ग्रह के स्पष्ट आयुर्दायों के योग में लग्न के आयुर्दाय को संयुक्त करने से जातक की स्पष्ट आयु होती है।

(1)- बलवान शुभग्रह केन्द्र में हों तथा अष्टमभाव में कोई ग्रह नहीं हो तो जातक की आयु 30 वर्ष, यदि उसपर शुभग्रह की दृष्टि भी हो तो 40 वर्ष आयु होती है।

(2)- गुरू यदि अपनी राशि और द्रेष्काण में हो तो 27 वर्ष की आयु होती है। यदि उच्चगत गुरु लग्न में और शुक्र केन्द्र में हों तो 100 वर्ष की आयु होती है।

(3)- बृषराशिस्थ पूर्ण चन्द्र यदि लग्न में हो और शुभग्रह अपनी-अपनी राशि में हों तो 60 वर्ष आयु होती है। शुभग्रह अपने मूलत्रिकोण में और गुरु अपने उच्चराशिलग्न में हो तो

80 वर्ष आयु होती है।

(4)- अष्ठम भाव में कोई ग्रह नहीं हो, शुभग्रह केन्द्र में अथवा लग्न में गुरु और शुभ ग्रह 3,6,11 भाव में हों उन पर पापग्रहों की दृष्टि नहीं हो तो जातक की आयु 70 वर्ष की होती है।

5.4 देवायु (देव तुल्य आयु

यहां पर हम अध्ययन करेगें उस आयु की जो जातक 100 वर्ष से भी अधिक जीवित रहते है ।

जैसा कि आपलोग जानते है कि देवता अजर- अमर होते है कभी मरते नहीं है। यहां पर आयु देव तुल्य का आशय है कि 100 वर्ष से अधिक आयु पाने वाले जातक के कुण्डली में योग से इस योग को समझने का प्रयास करते है।

(1)- लग्न में चन्द्रमा तथा शनि के नवमांश में, नवम भाव में या नवमस्थ राशि के नवमांश में बलवान सूर्य,मंगल और बृहस्पति हो तो जातक धनवान और युगान्त आयु का स्वामी होता है।

(2)- एक ही अंश(नवमांश) में स्थित होकर शनि और बृहस्पति यदि नवें या दशवें भाव में स्थित हों और लग्न में सूर्य शुभग्रहों से दृष्ट हो तो जातक चिरायु और तापसी होता है।

(3)- कर्क राशि के लग्न में बृहस्पति के साथ चन्द्रमा स्थित हो, बुध और शुक्र केन्द्रस्थ हों यथा पापग्रह (सूर्य,मंगल,शनि,राहु और केतु, (3,6,11 वें भाव) गत हों तो गणितागत आयु के बिना ही अमित आयु कहना चाहिए।

(4)- केन्द्र शुभग्रहों से और त्रिकोण पापग्रहों से मुक्त हों अर्थात् केन्द्र में पापग्रह और त्रिकोण में शुभग्रह स्थित हों तथा अष्टमभाव भी पापग्रह से हीन हो तो जातक देवता के समान होता है। अर्थात् परम आयु को प्राप्त करता है।

लग्नादि भावों में सभी ग्रह शनि और मंगल के मध्य स्थित हों और वै सभी वैशेषिकांश में स्थित हों तो जातक देवता के समान होता है।

।।अमितायु योग।।

मेषान्त्यलग्ने सगुरौ भृगौ वा निशाकरे गोगृहमध्यमांशे।

सिंहासनांशे यदि वा धराजे जातस्त्वसंख्यातमुपैति मन्त्रैः।।

(जातकपारिजात श्लोक102अरिष्टाध्याय)

लग्न में मेष राशि का अन्तिम नवमांश हो (मेष का अन्तिम नवमांश धनु का होगा) और बृहस्पति या शुक्र लग्न में स्थित हों वृषराशि का मध्य नवमांश (वृष राशि के नवमांश में) चन्द्रमा स्थित हों तथा यदि भौम सिंहासनांश में स्थित हो तो जातक अनुष्ठान आदि से आमितायु का भोग करता है।

(5)- कर्क राशि का लग्न हो, गोपुरांशस्थ बृहस्पति केन्द्रस्थ हो, परावतांशस्थ शुक्र त्रिकोण में स्थित हो तो युगान्त आयु होती है।

5.5 बोध प्रश्न

(1):- आयु के कितने प्रकार प्रकार होते है ?

(क)- 7 प्रकार के (ख)- 9 प्रकार के

(ग)- 6 प्रकार के (घ)- 8 प्रकार के

(2):- आयु हानि कितने प्रकार का होता है ?

(क)- 7 प्रकार का (ख)- 6 प्रकार का

(ग)- 8 प्रकार का (घ)- 9 प्रकार का

(3):- बृहस्पति और शुक्र के साथ लग्नेश यदि केन्द्र में हों, अथवा केन्द्रस्थ लग्नेश बृहस्पति और शुक्र से दृष्ट हों तो ?

(क) दीर्घायु योग। (ख)- मध्यमायु योग

(ग)- अल्पायु योग। (घ)- परमायु योग

(4):- पापग्रह से युक्त जन्मराशिश अष्टमभाव में पापग्रहों से युक्त लग्नेश छठें भाव में बलवान होकर अथवा शुभ दृष्टि से हीन हो तो कितने वर्ष का मध्यायु होता है ?

(क)- 46 वर्ष का (ख)- 50 वर्ष का

(ग)- 45 वर्ष का (घ)- 47 वर्ष का

(5):- छठें,आठवें और बारहवें भाव में पापग्रह तथा लग्नेश निर्बल हों और शुभग्रह से युत-दृष्ट न हो तो जातक होता है।

(क)- निःसन्तान अल्पायु।

(ख)- संतान भी हो अल्पायु न हो।

(ग)- अधिक सन्तान वाला अल्पायु

(घ)-कम संतान वाला और दीर्घायु होता है।

5.5 सारांश

जैसा कि आप लोगों ने इस विषय का अध्ययन किया कि आयु के कुल सात प्रकार होते है। परन्तु यहां पर इस विषय का अध्ययन करना परम आवश्यक है कि इन आयुफल को कैसे कहेगें अतः इस विषय को भी समझाने का प्रयास यहां पर किया गया है।अन्य देशों में भी फल कहने की तीन विधियाँ है। जन्म लग्न से ग्रहों की स्थिति अनुसार, फल कहने की पहली विधि है। जन्म-कालोन चन्द्रमा जिसको चन्द्र लग्न भी कहते हैं, उस स्थान से ग्रहों को स्थिति अनुसार फल कहने को दूसरी विधि है। एवं नवांश कुंडली के अनुसार फल कहने की तीसरी विधि है। लग्न से शरीर का विचार होता है और चन्द्रमा से मन का। समस्त कार्य मन ही पर निर्भर करता है। मन ही से सुख एवं दुःख का अनुभव होता है । मन की ही शान्ति अथवा अशान्ति के कारण मनुष्य सुकर्म एवं कुकर्म का भाजन होता है । मन ही की सबलता एवं निर्बलता के अनुसारपारलौकिक एवं सांसारिक यात्रा में सफलता अथवा निष्फलता होती है। इन सब कारणों से ही महर्षियों ने चन्द्र-लग्न से अनेक प्रकार का विचार बतलाया है।

जन्म समय जिस राशि में चन्द्रमा रहता है वह राशि प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एक प्रबल स्थान होता है। अर्थात् उस स्थान से जातक के जीवन की अनेकानेक बातों का विचार हो सकता है। इस कारण भारतवर्ष के विद्वानों का मत है कि प्रत्येक मनुष्य के जन्म के बाद जन्मकालीन चन्द्रमा के स्थान से जिन-जिन राशि में ग्रह-भ्रमण करते हुए जाते हैं, वैसा-वैसा फल उस उस समय में जातक के जीवन में होता है। इसी को गोचर फल कहते हैं। गोचर अनुसार फल एक गौण-फल-विधि है। इसको "गौण-फल" इस कारण कहा जाता है कि संसार भर के मनुष्य मात्र के चन्द्रमा इन्हीं द्वादश राशियों में से किसी में रहता है। अतएव साधारण गोचरफल अनुसार केवल बारह ही प्रकार के फल होंगे, परन्तु ऐसा होता नहीं और होना भी नहीं चाहिये। इस कारण महर्षिगण इस बात में सहमत है कि जन्म कालीन ग्रहस्थिति से अर्थात जन्म समय में जिस-जिस राशि में सात ग्रह स्थित हो और लग्न जिस राशि में स्थित हो, इन आठ स्थानों से (अर्थात् सात ग्रह और एक लग्न) गोचर का फल यदि विचार किया जाय तो वह विचार विश्वसनीय होगा। इसी प्रकार फल आयु के प्रकार को अध्ययन करने बाद करना चाहिए।

5. 6 पारिभाषिक शब्दावली

राशिबलवान= जो राशि अपने स्वामी से , स्वामी के मित्र ग्रहों से ,बुध और बृहस्पति से युत या दृष्ट हो तथा अन्यग्रहों से युत-दृष्ट न हो तो वह राशि बलवान होती है। अन्यमतानुसार द्विपद राशियाँ केन्द्र में चतुष्पद राशियां पणफर भावों में तथा कीट राशियाँ आपोक्लीम भावों में बली होती है।

वर्गोतमस्थ= अपने-अपने स्वगृह उच्च मूलत्रिकोण, अपने वर्ग में हो तो वर्गोतमस्थ कहलाते है।

उत्तमांश= इन वर्गोत्तमों के योग से वैशेषिकांश वैशेषिकांश होते है। दस वर्गों में ग्रह के तीन वर्ग यदि उसके अपने हों तोग्रह उत्तमांश में कहलाता है।

गोपुरांश= चार वर्ग यदि ग्रह के अपने वर्ग हों तो वह ग्रह गोपुर नामक वैशेषिकांश में कहलायेगा।

सिंहासन= पाँच वर्ग जिस ग्रह के उसके अपने हों उसे सिंहासन नामक वैशेषिकांश में कहते हैं।

पारिजात= दो वर्ग यदि ग्रह के अपने वर्ग हो तो उस ग्रह को पारिजात नामक वैशेषिकांश कहते है।

परावत= 6 वर्ग यदि उस ग्रह के हों तो उस ग्रह को परावत नामक वैशेषिकांशगत कहते है| देवलोकांश= सात वर्ग यदि ग्रह का अपना वर्ग हो वह देवलोकांशस्थ कहलाता है। ऐरावतांश= यदि आठ उस ग्रह का हो तो भी देवलोकांश में तथायदि नव ग्रह उसके हों तो वह ऐरावतांश कहलाता है।

5.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

(1)- क

(2)- ख

(3) - क

(4)- ग

(5)- क

5.8 सन्दर्भग्रन्थ सुची

(1)- **जातकपारिजात (व्याख्याकार डॉ. हरिशंकर पाठक)चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन।**

(2)- **सारावली। (व्याख्याकार डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी)**

मोतीलाल वानारसीदास प्रकाशन वर्ष 1989

(3)-**चिकित्सा ज्योतिषम्**

(4)- **पञ्चस्वरा**

5.9 **निबन्धात्मक प्रश्न**

(1)- **पुर्णायु योग के बारे में विस्तृत विवेचन करिये।**

(2)- **मध्यमायु योग का विस्तृत विवेचन किजिये।**

खण्ड-द्वितीय
रूग्ण के विशेष योग

इकाई 01 रोग योग सूचक प्रमुख ग्रह

इकाई की संरचना

1.1. प्रस्तावना
1.2. उद्देश्य
1.3. रोग-एक परिचय
1.3.1. रोग-निदान की विविध पद्धतियां
1.4. रोगनिर्धारण में ग्रहों की भूमिका
1.4.1. रोगों के विविध ग्रहयोग
1.5. सारांश
1.6. पारिभाषिक शब्दावली
1.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9. सहायक पाठ्य सामग्री
1.10. निबन्धात्मक प्रश्न

1.1. प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के मूलाधार वेद हैं। वेद से ही हमें अपने धर्म और सदाचार का ज्ञान प्राप्त होता है। हमारी पारिवारिक, सामाजिक, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं के स्त्रोत भी वेद ही हैं। संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सबसे ऊपर है। ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द का अर्थ ज्ञान ही है। यह वैदिक ज्ञान ही समस्त प्रकार के आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान का स्त्रोत या आधार है। इसे ईश्वरीय ज्ञान कहें या प्राचीन ऋषियों के द्वारा अपनी प्रतिभा से प्राप्त सत्य ज्ञान कहें, 'वेद' शब्द के वाच्यार्थ के रूप में ही है। यह भारत के ही नहीं, अपितु जगत् के प्राचीनतम साहित्य के रूप में आदि-संस्कृति के ज्ञान का स्त्रोत है। वेद से वह ज्ञान मिलता है जिसे प्राप्त करने के लिए अन्य कोई साधन इस जगत् में नहीं है। इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाला ग्रन्थ वेद है। यथोक्तम्-**"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः।"**

वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। इन चार वेदों के चार उपवेद भी हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गन्धर्ववेद, अथर्ववेद का स्थापत्यवेद । आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा प्रणालियों में से एक है। यह विज्ञान, कला और दर्शन का मिश्रण है। आयुर्वेद (आयुः + वेद = आयुर्वेद) नाम का अर्थ ही 'जीवन से सम्बन्धित ज्ञान' है। आयुर्वेद भारतीय आयुर्विज्ञान है। आयुर्विज्ञान विज्ञान की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध मानव शरीर को निरोग रखने, रोग हो जाने पर रोग से मुक्त करने अर्थात् उसका शमन करने तथा आयु बढाने से है। कहा भी है-

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।। (सुश्रुतसंहिता)

आयुर्वेद के ग्रन्थों में तीनों दोषों वात, पित्त और कफ के असंतुलन को रोग का और समदोष की स्थिति को आरोग्य का हेतु माना गया है। भारतीय विद्याएँ वेदों से ही प्रकट हुई हैं। वेदों के छः अंग कहे गये है- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष। इन्हें षड्- वेदांगों की संज्ञा दी गई है। महर्षि पाणिनि ने इन वेदाङ्गों में से ज्योतिष को वेद पुरुष का नेत्र कहा है। तद्यथा – **'ज्योतिषामयनं चक्षुः'**

जैसे मनुष्य बिना चक्षु इन्द्रिय के किसी भी वस्तु का दर्शन करने में असमर्थ होता है, ठीक उसी प्रकार से ज्योतिष वेदाङ्ग के ज्ञान के बिना वेदविहित कर्मों का ज्ञान भी असम्भव है। मानव के शरीर में उत्पन्न होने वाले विविध रोगों का कारण भी ग्रहों का प्रभाव है। इसी ज्योतिष वेदाङ्ग के माध्यम से ग्रहों के अशुभ प्रभाव का ज्ञान कर विविध रोगो के परिज्ञान और निवारण में ज्योतिषशास्त्र का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

1.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि -

- रोग क्या होते हैं ?
- रोगज्ञान की विविध विधियां जान पाएगें।
- ज्योतिष के अनुसार रोगों की ज्ञानविधि जान सकेगें।
- मानवशरीर में राशियों का विन्यास जान पाएगें।
- मानवशरीर पर ग्रहों का प्रभाव जान सकेगें।
- ग्रहों से होने वाले रोगों को जान सकेगें।

1.3. रोग- एक परिचय

आप सब जानते है कि मानव के शरीर में समय-समय पर विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते रहते है । इसलिए शरीर को रोगो का घर कहा गया है । तद्यथा- **'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'** अर्थात् यह शरीर रोगों का घर है। इस शरीर में विविध प्रकार के रोग रहते है,जो समय-समय पर उसी प्रकार से उत्पन्न होते है,जैसे ऋतु आने पर वृक्षों पर विविध प्रकार के फल और फूल उत्पन्न होते है। अतः जब भी शरीर में उत्पन्न होने वाले विविध रोगों की चर्चा होती है, तो मन में सर्वप्रथम जिज्ञासा यहीं आती है कि रोग क्या है ? क्यों होते है ? कब होते है ? इस जिज्ञासा का शमन आयुर्वेद के विविध ग्रन्थों में किया गया है। आयुर्वेद में रोग को व्याधि कहा गया है। व्याधि की परिभाषा देते हुये कहा गया है – **'विकृतेर्नाम व्याधि रोग इत्यभिधीयते।'**

अर्थात् विकृति का नाम ही व्याधि है,जिसको रोग कहते है। शरीर में किसी भी प्रकार का विकार ही व्याधि कहलाता है। यह विकार शरीर में होने पर शारीरिक रोग तथा मन में होने पर मानसिक रोग होता है । शारीरिक रोगो को व्याधि तथा मानसिक रोगों को आधि कहा जाता है। रोग अर्थात् अस्वस्थ होना। साधारण शब्दों में शरीर के पूर्ण रूप से कार्य करने में किसी प्रकार की अकुशलता का होना 'रोग' कहलाता है। आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों का सम मात्रा में होना ही आरोग्य और इसमें विषमता होना ही रोग है। सुश्रुत ने स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण करते हुये कहा है -

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। (सुश्रुतसंहिता)

अर्थात् जिस व्यक्ति के सभी दोष सम मात्रा में हों, अग्नि सम हो, धातु, मल औरउनकी क्रियाएँ भी सम हों तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न हों उसे स्वस्थ समझना चाहिए। त्रिदोषों की विषमता तथा मन की अप्रसन्नता की स्थिति में व्यक्ति रोगी कहलाता है। रोगों के अनेक रूप हैं किन्तु प्रश्न यह है कि व्यक्ति को रोग क्यों होता है? रोग का उपचार क्या है? ये ही दो मुख्य प्रश्न है जो किसी भी रोग के उपचार में

प्रवृति बीज के रूप में कार्य करते है। भारत जैसी प्राचीन संस्कृति में आरम्भ से ही विविध रोगों के उपचार में सहायक विविध चिकित्सा पद्धतियों का प्रयोग किया जाता रहा हैं। उनमें से कुछ चिकित्सा पद्धतियां वर्तमान काल में भी प्रासङ्गिक है,यद्यपि आधुनिक काल में अनेकों नूतन पद्धतियों का प्रयोग भी रोगोपचार में किया जा रहा है। रोग-निदान की इन्हीं पद्धतियों के विषय में हम इस इकाई में चर्चा करेंगें।

1.3.1. रोग-निदान की विविध पद्धतियां

जैसा कि आप जानते हैं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है, लेकिन कोई भी व्यक्ति सर्वदा स्वस्थ नहीं रहता। किसी न किसी कारण से व्यक्ति के शरीर में विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते रहते हैं। शरीर में उत्पन्न होने वाले विविध रोगों को उनकी प्रकृति व कारण के आधार पर विभक्त किया गया है।रोगों से पीडित होने पर रोग मुक्ति के लिये जो उपचार किया जाता है,वह चिकित्साकहलाता है। पर व्यापक अर्थ में वे सभी उपचार चिकित्साके अंतर्गत आ जाते हैं जिनसे स्वास्थ्य कासंरक्षण और रोगों का निवारण होता है।चिकित्सा के क्षेत्र में ऐसी बहुत सी विधियाँ हैं जिनके आधार पर रोगों का ज्ञान और उनका उपचार किया जाता है। उन विधियों में से कुछ प्रमुख पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं-

आयुर्वैदिकपद्धति-आयुर्वैदिकपद्धति भारत की प्राचीन पद्धति है।यह चिकित्सा की एक ऐसी समग्र प्रणाली है जिसका भारत में प्राचीन काल से ही पालन किया जा रहा है। आयुर्वेद के अनुसार, केवल बिमारियों या रोगों से मुक्ति ही स्वास्थ्य नहीं है, बल्कि यह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन की स्थिति है।एक समय यह बहुत उन्नत थी, पर अनेक शताब्दियों से भारत के परतन्त्रता काल में शासकों की ओर से प्रोत्साहन के अभाव में इसकी प्रगति रुक गई और यह पिछड़ गई। परन्तु भारत की मूल चिकित्सा पद्धति होने के कारण इसकी जड़े इतनी गहरी है कि आज भी देश के अधिकांश व्यक्तियों की चिकित्सा इसी आयुर्वैदिक चिकित्सा प्रणाली से होती है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली के अध्ययन को निरन्तर प्रोत्साहित किया जा रहा है और वैज्ञानिक विधि से इसके अध्यापन ओर अन्वेषण के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं।

ऐलोपैथिकपद्धति-चिकित्सा की यहपद्धतिअंग्रेजों के भारत में आगमन के साथ आई और ब्रिटिश राज्यकाल में शासकों से प्रोत्साहन पाने के कारण यह पद्धति अत्यन्त द्रुत गति से इस देश में पनपने लगी।वर्तमान काल में भारत में ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देशों में रोग निदान में इसी चिकित्सा पद्धति का प्रयोग होता है। इस चिकित्सा पद्धति में रोग के निवारण हेतु विविध प्रकार के टेबलेटस आदि का प्रयोग किया जाता है। जो किसी भी प्रकार के रोग पर तुरन्त अपना प्रभाव दिखाती है,परन्तु कभी-कभी इस

चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत किया जाने वाला उपचार रोगी के शरीर पर दुष्प्रभाव (साइड-इफैक्ट) भी डालता है। अतः एलोपैथिक दवाइयाँ चिकित्सकीय परामर्श के बिना कभी भी नहीं लेनी चाहिए।आज स्वतंत्र भारत में इस पद्धति को मान्यता प्राप्त है और इसके अध्ययन-अध्यापन तथा अन्वेषण के लिये अनेक महाविद्यालय तथा अन्वेषणकेन्द्र (रिसर्च संस्थान) हैं। प्रतिवर्ष अनेकों चिकित्सक इन संस्थानों में ऐलोपैथी चिकित्सा पद्धति में निष्णात होकर इस पद्धति के माध्यम से चिकित्साकार्य करते हैं। भारत तथा विश्व के अनेकों देशों में इस चिकित्सा-पद्धति से उपचार हेतु अनेक अत्योन्नतचिकित्सालय हैं, जिनमें अनेकों उच्च कोटि के चिकित्सक रोगियों का उपचार करते हैं।

होम्योपैथिकपद्धति- होम्योपैथिकचिकित्सा पद्धति का प्रारम्भ अंग्रेजों के शासनकाल में ही भारत में हुआ ।होम्योपैथी पद्धति चिकित्सा के समरूपता के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसका मुख्य आधार रोग-निदान में उन औषधियों के प्रयोग से है , जिन औषधियों के प्रयोग से शरीर में वही रोग उत्पन्न होते है। इस चिकित्सा पद्धति में रोगों का उपचार ऐलोपैथी से अपेक्षाकृत कम गति में होता है, परन्तु इस पद्धति में किसी भी रोग को शरीर से समूल नष्ट किया जाता है। चिकित्सक रोगी द्वारा बताए गए रोग के लक्षणों तथा रोगी की शारीरिक प्रकृति के आधार पर रोग का उपचार करता है। रोग के लक्षणों एवं औषधि के लक्षणों में जितनी ही अधिक समानता होगी, रोगी के स्वस्थ होने की संभावना भी उतनी ही अधिक रहती है। चिकित्सक का अनुभव उसका सबसे बड़ा सहायक होता है। पुराने और कठिन रोग की चिकित्सा के लिए रोगी और चिकित्सक दोनों के लिए धैर्य की आवश्यकता होती है।इस चिकित्सा पद्धति के अध्ययन तथा अध्यापन हेतु भारत में अनेक प्रतिष्ठित संस्थान है, जिनमें नियमित रूप सेहोम्योपैथी का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। अंग्रेजी शासनकाल में यह राजमान्य पद्धति नहीं थी, किंतु अब इसे भी शासकीय मान्यता प्राप्त है।

यूनानी पद्धति-यूनानी चिकित्सा पद्धति भारतीय चिकित्सा पद्धति का ही एक रूप है। त्रिदोषों की प्रधानता के आधार पर ही रोगों के लक्षणों का पता किया जाता है। मानव शरीर में अग्नि, जल, पृथ्वी और वायु की विषमता के कारण ही विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते है। यूनानी चिकित्सा के अनुयायियों के अनुसार इन तत्त्वों की विभिन्न तरल पदार्थों में उपस्थिति का ज्ञान कर रोग के निदान में उनका प्रयोग किया जाता है। इन पदार्थो का प्रत्येक व्यक्तिपर प्रभाव, उसके स्वभाव और रक्त की विशेषता तय करता है। कफ की प्रधानता वाला व्यक्ति ठंडे स्वभाव का होता है। पित्त के असन्तुलन से मानव का स्वभाव चिड़चिड़ा और विषादपूर्ण होता है ।यूनानी पद्धति मुसलमानी शासनकाल में भारत में अस्तित्व में आई, परन्तु ब्रिटिश शासनकाल में प्रोत्साहन के अभाव में यह

शिथिल पड़ गई। भारत में आज भी कुछ संस्थानों में यूनानी पद्धति के पठन पाठन का विशेष प्रबंध है।

ज्योतिषीय पद्धति- भारत में प्राचीन काल से ही ज्योतिषीय पद्धतिके माध्यम से भी रोगों के ज्ञान और उनके निदान की परम्परा है। जातक के जन्माङ्ग में ग्रहों की स्थिति उस जातक के सम्पूर्ण जीवन में होने वाले रोगों की जानकारी प्रदान करती हैं। इसलिए भारतीय परम्परा में एक दैवज्ञ को वैद्य तथा एक वैद्य को दैवज्ञ होने की बात करते हुए कहा गया है – **ज्योतिर्वैद्यौ निरन्तरौ**

एक कुशल दैवज्ञज्योतिषशास्त्र के माध्यम से रोग की प्रकृति, उसका प्रभाव तथा उसके कारणों का विश्लेषण कर रोग का ज्ञान और उपचार कर सकता है। ज्योतिषशास्त्र में द्वादश राशियाँ, द्वादश भावों, नवग्रह और सत्ताईस नक्षत्रों के माध्यम से रोगों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।कालपुरुष के शरीर के विविधाङ्गों पर विविध राशियों का आधिपत्य होता है, जिसके आधार पर जातक के शरीर के किस अङ्ग में रोग या पीडा होगी- यह ज्ञात किया जा सकता है। जन्माङ्ग में स्थित प्रत्येक राशि, भाव तथा ग्रह जातक के शरीर के किसी न किसी अंग का प्रतिनिधित्व करता है, वह भाव तथा राशि पीडित होने पर शरीर के उसी अङ्ग में रोग उत्पन्न होता है। यह रोग कब उत्पन्न होगा, इसका ज्ञान करने के लिए विंशोतरी आदि दशाओं तथा ग्रहों के गोचर के अनुसार रोगोत्पत्ति का काल ज्ञान किया जा सकता है।

1.4. रोगनिर्धारण में ग्रहों की भूमिका

"ग्रहाधीनं जगत्सर्वम्" इस उक्ति के अनुसार मानव को अपने जीवन में जो भी सुख-दुःख की अनुभूति होती है, उन सभी का मुख्य कारण ग्रह ही हैं। जातक की जन्म कुण्डली में जो ग्रह शुभफल के कारक होते हैं, उनकी दशा- अन्तर्दशा में शुभफल प्राप्त होता है और जो ग्रह अशुभफल के कारक होते हैं, उनकी दशा-अन्तर्दशा,गोचर आदि में अशुभफल प्राप्त होता है। ग्रहों की शुभता और अशुभता का ज्ञान उनकी स्थिति, युति और दृष्टि के कारण होता है। इन्हीं के कारण ही हमें सुख- दुःख का अनुभव होता है। चिकित्साशास्त्र के लिये जिस प्रकार शारीरिक विज्ञान ही आधार है, उसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में जन्मकुण्डली के बारह भावों में शरीर के विभिन्न अंगो की परिकल्पना की गई है। इन अंगो के ऊपर किन ग्रहों का और राशियों का आधिपत्य है, इन सब का ज्ञान करते हुए जो ग्रह जिस राशि में स्थित हैं, उनकी स्थिति के अनुसार उनके द्वारा होने वाले रोगों का विचार किया जाता है। ये राशियाँ कौन सी हैं? ये ग्रह कौन से हैं? वे भाव कौन से हैं? इन प्रश्नों के उत्तरों का अब हम विचार करेंगे।

राशियों के आधार पर शरीर के अंग

ज्योतिषशास्त्र में द्वादश राशियों का वर्णन प्राप्त होता है। ये द्वादश राशियाँ हैं- मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। हमारे शरीर के विभिन्न अंगों पर राशियों का स्वामित्व है। यह राशियाँ यदि शुभ ग्रहों से युक्त हो तो ये राशियां जिन अंगो का प्रतिनिधित्व करती हैं,उन शरीर के उन अङ्गों में सुदृढता और सुन्दरता रहती हैं। अशुभ ग्रहों से युक्त होने पर शरीर के उन अङ्गों में पीडा रहती हैं। बृहज्जातक में जिस प्रकार आचार्य वराहमिहिर ने कहा भी है-

कालाङ्गानि वराङ्गमाननपुरो हृत्कोडवासोभृतो।
वस्तिर्व्यञ्जनमूरुजानुयुगले जङ्घे ततोऽङ्घ्रिद्वयम्।। (बृहज्जातकम्)

मेष राशि सिर का प्रतिनिधित्व करती है। वृष राशि मुख का,मिथुन राशि वक्षस्थल का, कर्क राशि हृदय का, सिंह राशि उदर का, कन्या राशि कमर का, तुला राशि वस्तिप्रदेश का, वृश्चिक राशि गुप्ताङ्ग का,धनु राशि उरुस्थल का, मकर राशि जङ्घा का,कुम्भ राशि घुटनों का तथा मीन राशि पैरों का प्रतिनिधित्व करती हैं ।मेषादि द्वादश राशियां मानव-शरीर के जिन अङ्गों का प्रतिनिधित्व करती है, उसको तालिका के माध्यम से भी समझा जा सकता है -

राशि	शरीराङ्ग
मेष	शिर
वृष	मुख
मिथुन	स्तनमध्य
कर्क	हृदय
सिंह	उदर
कन्या	कमर
तुला	वस्ति
वृश्चिक	गुप्ताङ्ग
धनु	उरुस्थल
मकर	जङ्घा
कुम्भ	घुटना
मीन	पादयुगल

ग्रहों के आधार पर शरीर के अंग

ज्योतिषशास्त्र में कुल नव ग्रह माने जाते हैं, जिनके नाम इस प्रकार है- सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु। इनमें सूर्यादि सप्त ग्रह तथा राहु-केत्वादि दो छाया

ग्रह माने जाते हैं। इन नौ ग्रहों की जन्माङ्ग में शुभाशुभ स्थिति के आधार पर ही व्यक्ति को जीवन में शुभाशुभ फल प्राप्त होता है ।इनमें से सूर्यादि सप्तग्रहों को राशियों का स्वामित्व प्राप्त है, यद्यपि राहु-केत्वादि को राशियों का स्वामित्व प्राप्त नहीं है,प्रत्येक ग्रह का सम्बन्ध किसी न किसी तत्त्व तथा किसी न किसी शरीराङ्ग से है, जिसका वर्णन ज्योतिषशास्त्र के विविध आचार्यों ने विविध ग्रन्थों में किया है। सूर्य का सम्बन्ध जातक की अस्थियों से होता है। चन्द्र ग्रह मनुष्य के रक्त को प्रभावित करता है। मंगल ग्रह का सम्बन्ध मज्जा से है। बुध ग्रह त्वचा को प्रभावित करता है। बृहस्पति का सम्बन्ध मेदा से है। शुक्र ग्रह वीर्य से सम्बन्धित है तथा शनि का सम्बन्ध नसों से है। यथोक्तम्-

स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगथ शुक्रवसा च मज्जा।
मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः ।। (बृहज्जातकम्-2/11)

ग्रहों तथा विविध शरीराङ्गों के इस सम्बन्ध तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है। तद्यथा-

ग्रह	शरीराङ्ग
सूर्य	अस्थि
चन्द्र	रक्त
मंगल	मज्जा
बुध	त्वच्चा
गुरु	मेदा
शुक्र	वीर्य
शनि	स्नायु

ज्योतिषशास्त्र में प्रायः सभी रोगों के लिए जन्मकुण्डली के छठे भाव का ही प्राधान्य होता है परन्तु कभी – कभी ऐसा होता है कि छठे भाव के अधिपति ग्रह और छठे भाव का दोष न होने पर भी लोग रोगों से पीडित होते हैं। अतः रोग विचार के लिए छठे स्थान को अधिक महत्व दिया जाता है, फिर भी सभी रोगों के विचार के लिए रोग भाव छठा ही हो ऐसा नहीं कह सकते इसलिए हमें सभी रोगों के विचार के लिए जन्मकुण्डली के सभी भावों से विचार कर लेना चहिए। जैसे कहा भी है-

रोगस्य चिन्तामपि रोगभावस्थितैर्ग्रहैवा व्ययमृत्युसंस्थैः।
रोगश्वरेणापि तदन्वितैर्वा द्वित्र्यादिसंवादवशाद्वदन्तु।। (फलदीपिका)

अर्थात् जो रोग दीर्घ अवधि से चले आ रहे हैं, उनका विचार चतुर्थ और द्वादश स्थानों के माध्यम से, शीघ्रता से होने वाले रोगों का विचार छठे भाव से, आकस्मिक घातक

मारक रोगों का विचार अष्टम भाव से किया जाता है। पुनः हम जन्म लग्न से भी रोगी के विषय में ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् जातक के वात-पित्त-कफ आदि में कौन सी प्रकृति है? सात्विक-राजसिक-तामसिक गुणों में जातक का कौन सा गुण है? काम-क्रोध आदि स्वभावों में जातक का कौन सा स्वभाव है? जातक की जीवनशैली कैसी है?उसका खानपान कैसा है?रोगी की प्रतिरोधक क्षमता कैसी है ?इत्यादि विषय जातक के जन्मकुण्डली से विचार किए जाते हैं, जिनसे जातक की रोग प्रतिरोधक क्षमता का ज्ञान होता है।

लग्न आदिद्वादश भावों से विचारणीय रोग-

जन्मकुण्डली में लग्नादि द्वादश भाव होते हैं। इन्हीं द्वादश भावों के आधार पर शरीर के विभिन्न अंगों का विचार किया जाता है। समस्त जन्मकुण्डली को कालपुरुष का स्वरुप मानकर प्रथम भाव से सिर का, द्वितीय भाव से मुख का, तृतीय भाव से वक्षस्थल का, चतुर्थ भाव से हृदय का, पञ्चम भाव से उदर का, षष्ठ भाव से कटि का, सप्तम भाव से वस्ति का, अष्टम भाव से गुप्त इन्द्रियों का, नवम भाव से जांघों का, दशम भाव से दोनों घुटनों का, एकादश भाव से पिंडलियों का तथा द्वादश भाव से दोनों पैरों का विचार किया जाता है । जिस भाव में शुभ ग्रह हों, जिस भाव को शुभ ग्रह देखते हों, जिस भाव का स्वामी बलवान् हो उस भाव से सम्बन्धित शरीर का भाग पुष्ट और सुन्दर होता है। यदि किसी भाव का स्वामी निर्बल हो या अशुभ दृष्ट, अशुभ युत हो तो उस भाव से सम्बन्धित शरीर का भाग कृश या रोगयुक्त होता है। प्रत्येक भाव से किसी रोग विशेष का विचार किया जाता है, जिसको अधोलिखित तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है । तद्यथा-

भाव	विचारणीय रोग
प्रथमभाव	सिर-त्वक्-उन्माद-अपस्मार-दुर्मरण-मुख-रक्तचापादि रोग।
द्वितीयभाव	मुख-नेत्र-दन्त-कर्ण-श्वासादि रोग।
तृतीयभाव	कर्ण-बाहु-निमोनिया आदि रोग।
चतुर्थभाव	जल से मृत्यु, वाहनादि से अघात, हृदयविकार- स्तनविकार- आत्मघातादि रोगों का विचार।
पंचमभाव	मन्त्र-तन्त्र-कृत्रिम अभिचार प्रयोग जनित रोग, गर्भकोषविकार, उदरविकार-जलोदर-यकृतविचार-मधुमेय-पाण्डुरोग- अमाशयगतव्रण- गर्भपातादि रोगों का विचार।
षष्ठभाव	अतिसार-अग्निमाद-राजयक्ष्मा-सन्निपात-व्रणादि रोग।
सप्तमभाव	गुप्ताङ्गगरोग-मूत्ररोग-प्रमेह-स्त्रीरोगादि।

अष्टमभाव	दुर्मरण-तीव्रमरण सूचक रोग, गुदाविकार-अपदंश-विषूचिका-आर्तवदोष-मलव्याधि-वृषणवृद्धि-विविध स्त्रीरोग।
नवमभाव	संधिवात-आमवात-वातरक्तादि रोग।
दशमभाव	संधिवात-वातरक्तादि रोग।
एकादशभाव	मत्स्यगण्डादिरोग।
द्वादशभाव	पुरातनरोग-पक्षघातादि रोग।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

1. वेदों की संख्या छः है।
2. आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है।
3. होम्योपैथी चिकित्सा की एक पद्धति है।
4. सात्विकादि गुणों की संख्या तीन हैं।
5. मेष राशि हृदय का प्रतिनिधित्व करती है।
6. सिंह राशि का स्थान उदर है।
7. मीन राशि का स्थान गुदा भाग है।
8. मेषादि राशियों की संख्या द्वादश हैं।

1.4.1. ग्रह तथा विविध रोगों के योग

"व्याधिना को न पीडितः" इस उक्ति के अनुसार इस संसार में ऐसा कौन है, जो अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में रोग से पीडित न हो। रोग के समान इस संसार में कोई भी शत्रु नहीं है, इसलिए कहा जाता है कि"न च व्याधिसमो रिपु" और रोग से पीडित व्यक्ति का परममित्र औषधि ही है। हमारे ऋषि-मुनियों ने आध्यात्मिक साधना के लिए प्रथम सीढी शरीर को ही स्वीकार किया है।"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्" इस उक्ति को पहला स्थान प्राप्त है। धार्मिक क्रियायों के सम्पादन के लिए स्वस्थ मन की आवश्यकता होती है। शरीर यदि रोग मुक्त होगा तभी मनुष्य के मन में शुद्ध विचारों की उत्पति होगी। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा का निवास होता है। शरीर तभी स्वस्थ होगा जब कोई रोग नहीं होगा। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार व्यक्ति के जीवन में भविष्य में घटित होने वाली समस्त शुभाशुभ घटनाओं के विषय में जाना जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति रोग से ग्रसित हो तो निश्चित ही उसकी जन्मकुण्डली में जो ग्रह षष्ठ भाव-अष्टम भाव तथा द्वादश भाव में हो, वे ग्रह रोग के कारण बनते है। इसी प्रकार से षष्ठ भाव-अष्टम भाव तथा द्वादश भाव के स्वामियोंके साथ जो ग्रह सम्बन्ध करते हो, वे भी विविध रोगों के कारक होते हैं। ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में शरीर में उत्पन्न होने वाले अनेक

प्रकार के रोगों के विविध योगों का वर्णन प्राप्त होता है। उनमें से रोगों के कुछ योग निम्नलिखित हैं-

- यदि चन्द्र और सूर्य द्वितीय या द्वादशभाव में हों और उनको मंगल और शनि देखते हों तो नेत्र रोग होता है।
- यदि तृतीय और एकादशभाव में स्थित बृहस्पति को मंगल या शनि दृष्टि या युतिसम्बन्ध हो तो कान का रोग होता है।
- सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु इनमें से कोई भी ग्रह पंचम में हो तो उदर रोग होता है।
- शुक्र यदि सप्तम या अष्टम भाव में हो तो वीर्य सम्बन्धी प्रमेहादि या मूत्ररोग करता है।
- यदि षष्ठेश या अष्टमेश सप्तम में हो या षष्ठेश अष्टम में हो तो गुदा रोग होता है।
- यदि षष्ठ या अष्टम भाव में सूर्य हो तो ज्वर होता है।
- यदि षष्ठ या अष्टम भाव में मंगल या केतु हों तो व्रण होता है।
- यदि षष्ठ या अष्टम भाव में शुक्र हो तो जन्नेद्रिय प्रदेश में रोग होता है।
- यदि चन्द्र लग्न से षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तथापाप ग्रहों से देखा जाता हो और शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो मृत्यु तुल्य कष्ट होता है।
- यदि क्षीण चन्द्र पाप ग्रहों के साथ हो और जल राशि में षष्ठ या अष्टम भाव में हो तो क्षय रोग होता है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार व्यक्ति के शरीर पर सूर्यादि नवग्रहों का शुभाशुभ प्रभाव पडता है। प्रत्येक ग्रह शरीर के किसी न किसी अंग का प्रतिनिधित्व करता है और प्रत्येक ग्रह किसी न किसी रोग का कारक भी होता है। अतः मानव के शरीर विविध ग्रहों के पाप प्रभाव के कारण विविध प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है। अब सूर्यादि ग्रहों के अशुभ प्रभाव के कारण होने वाले विविध रोगों के विषय में चर्चा की जाएगी-

सूर्य-

यह अग्नि तत्त्व की प्रधानता वाला तथा मध्यम कद का ग्रह है। यह पुरुषों के दायें तथा स्त्रियों के वाम अङ्गों का प्रतिनिधित्व करता है। यह त्रिदोषों मेंपित्त का कारक है अतः पित्त से सम्बन्धित रोगों का विचार सूर्य से किया जाता है। मनुष्य के शरीर में यह नेत्र,आयु , अस्थि, शिर , हृदय , प्राणशक्ति , मेदा तथा रक्त से सम्बन्धित है। सूर्य प्रकाश का कारक है इसकी बलहीनता के कारण नेत्र से सम्बन्धित रोग उत्पन्न

होते हैं। इसके बली होने पर अस्थियां मजबूत होती है तथा शरीर सुदृढ होता है। सूर्य यदि जन्मकालिक ग्रहस्थिति में रोगकारक हो तो मनुष्य को ज्वर, अस्थिरोग,क्षयरोग,पित्तरोग,नेत्ररोग,शिरोरोग,हृदयरोग,उष्णवात, मूर्च्छा, रक्तस्राव, अपस्मार, रक्तविकार, चर्मरोग और अग्नि-अस्त्र के द्वारा घातादि के कारण कष्ट प्राप्त होता है। यथोक्तम्-

पित्तोष्णज्वरतापदेहतपनापस्मारहृत्क्रोडज-
व्याधीन्वक्ति रविर्दृगार्त्यरिभयं त्वग्दोषमस्थिस्त्रुतिम्।
काष्ठाग्न्यस्त्रविषार्तिदारतनयव्यापचतुष्पाद्भयं
चोरक्ष्मापतिधर्मदेवफणभृद्भूतेशभूतं भयम्।। (फलदीपिका)

चन्द्र-

यह जलतत्त्व की प्रधानता वाला तथा दीर्घ कद वाला ग्रह है। यह पुरुषों के वाम तथा स्त्रियों के दायें अङ्गों तथा मानव शरीर में नेत्र , स्तन, वक्ष , फेफडा, मन , मस्तिष्क , उदर , मूत्राशय , रक्त , रस-धातु, शारीरिक पुष्टि तथा कफ का प्रतिनिधित्व करता है। चन्द्रमा शीतल है। त्रिदोषों में यह कफ का कारक है, अतः कफजनित रोगों का विचार इसी ग्रह से किया जाता है। चन्द्र मन का कारक है अतः इसकी बलहीनता के कारण मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। चन्द्र के अशुभ होने पर बालारिष्ट का भय होता है। इसकी बलहीनता के कारण निमोनिया, एलर्जी, दमा, मुत्रविकार, जलोदर, मुखरोग, नासिकारोग, पाण्डुरोग , क्षयरोग, मन्दाग्नि, अतिसार, स्त्रीसंसर्गजन्य रोग, प्रदर, अपस्मार, वात, श्लेष्मा,श्वासरोग , पिटक, गर्भिणी स्त्रीयों के रोग, शीतज्वर, (मलेरिया,टायफइड) प्रमेह, मधुमेह, रक्तविकार, गर्भकोशविकार, उन्माद, मूर्च्छा, अशक्तता, राजयक्ष्मादि रोगों के कारण मनुष्य को कष्ट की प्राप्ति होती है। यथोक्तम्-

निद्रालस्यकफातिसारपिटकाः शीतज्वरं चन्द्रमाः,
श्रृङ्गयब्जाहतिमग्निमान्द्यमरुचिं योषिद्व्यथाकामिला।
चेत्शान्तिमसृग्विकारमुद्कादभीतिंच बालग्रहाद्,
दुर्गां किन्नरधर्मदेवफणभृद्यक्ष्माच्च भीतिं वदेत्।। (फलदीपिका)

मंगल-

यह अग्नितत्त्व की प्रधानता वाला तथा छोटे कद वाला शुष्क ग्रह है। यह त्रिदोषों में सूर्य की तरह पित्त प्रकृति का ग्रह है, अतःइस ग्रह से पित्तात्मक रोगों का विचार किया जाता है। यह मज्जा का कारक भी है। इसकी अशुभता के कारण रक्त सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं। यह शरीर में कपाल (खोपडी), कान,स्नायु, जननेन्द्रिय,शारीरिक शक्ति,धैर्य, संघर्षशीलता,उत्तेजना का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने पर शरीर मजबूत होता है ,शरीर में प्रतिरोधक शक्ति में वृद्धि होती है तथा व्यक्ति धैर्य एवं साहस

से युक्त होता है। इसकी बलहीनता के कारण ज्वर, आकस्मिक अपघात, रक्तस्राव, रक्तचाप, सूजन, चोट, महामारी , अग्नि-विष-शास्त्रापघात, कुष्ठरोग, व्रण, गुल्मरोग (अलसर), स्नायुविकार, अपस्मार, नेत्रविकार, अङ्गविकृति, उर्ध्वाङ्गरोग (मुख-नेत्र-कर्ण-कण्ठादिरोग), आन्तरिकव्रण,दुर्घटनाजन्य रोग, गुप्त रोग आदि रोग तथा वे रोग-जिनमें शल्य-क्रिया होती है- ऐसे रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है। यथोक्तम्-

तृष्णासृक्कोपपित्तज्वरमनलविषास्त्रार्तिकुष्ठाक्षिरोगान्,
गुल्मापस्मारमज्जाविहतिपरुषतापामिकादेहभङगान्।
भूपारिस्तेनपीडां सहजसुतसुहृद्वैरियुद्धं विधत्ते,
रक्षोगन्धर्वघोरग्रहभयमवनीसूनुरूर्ध्वाङ्गरोगम्।। (फलदीपिका)

बुध-

यह पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता वाला तथा सामान्य कद वाला जलीय ग्रह है। यह वाणी का कारक है अतः इसकी अशुभता के कारण वाणी से सम्बन्धित विकार उत्पन्न होते हैं। इसमें वात-पित्त-कफादि त्रिदोषों की प्रधानता होती है। इसे त्वच्चा का कारक भी माना गया है इसकी अशुभता के कारण त्वच्चा के रोग भी होते हैं। यह जिह्वा, वाणी,स्वरचक्र, श्वासनली, मस्तिष्क, मज्जातन्तु,केश,हाथ का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बलवान होने पर मस्तिष्क सन्तुलित एवं विकसित, व्यक्तित्व आकर्षक एवं सम्प्रेषण-कला प्रभावोत्पादक होती है।इसकी बलहीनता के कारण मूर्च्छा,हिस्टीरिया, मनोविकार, भ्रान्ति, तर्कशक्ति का अभाव,चक्कर आना, तनाव, निराशा,न्यूमोनिया,विषमज्वर,टाइफाइड,पाण्डु,संग्रहणी,शूल,मन्दाग्नि,हकलाहट,उदर विकार,कुष्ठ रोग,नासा रोग एवं स्नायु रोगों के कारण व्यक्ति को कष्ट तथा पीडा का अनुभव करना पडता है। यथोक्तम्-

भ्रान्तिं दुर्वचनं दृगामयगलघ्राणोत्थरोगं ज्वरं,

पित्तश्लेष्मसमीरजं विषमपि त्वग्दोषपाण्ड्वामयान्।

दुःस्वप्नं च विचर्चिकाग्निपतिते पारुष्यबन्धश्रमान्,

गन्धर्वक्षितिहर्म्यवाहिभिरपि ज्ञो वक्ति पीडां ग्रहैः।। (फलदीपिका)

गुरु-

यह आकाश तत्त्व की प्रधानता वाला तथा मध्यम कद वाला ग्रह है। गुरु बुद्धि का कारक है अतः इसकी अशुभता के कारण बुद्धिहीनता के विकार उत्पन्न होते हैं। त्रिदोषों में बृहस्पति की कफ प्रकृति होने के कारण यह कफजनित रोग उत्पन्न करता है।

शरीर में यह ग्रह चर्बी, वीर्य, उदर,यकृत, रक्तधमनी, त्रिदोष, एवं कफ का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने पर शरीर पुष्ट होता है, विचार शक्ति तीव्र होती है। मानसिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है तथा व्यक्ति सम्पूर्ण मनोयोग से अपने दायित्वों का निर्वाह करता है। इसकी बलहीनता के कारण मूत्रविकार, वीर्य विकार, मधुमेह, प्रमेह, प्रदर, गुप्त रोग, मादक द्रव्यों के सेवन से होने वाले रोग, विषजन्य रोग, उपदंश, कफ विकार, पाण्डुरोग, गुल्मरोग, अपचन, यकृतविकार, उदरविकार, दन्तरोग, वायुविकार, कर्णरोग, रक्तचापादि रोगों का भी विचार किया जाता है। यथोक्तम्-

गुल्मान्त्रज्वरशोकमोहकफजान् श्रोत्रार्तिमोहामयान्,

देवस्थाननिधिप्रपीडनमहीदेवेशशापोद्भवम्।

रोगं किन्नरयक्षदेवफणभृद्विद्याधराद्युद्भवम्,

जीवः सूचयति स्वयं वुधगुरूत्कृष्टापचारोद्भवम्।। (फलदीपिका)

शुक्र-

यह जलतत्त्व की प्रधानता वाला तथा मध्यम कद का ग्रह है। शुक्र वीर्य का कारक है अतः इसकी अशुभता के कारणवीर्यविकार उत्पन्न होते हैं। त्रिदोषों में इसकी वातप्रकृति होने के कारण यह वातरोगों का कारक हैं। शरीर में यह ग्रह जननेन्द्रिय,शुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक, रस, गर्भाशय एवं संवेग शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है ।इसके बली होने पर शरीर सुडौल, व्यक्तित्व आकर्षक, मन-मस्तिष्क में चुस्ती एवं वीर्य पुष्ट होता है । शुक्र की बलहीनता के कारण वीर्यविकार, मूत्रविकार, स्त्रीरोग,प्रदर,गुप्तरोग, स्त्रीसंसर्गजन्य रोग, शीघ्रपतन, कफ-वायु विकार, गर्भकोशविकार, जननांगविकार, मधुमेह, प्रमेह, नेत्रविकार, पाण्डुरोग, चर्मरोग तथा विषजनितादि रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है। यथोक्तम्-

पाण्डुश्लेषममरुत्प्रकोपनयनव्यापत्प्रमेहामयान्,

गुह्यस्यामयमूत्रकृच्छ्रमदनव्यापत्तिशुक्लस्रुतिम्।

वारस्त्रीकृतदेहकान्तिविहितंशोषामयं योगिनी-

यक्षीमातृगणाद्भयं प्रियसुहृद्भङ्गं सितः सूचयेत्।। (फलदीपिका)

शनि-

यह वायुतत्त्व की प्रधानता वाला तथा लम्बे कद का शुष्क ग्रह है। शनि स्नायु का कारक है अतः इसकी अशुभता के कारण स्नायु सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं।

त्रिदोषों में यह वात प्रधान होने के कारण वातजनितरोगों का कारक हैं। मानव शरीर में अङ्ग सन्धियां, पैर, घुटने,वात संस्थान,स्नायुमण्डल, मज्जा तथा क्रियाशक्ति का प्रतिनिधित्व करता है ।इसके बलवान होने पर स्नायुमण्डल पुष्ट तथा कद अच्छा होता है। इसकी बलहीनता के कारण वायुविकार, स्नायुविकार, गठिया, सन्धिवात, जोडों में दर्द, पक्षाघात, कुक्षिरोग, वातरक्त, खांसी,दमा, अङ्गभङ्ग,असन्तोष,उन्माद, अपचन, श्वास-कर्ण-दन्त-अस्थिविकार, एवं निराशाजन्य मानसिक रोगों तथा दीर्घकाल तक रहने वाले रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है। यथोक्तम्-

वातश्लेष्मविकारपादविहितं चापत्तितन्द्राश्रमान्,

भ्रातिं कुक्षिरुगन्तरुष्णभृतकध्वंसं च पार्श्वाहतिम्।

भार्यापुत्रविपत्तिमङ्गविहतिं हृत्तापमर्कात्मजो,

वृक्षाश्मक्षतिमाह कश्मलगरगैः पीडां पिशाचादिभिः।।(फलदीपिका)

राहु-

यह वायु तत्त्व की प्रधानता वाला तथा मध्यम कद का ग्रह है। राहु के कारण आकस्मिक रोगों की उत्पत्ति होती है। त्रिदोषों में यह वात प्रधान होने के कारण वातजनित रोगों का कारक है। यह शरीर के मस्तिष्क,रक्त, त्वचा एवं वात का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने के कारण शरीर में फुर्ती, ताजगी एवं चैतन्यता बनी रहती है। राहु की अशुभता के कारण मनोविकार, चेचक,कृमि,मिरगी,सर्पदंश,पशुओं से चोट,कुष्ठरोग, गैस, कैंसर,मूर्च्छा, अपस्मार, क्षुधा, चेचक, कर्करोग, सांप-विच्छु-विडाल-शुनक-सिंह-व्याघ्र आदि प्राणियों से दंश का भय, भूत-प्रेत आदि से होने वाले रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है।

केतु-

यह वायुतत्त्व की प्रधानता वाला तथा छोटे कद का ग्रह है ।केतु भीराहु की तरह आकस्मिक रोगों को उत्पन्न करता है। त्रिदोषों में यह भी वात प्रधान है अतः वात जनित रोगों की उत्पत्ति करता है।शरीर में यह वात,रक्त तथा चर्म का विशेष रूप से प्रतिनिधित्व करता है। इसके बलवान होने पर शरीर में श्रम-शक्ति,संघर्षशक्ति,प्रतिरोधशक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है। केतु की अशुभता के कारणचर्मरोग, वातरोग, आलस्य, स्नायुविकार, व्रण, अपघात, उदरविकार,कमजोरी,चोट,घाव,चेचक,एलर्जी आदि रोगों के कारण कष्ट तथा पीडा का सामना करना पडता है। यथोक्तम्-

स्वर्भानुर्हृदि तापकुष्ठविमतिव्याधिं विषं कृत्रिमं,

पादार्तिं च पिशाचपन्नगभयं भार्यातनूजापदम्।

ब्रह्मक्षत्रविरोधशत्रुजभयं केतुस्तु संसूचयेत्,

प्रेतोत्थं च भयं विषं च गुलिको देहार्तिमाशौचजम्।।(फलदीपिका)

अभ्यास प्रश्न-2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. वेदांगों की संख्या............है।
2. ज्योतिष एक...........है।
3. वात, पित्त और कफ तीन............है।
4. नाभि प्रदेश.............राशि का स्थान है।
5. जन्मकुण्डली के...........भाव होते हैं।
6. जन्मकुण्डली के छठे भाव से..........का विचार किया जाता है।
7. सूर्यादि ग्रहों की संख्या...........है।
8. सूर्य..............का कारक है।

1.5. सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय सनातन वाङ्मय के प्राचीन ग्रन्थ हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन वैदिक संहिताओं से सम्बद्ध ब्राह्मणग्रन्थों में वैदिक मन्त्रों की व्याख्या की गई हैं। वैदिक साहित्य में वैदिक संहिता के साथ-साथ ब्राह्मण, आरण्यक,उपनिषद तथा वेदांगों की गणना की गई है । शिक्षा,कल्प , व्याकरण, निरुक्त ,छन्द तथा ज्योतिष छः वेदाङ्ग है । इनमें से ज्योतिषवेदाङ्ग के होरा स्कन्ध के अन्तर्गत मानव को अपने जीवन में प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फल का विवेचन उसकी जन्मकालिक ग्रहस्थिति के आधार पर करने की विधि बताई गई है ।ज्योतिषशास्त्र के विविध आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जन्मकालिक ग्रहस्थिति के आधार पर किसी जातक के भविष्यफल कथन के सिद्धान्तों का वर्णन किया है, जिससे हम किसी मनुष्य को अपने जीवन में कब और किन रोगों से कष्ट का सामना करना पडेगा, यह ज्ञात कर सकते हैं। प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि प्रत्येक राशि और भाव शरीर के किसी न किसी अङ्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। सूर्यादि नव ग्रह भी किसी रोगविशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। किसी भी जातक के जन्म के समय जन्मकुण्डली में देख कर यह जाना जा सकता है कि कौन से भाव,राशि और ग्रह रोगकारक है। यह भी जाना जा सकता है कि जातक को इन रोगकारक ग्रहों के कारण

किस रोग का सामना करना पडेगा तथा उस रोग के कारण किस समय उसकों पीडा का अनुभव करना पडेगा। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन से सम्भावित रोगों तथा उनके सम्भावित काल को जान जा सकता है ।

1.6. पारिभाषिक शब्दावली

1. आयुर्वेद-आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है , इसमें विविध प्रकार की औषधियों के माध्यम से रोगियों की चिकित्सा की जाती है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार यह देवताओं की चिकित्सा पद्धति है जिसका ज्ञान योग साधना के फलस्वरूप ऋषियों ने प्राप्त किया तथा विविध रोगों के ज्ञान तथा निदान हेतु मानव मात्र को प्रदान किया ।
2. त्रिदोष-वात, पित्त और कफ ये त्रिदोष होते हैं। आयुर्वेद के ग्रन्थ तीन दोषों के असंतुलन को रोग का कारण मानते हैं।
3. अपस्मार-यह एक तंत्रिकातंत्रीय विकार (न्यूरोलॉजिकल डिसॉर्डर) है जिसमें व्यक्ति को बार-बार दौरे पडते हैं। इसे मिर्गी के नाम से जाना जाता है। यह मस्तिष्क में होने वाला रोग है।
4. राजयक्ष्मा-यह एक प्रकार की घातक और संक्रामक रोग है जोकि फेफडों में होती है।इसके अन्य नाम हैं- यक्ष्मा, तपेदिक, क्षयरोग, टी.वी.।
5. सन्निपात-यह एक प्रकार का ज्वर होता है जिसका आरम्भ अचानक होता है। इसमें सिरदर्द, सर्दी लगना और शरीर में पीडा होती है।
6. वातरक्त-यह रोग रक्त में यूरिक अम्ल की मात्रा वढ जाने के कारण होता है। इसे गाउट (Gaut) भी कहते हैं।

1.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास-1 की उत्तरमाला-

1. असत्य।
2. सत्य।
3. सत्य।
4. सत्य।
5. असत्य।
6. सत्य।
7. असत्य।
8. सत्य।

अभ्यास-2 की उत्तरमाला-

1. छः।
2. वेदाङ्ग।
3. दोष।
4. तुला।
5. बारह।
6. रोग।
7. नव।
8. अस्थि।

1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेदों में विज्ञान, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर उ.प्र., प्रथम संस्करण 2000
2. बृहज्जातकम्, भट्टोत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999
3. फलदीपिका,पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946
4. लघुजातकम्, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. भावप्रकाश, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

1.9. सहासक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिंह, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003

2.बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्,सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.जातकालंकार,सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

5. भुवनदीपक,डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

1.10. **निबन्धात्मक प्रश्न**

1. वेदों का परिचय देते हुए निबन्ध लिखिए।
2. षड्वेदांगों का नामोल्लेख करते हुए ज्योतिषवेदाङ्ग का परिचय दें।
3. द्वादश भावों से सम्बन्धित शरीराङ्गों का वर्णन कीजिए।
4. विविध ग्रहों से विचारणीय रोगों का परिचय दीजिए।

इकाई - 02 रोगोत्पत्ति का काल निर्धारण

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 रोगोत्पत्ति का परिज्ञान
2.3.1 रोगकारक ग्रहों का निर्धारण
2.3.2 रोगकारक ग्रहों का काल निर्धारण
2.3.3 ग्रहों की दशाएँ
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मानव जीवन नदी की धारा के समान होता है। जिस तरह से नदी की धारा ऊँची- नीची भूमि को पार करती हुई लगातार आगे बढती है, उसी प्रकार जीवन की धारा सुख-दुःख रूपी जीवन के अनेक संघर्षों को सहते-भोगते आगे बढती रहती है। जीवन का मुख्य उद्देश्य लगातार आगे बढना होता है। इसी में सुख है, आनन्द है। इस परिवर्तन का साक्षी काल होता है। काल सबसे बलवान है, सबका अन्त कर सकता है और दूसरी तरफ वही काल व्यक्ति को अंधकार से प्रकाश में भी ला सकता है। आज मानव ने विज्ञान के बल पर इस सृष्टि के विविध रहस्यों का ज्ञान कर लिया है और बडी से बडी समस्याओं का समाधान कर आज मानव प्रकृति पर भी अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास कर रहा है परन्तु आज भी कालमानव के अधीन नहीं है और यदि ऐसी कोई चमत्कारिक वैज्ञानिक शक्ति होगी, जिससे समय भी मानव के अधीन हो सकता हो, तो ऐसी शक्ति का अविष्कार अभी विज्ञान नहीं कर सका है। समय के चक्र में केवल मनुष्य ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण सौर मण्डल बंधा हुआ है। काल को ही सम्पूर्ण जीवों का अन्तक माना जाता है। यथोक्तम्-"कालः पचति भूतानि" सूर्यसिद्धान्त नामक ग्रन्थ में काल के इसी अन्तक स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि-

लोकानामन्तकृतकालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।

स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते।। (सूर्यसिद्धान्त)

इस ग्रन्थ में काल को दो प्रकार का कहा गया है। एक काल वह काल है जो लोकों का अन्त करने वाला है अर्थात् इस काल के अन्तर्गत प्राणी मात्र का जन्म भी होता है और मृत्यु भी होती है। दूसरा कलनात्मक काल है अर्थात् जिसके द्वारा गणना की जाती है। वह कलनात्मक काल दो प्रकार का है - मूर्त और अमूर्त। जिस काल का अनुभव नहीं किया जा सकता, उसे अमूर्त काल कहते हैं तथा अनुभव योग्य काल मूर्त संज्ञक है।इस प्रकार से सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ में काल की पूर्वोक्त परिभाषा प्राप्त होती है।

इस संसार में हर कार्य अपने निश्चित समय पर ही सम्पन्न होता है। वृक्षों पर फल एक निश्चित काल में ही आते हैं। विविध औषधीय वनस्पति तथा फूल आदि भी एक निश्चित ऋतु में ही आते हैं ,प्रकृति के ही समान मानव भी इसी काल के अधीन है। मानवीय शरीर में रोग सर्वदा ही रहते है , परन्तु उनकी उत्पत्ति भी एक निश्चित काल में ही होती है। इस रोगोत्पत्ति के सम्भावित काल का ज्ञान हमें ज्योतिषशास्त्र में वर्णित ग्रहों की दशाओं, अन्तर्दशाओं, प्रत्यन्तर्दशाओं तथा गोचर के माध्यम से होता है । इन रोगों के सम्भावित काल के ज्ञान हेतु ज्योतिषशास्त्र तथा इन रोगों के शरीर में उत्पत्ति के कारणों के ज्ञान तथा निदान हेतु भारतीय परम्परा में आयुर्वेदशास्त्र हैं। ये दोनों ही शास्त्र

लोककल्याणकारक शास्त्र हैं। शरीर में रोगों की उत्पत्ति त्रिदोषों (वात, पित्त और कफ) के कारण होती है।शरीर में इन त्रिदोषों की साम्यता ही उत्तम स्वास्थ्य की परिचायक हैं तथा शरीर में त्रिदोषों की विषमता ही रोग का कारण होती है। वात , पित्त तथा कफ में से जिसकी भी विषमता शरीर में होती है उससे ही सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं। यदि इसकाज्योतिषीय दृष्टि से विचार किया जायें तो आपकोज्ञात होगा कि किसी जातक के जनमाङ्ग में स्थित रोगकारक ग्रहों की दशा और अन्तर्दशा में उन ग्रहों से सम्बन्धित विविध रोगों की उत्पत्ति होती है।ग्रहों का रोग कारकत्व एवं उनका शरीर के विभिन्न अंगों पर प्रभाव का विस्तृत ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक प्राप्त होता है। प्रत्येक ग्रह मेंकिसी न किसी रोग विशेष को उत्पन्न करने वाले गुण निहित होते हैं। कौन सा ग्रह किस रोग को उत्पन्न करता है ? अथवा यह कहें कि कौन सा ग्रह किस रोग का कारक है? इसको जानना अत्यावश्यक है, ताकि किसी व्यक्ति को अपने जीवन के किस काल में कौन सी व्याधि होने की संभावना है ?इसका ज्ञान सही समय पर हो सके तथा उसका उचित उपचार किया जा सके।

2.2 उदेश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- रोगोत्पत्तिके सम्भावित काल को जान सकेंगे।
- त्रिदोषों के प्रतिनिधित्व करने वाले ग्रहों को जानेंगे।
- रोगकारक ग्रहों का निर्धारण कर पाएगें।
- रोगकारक ग्रहों की कालनिर्धारण प्रविधि को जान सकेंगे।
- ग्रहों की दशाओं और अन्तरदशाओं में सम्भावित रोगों को जान सकेंगे।

2.3 रोगोत्पत्ति का परिज्ञान

यह शरीर इन्द्रिय, मन एवं आत्मा का एक संयोग है। इन तीनों कारकों के स्थूल रूप को ही शरीर कहते हैं, तथा इनके अदृश्य या सूक्ष्म रूप को आयु कहते हैं। आयु या जीवन के इस शास्त्र को आयुर्वेद या "आयुषो वेदः" कहा गया है तो जब आयु की कोई सीमा नहीं तो फिर इस शास्त्र की सीमा कैसी? कहा भी है कि-

"न ह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारम। तस्मादप्रमत्तः अभियोगे अस्मिन्गच्छेत् अमित्रस्यापि वचः यशस्यं आयुष्ये श्रोतव्यमनुविधाताव्यञ्च।"

आयुर्वेद मनुष्य को अपनी सम्पूर्ण आयु का भोग निरोगी रहते हुए करने के विविध उपायों की चर्चा करता है। एक अन्य शास्त्र, जिसको ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है ,

उसका सम्बन्ध ग्रहों से है। जिस प्रकार से घने अन्धकार में प्रकाश ही हमें विविध पदार्थों के दर्शन करवाता है,उसी प्रकार से ज्योतिषशास्त्र भी ज्योति के समान हमारे जीवन में आने वाली विविध बाधाओं के सम्भावित काल का ज्ञान करवाता है। मानव को अपने जीवन के किस काल में किस रोग से पीडित होना पडेगा, इसका ज्ञान भी ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से ही हो सकता है। ज्योति के इस शास्त्र को "ज्योतिषशास्त्र " कहते है।रोगों के निवारण में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने बहुत से असाध्य रोगों के निवारण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका सिद्ध की है , परन्तु फिर भी आधुनिक जीवन शैली के कारण उत्पन्न हुए अनेक रोग आधुनिक चिकित्साविज्ञान के अत्याधुनिक तकनीकों से युक्त होने पर आज भी असाध्य हैं। प्रत्येक शास्त्र की अपनी कुछ सीमाएं होती है । आधुनिक चिकित्साशास्त्र,आयुर्वेदशास्त्र अथवा ज्योतिषशास्त्र की भी अपनी सीमाएं है , परन्तु इन तीनों ही विधाओं का मुख्य उद्देश्य मानव के जीवन को रोगमुक्त बनाना है। आधुनिक चिकित्साविज्ञान जहां रोग के उत्पन्न होने के बाद उस रोग की रोकथाम हेतु चिकित्सकीय उपचार में प्रवृत्त होता है ,वहीं आयुर्वेद उस रोग के उत्पन्न होने से पूर्व ही ऐसी दिनचर्या और आहार-विहार की बात करता है,जिससे मनुष्य को उस रोग से पीडित ही न होना पडे तथा ज्योतिषशास्त्र रोग के उत्पन्न होने से पूर्व ही उस रोग के उत्पन्न होने के सम्भावित काल के विषय में अपना मत प्रस्तुत करता है। यदि रोगों के ज्ञान तथा निदान में इन तीनों शास्त्रों का समुचित प्रयोग किया जायें तो निश्चित रूप से विविध व्याधियों के निवारण में मानव जाति को ओर अधिक सफलताओं की प्राप्ति हो सकती है ।विश्व की सबसे प्राचीन भारतीय सभ्यता में चिर काल से ज्योतिष तथा आयुर्वेद ही दो ऐसे शास्त्र है, जिन्होंने मानव मात्र के स्वास्थ्य की चिन्ता की है। ज्योतिष के तीक्ष्ण एवं आलोकित प्रकाश मेंसमग्रप्रभावोत्पादक कारकों को इस त्रिगुणात्मक संरचना के संपर्क में आयुर्वेद के आचार्यों ने देखा तथा उन सबको अपने अध्ययन विस्तार से आवृत्त कर दिया।आधुनिक युग में जहां मानव शरीर में होने वाले रोगों के कारणों को जानने के लिए आधुनिक उपकरणों की सहायता ली जाती है, वहीं वैदिक काल में वैद्य और ज्योतिषी की सहायता से रोगों के कारणों की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर उपचार किया जाता था और यह भी जान लिया जाता था कि उपचार से सफलता प्राप्त होगी अथवा नहीं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रोग की उत्पत्ति होना ग्रह नक्षत्र तथा राशियों पर निर्भर करता है क्योंकि जन्मकुण्डली उन आकाशीय पिण्डों का चित्रण है जो जन्म के समय जातक के शरीर को प्रभावित करते हैं। इसमें जातक के समस्त जीवन की रूपरेखा निश्चित होजाती है और ग्रह नक्षत्रों की प्रतिदिन की परिवर्तनशील स्थिति के कारण जातक का शरीर प्रभावित होकर रोगी अथवा स्वस्थ होता है। ज्योतिष का आधार ग्रह, नक्षत्र, राशि एवं काल पुरुष की कुण्डली के द्वादश भाव हैं। प्रत्येक ग्रह, नक्षत्र, राशि या भाव मानव शरीर के किसी न किसी अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। रोग

भी उसी अंग से सम्बन्धित होगा जिस अंग का प्रतिनिधित्व रोगकारक ग्रह, राशि या भाव कर रहा होता है। आयुर्वेद का मूल आधार त्रिदोष हैं। जब इन तीन विकारों में असंतुलन आ जाता है, तब मानव रोगी होता है। वैद्य नाड़ी देखकर इन तीनों विकारों के अनुपात का अध्ययन कर रोग का उपचार करते हैं। ज्योतिषीय दृष्टि से इन तीनों विकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले ग्रह इस प्रकार हैं - सूर्य पित्त, चंद्रकफ और वात, मंगल पित्त, बुध तीनों विकार, गुरु कफ, शुक्र वात और कफ, शनि वात, राहु-केतु वात और कफ।

जैसा कि आपने जाना कि जन्मकुण्डली में जो ग्रह रोगकारक होगा, उसी ग्रह से सम्बन्धित विकार उत्पन्न होता है। रोग का कारण विकार हैं इसलिए यदि इन विकारों से सम्बन्धित ग्रह का उपचार किया जाए तो रोगी के स्वास्थ्य में अवश्य ही सुधार हो सकता है। जन्मकुण्डली में षष्ठस्थान रोग का स्थान है , इसलिए षष्ठेश कोरोगेश भी कहते हैं। षष्ठ भाव काल पुरुष का पेट, आंतें (बड़ी/छोटी) और गुर्दे कहलाते हैं। इससे सीधा अभिप्राय यही है कि जातक का खाना पीना ही उसके रोग का कारण है क्योंकि जो भी आहार मनुष्य करता है , वह उदर की आंतों से होता हुआ ही बाहर जाता है, यदि वह किसी कारण पेट से बाहर पूरी तरह नहीं जा पाए तो मल आंतों में रह जाता है और सढ़ने लगता है , जिसके कारण विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इसीलिए षष्ठ भाव और षष्ठेश को रोग का कारक माना जाता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण लग्न अर्थात् प्रथम भाव है । प्रथम भाव जातक के सम्पूर्ण शरीर का प्रतिनिधित्व करता है ।यदि किन्हीं कारणों से लग्न का स्वामी पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो जातक को जीवन भर रोगों का सामना करना पड़ेगा। जन्मकुण्डली में रोगों का विश्लेषण करते समय लग्न और लग्नेश,षष्ठ भाव और षष्ठेशकी भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है । लग्न क्या है? इसमें कौन सी राशि है? क्या नक्षत्र है? वह किस अंग और रोग का प्रतिनिधित्व करता है।षष्ठ भाव में कौन सी राशिहै? नक्षत्र क्या है और वह किस अंग के रोग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन सभी की पूर्ण स्थितियों को जानकर ही रोग का निर्धारण किया जाता है।

2.3.1 रोगकारक ग्रहों का निर्धारण

ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से किसी व्यक्ति के भविष्य में घटित होने वालीशुभाशुभ घटनाओं के विषय में विचार किया जाता है ।वैदिक पृष्ठभूमि पर आधारित अन्य शास्त्रों की ही तरह ज्योतिषशास्त्र का मुख्य उद्देश्य भी इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार है । किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन काल में सुख ही इष्ट होता है तथा दुख अनिष्ट होता है । जन्मकुण्डली के द्वादश भाव विविध प्रकार के पदार्थों का प्रतिनिधित्व करते है । इन द्वादश भावों में से शुभ भावों के बली होने पर व्यक्ति के जीवन में शुभत्व की वृद्धि होती है तथा अशुभ

भावों के निर्बल होने पर अशुभत्व की हानि होती है। जन्मकुण्डली में स्थित ग्रहस्थिति जातक के इसी शुभाशुभत्व की प्राप्ति के काल की सूचक होती है ।सूर्यादि ग्रहों की जन्मकालिक स्थितियों का प्रभाव हमारे शरीर पर पडता है। ग्रह हमारे शरीर के किसी न किसीअङ्ग का प्रतिनिधित्व करतेहैं। इसके अतिरिक्त शरीर के किसी न किसी तत्व को भी प्रभावित करते हैं। अगर कोई ग्रह निर्बल हो तो उस ग्रह से सम्बन्धित तत्व तथा शरीर के अङ्ग में भी निर्बलता आ जाती है। ग्रह के निर्बल होने पर उससे सम्बन्धित तत्व में विकार उत्पन्न हो जाता है और शरीर में समस्या उत्पन्न हो जाती है। शरीर में उत्पन्न हुए विकार का कारण कोई न कोई ग्रह होता है। ग्रहों के स्वभाव को समझकर हम अपनी शारीरिक समस्याओं से निदान पा सकते हैं। जन्मकुण्डली के प्रथम भाव से शरीर का विचार होता है। द्वितीय भाव व्यक्ति के खान-पान का सूचक है। तृतीय भाव से व्यक्ति के प्रारंभिक रोगों का विचार किया जाता है।कुण्डली के षष्ठ भाव से व्यक्ति के स्वास्थ्य का, रोग उत्पत्ति का विचार किया जाता है। षष्ठ भाव का कारक ग्रह मंगल, शनि हैं। अष्टम भाव का कारक ग्रह शनि है। इस भाव से आयु, दुर्घटना, मृत्यु आदि का विचार किया जाता है। ज्योतिष के सिद्धान्त "भावात्भावम् " के अनुसार षष्ठ भाव रोग का हैऔर षष्ठ से षष्ठएकादश भाव होता है। षष्ठ से षष्ठएकादश भाव होने के कारण इससे भी रोग का ही विचार किया जाता है। षष्ठ, अष्टम् एवं द्वादश भाव के स्वामी जिस भाव में होते हैं, उससे सम्बन्धित अंग में रोग तथा पीड़ा होती है। किसी भी भाव का स्वामी षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव में स्थित हो तो भी उस भाव से सम्बन्धित अंगों में पीड़ा होती है। जैसा कि आप जानते है कि द्वादश लग्न होते है और प्रत्येक जातक का जन्म इनमें से किसी न किसी लग्न में ही होता है ।प्रत्येक लग्न में कुछ ग्रह रोगकारक होते है। प्रत्येक लग्न में कौन-कौन सा ग्रह प्रमुख रूप से रोगकारक होता है, इसका वर्णन किया जा रहा है -

मेष लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में कन्या राशि होती है। इस अवस्था में वुध षष्ठेश हुआ और रोग कारक ग्रह बना। अष्टम भाव में वृश्चिक राशि के होने से मंगल अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ। अन्त में मीन राशि के द्वादश भाव में होने से गुरु भी रोग कारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में वुध के तृतीयेश और शनि एकादशेश होनें से ये भी रोग कारक ग्रह हुए।

वृष लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में तुला राशि होती है, इस अवस्था में शुक्र षष्ठेश हुआ और रोगकारक ग्रह बना। अष्टम भाव में धनु राशि के होने से गुरु अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ। मेष राशि के द्वादश भाव में होने से मंगल भी रोगकारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में चन्द्र के तृतीयेश और गुरु एकादशेश होनें से ये भी रोग कारक ग्रह हुए।

मिथुन लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में वृश्चिक राशि आती है, इस अवस्था में मंगल षष्ठेश हुआ और रोग कारक ग्रह बना। अष्टम भाव में मकर राशि के होने से शनि अष्टमेश होकर रोग कारक ग्रह हुआ। वृष राशि के द्वादश भाव में होने से शुक्र भी रोग कारक ग्रह हुआ। इस लग्न में सूर्य के तृतीयेश और मंगल एकादशेश होनें से रोगकारक ग्रह हुए।

कर्क लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में धनु राशि आती है, इस अवस्था में गुरु षष्ठेश हुआ और रोग कारक ग्रह बना। अष्टम भाव में कुम्भ राशि के होने से शनि अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ। मिथुन राशि के द्वादश भाव में होने से बुध भी रोगकारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में बुध के तृतीयेश और शुक्र एकादशेश होनें से रोगकारक ग्रह हुए।

सिंह लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में मकर राशि आती है, इस अवस्था में शनि षष्ठेश होकर रोगकारक ग्रह बना। अष्टम भाव में मीन राशि के होने से गुरु अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ। कर्क राशि के द्वादशभाव में होने से चन्द्रमा भी रोगकारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में शुक्र के तृतीयेश और बुध एकादशेश होनें से रोगकारक ग्रह हुए।

कन्या लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में कुम्भ राशि आती है, इस अवस्था में शनि षष्ठेश होकर रोगकारक ग्रह बना। अष्टम भाव में मेष राशि के होने से मंगल अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ। सिंह राशि के द्वादश भाव में होने से सूर्य भी रोगकारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में मंगल के तृतीयेश और चन्द्र एकादशेश होनें से रोगकारक ग्रह हुए।

तुला लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में मीन राशि आती है, इस अवस्था में गुरु षष्ठेश होकर रोगकारक ग्रह बना। अष्टम भाव में वृष राशि के होने से शुक्र अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ। कन्या राशि के द्वादश भाव में होने से बुध भी रोग कारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में गुरु के तृतीयेश और सूर्य एकादशेश होनें से रोगकारक ग्रह हुए।

वृश्चिक लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में मेष राशि आती है, इस अवस्था में मंगल षष्ठेश होकर रोगकारक ग्रह बना। अष्टम भाव में मिथुन राशि के होने से बुध अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ। तुला राशि के द्वादश भाव में होने से शुक्र भी रोगकारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में शनि के तृतीयेश और बुध एकादशेश होनें से रोगकारक ग्रह हुए।

धनु लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में वृष राशि आती है,इस अवस्था में शुक्र षष्ठेश होकर रोग कारक ग्रह बना। अष्टम भाव में कर्क राशि के होने से चन्द्र अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ।वृश्चिक राशि के द्वादश भाव में होने से मंगल भी रोगकारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में शनि के तृतीयेश और शुक्र एकादशेश होनें से रोगकारक ग्रह हुए।

मकर लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में मिथुन राशि आती है,इस अवस्था में वुध षष्ठेश होकर रोगकारक ग्रह बना।अष्टम भाव में सिंह राशि के होने से सूर्य अष्टमेश होकर

रोगकारक ग्रह हुआ।धनु राशि के द्वादश भाव में होने से गुरु भी रोगकारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में गुरु के तृतीयेश और मंगल एकादशेश होनें से रोगकारक ग्रह हुए।

कुम्भ लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में कर्क राशि आती है,इस अवस्था में चन्द्रमा षष्ठेश होकर रोगकारक ग्रह बना।अष्टम भाव में कन्या राशि के होने से बुध अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ।मकर राशि के द्वादश भाव में होने से शनि भी रोगकारक ग्रह हुआ।इसी क्रम में मंगल के तृतीयेश और गुरु एकादशेश होनें से रोगकारक ग्रह हुए।

मीन लग्न की कुण्डली में षष्ठ भाव में सिंह राशि आती है,इस अवस्था में सूर्य षष्ठेश होकर रोगकारक ग्रह बना। अष्टम भाव में तुला राशि के होने से शुक्र अष्टमेश होकर रोगकारक ग्रह हुआ।कुम्भ राशि के द्वादश भाव में होने से शनि भी रोगकारक ग्रह हुआ। इसी क्रम में शुक्र के तृतीयेश और शनि एकादशेश होनें से ये भी रोगकारक ग्रह हुए।

2.3.2 रोगकारक ग्रहों का काल निर्धारण

जन्मकुण्डली में दशा-अंतर्दशा और गोचर का विचार करने से रोगोत्पत्ति के काल का निर्धारण होता है । काल निर्धारण से अभिप्राय किसी व्यक्ति को अपने जीवन काल में किस समय किसी रोग से पीडित होने की सम्भावना है – उस काल से है । लग्न का स्वामी और षष्ठ भाव के स्वामी की दशा में जातक को रोग होने की प्रबल संभावना रहती है। यदि लग्न निर्बल है, पापग्रहों से युक्त या दृष्ट है तो जातक को लग्नेश की दशा में रोग होने की सम्भावना होती है। जब गोचर में भी लग्नेश पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट होता है तो उस समय रोग अपनी चरम सीमा पर होता है। गोचर में जब तक लग्न के स्वामी का सम्बन्ध पाप ग्रहों से रहता है उतने समय तक जातक को रोग का सामना करना पड़ता है। इसी तरह षष्ठ भाव के स्वामी की दशा में भी जातक को रोग होने की प्रबल सम्भावना रहती है। इसी प्रकार अन्य रोगकारक भावों के स्वामियों की दशा में भी जातक को रोग होने की सम्भावना होती है। यदि इनके स्वामियों की स्थिति पापयुक्त या पापदृष्ट होगी और गोचर भी प्रतिकूल होगा तो रोग की सर्वाधिक सम्भावना होती है। लग्नेश जब षष्ठ भाव के स्वामी या षष्ठ भाव के नक्षत्र में गोचर करता है तो रोग उत्पन्न होता है। उस रोग की अवधि भी उतनी ही रहती है जितनी गोचर की अवधि होती है। इसके साथ ही दशा - अंतर्दशा के स्वामी का गोचर भी इसी प्रकार द्रष्टव्य है अर्थात् दशा - अंतर्दशा के स्वामी यदि षष्ठ भाव या षष्ठ भाव के नक्षत्र में गोचर करते है तो उस समय में भी रोग होने की सम्भावना होती है और रोग उसी भाव से संबंधित होता है, जिस भाव में ग्रह गोचर कर रहा होता है।मनुष्य के मन, मस्तिष्क और शरीर पर मौसम, ग्रह और नक्षत्रों का प्रभाव लगातार रहता है। कुछ लोग इनसे अधिक प्रभावित होते है तथा कुछ लोगों पर इनका प्रभाव कम पडता है । जिन लोगों की मानसिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ होती है और रोग प्रतिरोधक क्षमता भी अधिक होती है , उन लोगों पर

रोगकारक ग्रहस्थिति के होने पर भी वे ग्रहों से कम प्रभावित होते हैं। इसी के कारण उनका स्वास्थ्य विपरीत ग्रहस्थिति पर भी अच्छा रहता है। गोचरवश जब रोगकारक ग्रह भी विविध भावों में विशेष रूप से लग्नादि भावों में संचार करते है तो उस समय भी रोगोत्पत्ति होती है।यदि षष्ठेश, अष्टमेश एवं द्वादशेश तथा रोगकारक ग्रह अशुभ नक्षत्रों में स्थित हो तो रोग की चिकित्सा निष्फल रहती है और व्यक्ति की रोग के कारण ही मृत्यु हो जाती है।मनुष्य के जीवन में होने वाली समस्त शुभाशुभ घटनाओं की सूचना जन्मकालिक तथा गोचरकालिक ग्रहस्थिति से ही प्राप्त होती है। जन्मकुण्डली के अनुसार यदि मनुष्य पर किसी क्रूर ग्रह की दशा चल रही हो तो मनुष्य के जीवन में भारी संकट आने की प्रबल सम्भावना होती है। इसी प्रकार सभी लग्नों में षष्ठ,अष्टम्और द्वादशभावों के स्वामियों की महादशाओं या अन्तर्दशाओं में लग्नेश की अन्तर्दशा अथवा प्रत्यन्तर्दशा से भी रोग होने की सम्भावना होती है।षष्ठ,अष्टम्और द्वादश भावों में स्थित ग्रह भी अपनी महादशाओं या अन्तर्दशाओं में विविध रोगों को जन्म देते हैं। जब इन रोगकारक ग्रहों के साथ मारक ग्रहों का सम्बन्ध भी हो जाता है तो उत्पन्न हुये रोग के कारण व्यक्ति की मृत्यु होने की सम्भावनाएं भी अधिक होती है। मारक भावों अर्थात् द्वितीय- सप्तम भावों तथाअष्टम औरद्वादशभावों में स्थित होकर ग्रह अपनी दशा या अन्तर्दशा में रोगकारक हो जाता है और अशुभफल करता हुआ रोगों की उत्पत्ति करता है। इसी तरह इन भावों के स्वामी ग्रहों की स्थिति अर्थात् इन भावों के भावेश किस भाव में, किस राशि में तथा किस नक्षत्र में है ?यह सब विश्लेषण करने के उपरांत ही आप किसी जातक को भविष्य में प्राप्त होने वाले विविध रोगों के सम्बन्ध में निर्णय देने में सक्षम हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर में रोगोत्पत्ति के विविध ग्रहयोगों के लिए लग्न एवं लग्नेश की स्थिति का आकलन करने पर लग्न-लग्नेश की अशुभ स्थिति होने पर, चंद्रमा के क्षीण अथवा निर्बल होनेपर, चन्द्रलग्न में पाप ग्रह होंने पर तथालग्न, चन्द्रमा एवं सूर्य तीनों पर ही पाप अथवा अशुभ ग्रहों का प्रभाव होने से तथा जन्माङ्ग में पापग्रहों का बलशुभ ग्रहों की अपेक्षा अधिक होने पर भी जातक के रोगी होने की सम्भावना अधिक होती है।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

1. काल के दो प्रकार कहे हैं।
2. अमूर्त काल दृष्टकाल होता है।
3. आयुर्वेद का सम्बन्ध संगीतकला से है।
4. ज्योतिषग्रहों से सम्बन्धित शास्त्र है।
5. चंद्र पित्त का कारक ग्रह है।
6. सूर्य वातकारक है।

7. मेष लग्न की कुंडली में षष्ठेश शुक्र होता है।
8. वृष लग्न की कुंडली में द्वादश भाव का स्वामी शनि ग्रह है।

2.3.3 ग्रहों की दशाएँ-

ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों कीदशाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।शुभाशुभ ग्रहों के दशाकाल में व्यक्ति को अपने जीवन में विविध प्रकार के शुभाशुभ फलों का भोग करना पडता है अथवा ऐसा भी कह सकते है कि विविध ग्रहों की दशाएं व्यक्ति को अपने जीवन में प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फल की सूचक होती हैं। दशाओं के गणना हेतु नक्षत्रों पर आधारित दशा पद्धतियाँ अधिक लोकप्रिय हैं। वेदाँग ज्योतिष में कहा गया है कि चंद्रमा जिस नक्षत्र में जिस दिन होते हैं वह उस दिन का नक्षत्र कहलाता है। उस नक्षत्र का जो स्वामी ग्रह कहा गया है, उसकी दशा जन्म के समय मानी जाती है। क्रमानुसार प्रत्येक नक्षत्र या ग्रह की दशा जीवन में आती रहती है।कौन से ग्रह की दशा जीवन में सबसे पहले होगी इसका निर्धारण जन्मकालिक चंद्रमा जिस नक्षत्र में होता है उस नक्षत्र के स्वामी ग्रह से ज्ञात होती है और जातक पर जन्मनक्षत्राधिपति की दशा सर्वप्रथम आरंभ होती है। दशाओं के कालक्रम में अनेक प्रकार के परिवर्तन देखने को मिलते हैं। ग्रहों के दशा क्रम में सर्वाधिक प्रसिद्ध विंशोत्तरी दशा का क्रम है जिसमें किसी एक ग्रह की महादशा में अन्य सभी ग्रहों की अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्म दशा, प्राण दशा आदि आती हैं। इसमें प्राणदशा सबसे कम अवधि की होती है। महादशा शब्द का अर्थ है वह विशेष समय जिसमें कोई ग्रह अपनी प्रबलतम अवस्था में होता है और कुंडली में अपनी स्थिति के अनुसार मूलत्रिकोण या उच्च के ग्रह की दशा तथा शुभ भावों के स्वामी ग्रहों की दशा शुभ मानी जाती है।ज्योतिष में अष्टोत्तरी, विंशोत्तरी तथा योगिनी महादशाएँ प्रमुख रूप से प्रचलित हैं। इनमें से अष्टोत्तरी का प्रचलन दक्षिण भारत में , विंशोत्तरी का प्रचलन उत्तरभारत में तथा योगिनी दशा का प्रचलन भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक है । अष्टोत्तरी दशा कुल 108 वर्षों की, विंशोत्तरी दशा कुल120 वर्षों की तथा योगिनी दशा कुल 36 वर्षों की होती हैं। इन्हीं में सभी अन्य सभी ग्रहों की अन्तर्दशाओं का समावेश होता है। योगिनी दशा में दशापतियों की संज्ञा ग्रहों पर आधारित न होकर मंगला-पिंगला आदि नाम से होती है ।आजकल विंशोत्तरी महादशा का प्रचलन सर्वाधिक है । इसके अनुसार प्रत्येक ग्रह की दशाओं की अवधि अलग-अलग होती है। वैदिक ज्योतिष में अनेक दशाओं का वर्णन किया गया हैं परन्तु सरल, लोकप्रिय, सटीक एवं सर्वग्राह्य विंशोत्तरी दशा ही है। ग्रहों की महादशा का फलकाल और परिस्थिति को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए। नीचे दी गई तालिका से आप जान पाएंगे कि विंशोत्तरी महादशा में समस्त ग्रहों की दशाएँ कितने वर्षों की होती हैं और विविध नक्षत्रों के दशापति कौन से ग्रह होते है-

विंशोतरी महादशा तालिका

क्र.स.	ग्रह	महादशा	नक्षत्र
01	सूर्य	06 वर्ष	कृतिका, उतराफाल्गुणी, उतराषाढा
02	चन्द्र	10 वर्ष	रोहिणी, हस्त, श्रवण
03	मंगल	07 वर्ष	मृगशिरा, चित्रा, घनिष्ठा
04	राहू	18 वर्ष	आर्द्रा, स्वाति, शतभिषा
05	गुरु	16 वर्ष	पुनर्वसु, विशाखा, पूर्वभाद्रपद
06	शनि	19 वर्ष	पुष्य, अनुराधा, उतराभाद्रपद
07	बुध	17 वर्ष	आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती
08	केतु	07 वर्ष	मघा, मूला, अश्विनी
09	शुक्र	20 वर्ष	पूर्वाफाल्गुणी, पूर्वाषाढा, भरणी

अभ्यास प्रश्न-2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. विंशोतरी महादशा में मघा नक्षत्र के दशापति--------ग्रह है।
2. अष्टोत्तरी दशा के कुल दशा वर्ष------- है।
3. पर्वतीय क्षेत्रों मे--------- दशा का प्रचलन है।
4. दशाओं की गणनापद्धति पर आधारित है। ....
5. सूर्य की महादशावर्ष की होती है। ....
6. शुक्र की महादशावर्ष की होती है। ....

2.4 सारांश

कालाधीनं जगत्सर्वम् अर्थात् यह सारा संसार काल के ही अधीन है। केवल काल ही एक ऐसा तत्त्व है जो किसी के भी अधीन नहीं है। यदि एकबार काल बीत जाए, तो कभी वापिस नहीं आता। यह काल ही है, जो मनुष्य के समस्त कर्मो का साक्षी है। ज्योतिषशास्त्र को कालबोधक शास्त्र कहते है। इस शास्त्र में मनुष्य के जीवन के शुभाशुभ काल के ज्ञान के सम्बन्ध में विचार किया गया है। इस संसार में जितनी भी क्रियाएँ होती हैं वे एक निश्चित समय पर ही होती हैं, समय से पहले कुछ भी नहीं होता है। मनुष्य एक मरणधर्मा प्राणी है। इस नाशवान मानवशरीर में भी समय-समय पर विविध प्रकार की व्याधियां उत्पन्न होती रहती है। इन व्याधियों के काल का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के

माध्यम से ही हो सकता है ।जब इस शरीर में किसी रोग का आरम्भ होता है तब शरीर के एक अथवा अनेक अंगों एवं तंत्रों में अथवा संरचना में समस्याएंदिखाई देने लगती है। यह बदलाव या परिवर्तन रोग के लक्षण दर्शाता हैं। रोग के लक्षण हमें रोगी होने का संकेत देते हैं। कई बार तो इन संकेतों को देखकर योग्य चिकित्सक के परामर्श से मानव उन रोगों को नियन्त्रित करने में सफल भी हो जाता है,परन्तु कई बार ये लक्षण इतनी द्रुतगति से गम्भीर रोग में परिवर्तित हो जाते है कि रोगी को भी कुछ समझ नहीं आता। यदि इन रोगों के उत्पन्न होने के काल का ज्ञान अगर किसी व्यक्ति को पूर्व में ही हो जायें तो निश्चित ही अपने आहार और विहार को नियन्त्रित कर होने वाले रोग से बहुत हद तक व्यक्ति अपने आपको बचा सकता है। आप जानते हैं कि प्रत्येक ग्रह का सम्बन्ध शरीर के किसी न किसी अङ्ग से होता है तथा किसी न किसी तत्त्व तथा धातु से भी होता है। अतः ग्रहों से हमें किसी न किसी रोग के होने का संकेत मिल ही जाता है , जिसके ज्ञान हेतु ज्योतिषशास्त्र में कुण्डली विश्लेषण के विविध सिद्धान्तों का ज्ञान अनिवार्य है। प्रत्येक लग्न में कुछ ग्रह रोगकारक होते है, जिनकी चर्चा प्रस्तुत इकाई में की गई है। जब रोगकारक ग्रहों की दशाएँऔर अंतर्दशाएँ आती है या फिर जब गोचर में उन रोगकारक ग्रहों का संबंध आपस में बनता है तब रोगों की उत्पत्ति होती है। कुछ रोगों की अवधि अधिक होती है, तथा कुछ रोगों की अवधि कम होती है। इस अवधि का कारण भी रोगकारक ग्रह ही होते है अतः कह सकते हैं कि ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन से आप रोग के सम्भावित काल का ज्ञान कर सकते हैं।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

1. **ज्योतिष** ज्योतिष का अर्थ -हैग्रहों की गति, स्थिति आदि का बोधक शास्त्र। इस शास्त्र में ग्रहों के मनुष्य पर पडने वाले शुभाशुभ फल का विचार किया जाता है।
2. **गोचर**गोचरअर्थात् ग्रहों का - चार। ज्योतिष की दृष्टि में सभी ग्रहों की अपनी गति होती है। ग्रहों का संचार ही गोचर कहलाता है।
3. **महादशा**महादशा अर्थात् जन्मनक्षत्र वशात् आरम्भ हुआ ग्रहों का निश्चित काल। सूर्यादि के क्रम से - प्रत्येक ग्रह का क्रम तथा दशा वर्ष निर्धारित है। प्रत्येक ग्रह की महादशा में समस्त ग्रहों की अन्तर्दशाएं आती है।
4. **लग्न**रा व्यक्ति के जन्म के समय पूर्वी क्षितिज में जो-शि उदित होती है, उसे ही लग्न की संज्ञा दी जाती है।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास-1 की उत्तरमाला-

9. सत्य।
10. असत्य।
11. असत्य।
12. सत्य।

13.असत्य।

14.असत्य।

15.असत्य।

16.असत्य।

17.अभ्यास-2 की उत्तरमाला-

1. केतु।
2. 108।
3. योगिनी।
4. नक्षत्र।
5. 06।
6. 20।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6. वेदों में विज्ञान, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर उ.प्र., प्रथम संस्करण 2000
7. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999
8. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946
9. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
10. भावप्रकाश, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003

2.बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्,सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी

5. भुवनदीपक,डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिषशास्त्र में रोगकारक ग्रहों के निर्धारण पर निबन्ध लिखिए।
2. रोग कारक ग्रहों के कालनिर्धारण पर निबन्ध लिखें।

इकाई- 03 मृत्यु काल का निर्धारण

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 योगादि आयु से मृत्यु काल का निर्धारण
3.3.1 निसर्गादि आयु से मृत्यु काल का निर्धारण
3.3.2 ग्रहदशा से मृत्युकाल का निर्धारण
3.3.3 गोचर से मृत्युकाल का निर्धारण
3.4 सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.7 सहायक पाठ्य सामग्री
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

कालः पचति भूतानि काल समस्त प्राणियों को अपना ग्रास बना लेता है। इस संसार का शाश्वत सत्य यदि कुछ है तो वह मृत्यु ही है। इस संसार में जितने भी महापुरुष आए,वे भी अन्त में काल के ही ग्रास बनें। ऋषि-मुनि, तपस्वी,स्वयं मानव रूप में अवतरित हुए ईश्वर भी इसका अपवाद नहीं है। किसी ने मध्यमायु,किसी ने दीर्घायु तथा कोई तो अल्पायु भोग कर ही मृत्यु को प्राप्त कर गया। कोई प्राणी इस संसार में कब तक है ? यह परमपिता परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी नहीं जानता। अतः हमारे शास्त्रों ने अपने जीवन के प्रत्येक दिवस,प्रत्येक क्षण को ही अन्तिम क्षण मानकर सर्वदा सत्कर्म करने का ही उपदेश किया है। हितोपदेश नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह कभी भी बूढ़ा नहीं होगा तथा ना ही कभी मृत्यु को प्राप्त करेगा – ऐसा विचार करके वह विद्या तथा धन का सञ्चय करें और काल अर्थात् मृत्यु ने उसके केशों को पकड़ा हुआ है भाव यह कि वह किसी भी क्षण मृत्यु को प्राप्त हो सकता है – ऐसा विचार करके वह उसको धर्माचरण करना चाहिए। यथोक्तम्-

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्त्येत्।

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

तात्पर्य यह है कि विद्या का अध्ययन तथा धन का सञ्चय करते समय अर्थात् कर्म करते समय , मृत्यु कभी नहीं आएगी- ऐसा विचार करना चाहिए तथा सत्कर्म करते समय मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है – यह विचार करना चाहिए। वस्तुतः मृत्यु का काल निर्धारण अत्यन्त सूक्ष्म विषय है, जिसका ज्ञान करना अत्यन्त दुष्कर है। आज के इस अत्याधुनिक तकनीकी युग में भी किसी व्यक्ति की मृत्यु कब होगी ? यह काल निर्धारण करना असंभवभावी ही है। विश्व के अत्युन्नत विज्ञान भी इस प्रश्न पर केवल मूक ही दिखाई देते है , परन्तु भारतीय ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में मानव जीवन का सर्वपक्षीय विचार करते हुए मृत्यु के कालनिर्धारण के विषय में भी अपना मत प्रस्तुत किया है। जिसकी चर्चा प्रस्तुत इकाई में की जाएगी।

3.2उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि -

- योगादि आयु के विषय में जान सकेंगे।
- निसर्गादि आयु के विषय में जान सकेंगे।
- ग्रहदशा से मृत्युकाल का निर्धारण कर सकेंगे।
- गोचर से मृत्युकाल का निर्धारण कर सकेंगे।
- मृत्यु की कालनिर्धारण विधिको जान सकेगें।

3.3 योगादि आयु से मृत्यु का काल निर्धारण

जैसा कि आप जानते है किइस संसार में प्रत्येक व्यक्ति दीर्घायु का ही भोग करना चाहता है। अतः भारतीय परम्परा में ज्येष्ठजनों को प्रणाम करने पर उनके द्वारा प्राप्त होने वाले आशीर्वादों में से प्रमुख आशीर्वाद आयुष्मान् भव अथवा चिरञ्जीवी भव ही है। परन्तु इन आशीर्वचनों के प्राप्त होने पर भी प्रत्येक मनुष्य अपनी निश्चित आयु को भोग कर इस शरीर का त्याग करते हुए मृत्यु को प्राप्त करता है। हाँ, भारतीय परम्परा में अश्वत्थामा, दैत्यराज बलि, वेद व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय ऋषि को चिरञ्जीवी माना गया है। तद्यथा-

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।

कृपःपरशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेययाष्टमम्।

जीवेद्वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः॥

इन चिरञ्जीवियों का नाम स्मरण भी पुण्यप्रद माना गया है। इनके स्मरणमात्र से मानव को दीर्घायुष्य तथा आरोग्य की प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त इस धराधाम पर पैदा हुए प्रत्येक व्यक्ति को एक निश्चित आयु का भोग कर शरीर का त्याग करना होता है। किसी मनुष्य की मृत्यु कब होगी ? इस प्रश्न के उत्तर हेतु ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में प्रतिपादित आयु विषयक योगों का अध्ययन करना होगा। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों के विविध योगों द्वारा निर्धारित आयु को योगायु कहा जाता है तथा दशाओं द्वारा निर्धारित आयु को दशायु कहा जाता है और निसर्गायु का स्पष्टीकरण गणितीय प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। इसमें से सर्वप्रथम योगायु का विचार किया जाता है –

योगायु

योगायु का निर्णय निम्नलिखित 6 प्रकार के योगों से किया जाता है –

1. **सद्योरिष्ट योग**
2. **अरिष्ट योग**
3. **अल्पायु योग**
4. **मध्यायु योग**
5. **दीर्घायु योग**
6. **अमितायु योग**

सद्योरिष्ट योगों में अधिकतम 1 वर्ष की आयु होती है। अरिष्ट योग मे जातक की आयु 2 से 12 वर्ष तक की मानी जाती है। अल्पायु योग में 23 वर्ष तक की आयु मानी जाती है। मध्मायु योग में जातक की आयु 70 वर्ष की होती है तथा दीर्घायु योग में जातक की आयु 100 वर्ष की होती है। 100 वर्ष से अधिक आयु होने पर जातक की कुण्डली में अमितायु योग होता है। कुछ सद्योरिष्ट योगों का वर्णन सर्वप्रथम किया जा रहा है। इनमें से कोई योग यदि जन्मकुण्डली में विद्यमान हो तो जातक की मृत्यु 1 वर्ष के भीतर हो जाती है। तद्यथा-

1. सन्ध्याकाल में चन्द्रमा की होरा में जन्म हो तथा पापग्रह राशियों के अन्तिम नवांश में हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु होती है।
2. कुण्डली के चारों केन्द्र स्थानों में पापग्रह हो तथा चन्द्रमा भी इनके साथ हो तो शीघ्र मृत्यु होती है।
3. जन्मलग्न एवं सप्तम स्थान से द्वितीय एवं द्वादश में पापग्रह हो तो जातक की मृत्यु 1 वर्ष के भीतर हो जाती है।
4. लग्न एवं सप्तम में पापग्रह हो तथा चन्द्रमा पापग्रह के साथ हो और उस पर किसी शुभग्रह की दृष्टि न हो तो जातक की मृत्यु एक वर्ष के भीतर हो जाती है।
5. क्षीण चन्द्रमा द्वादश स्थान में हो , लग्न तथा अष्टम में पापग्रह हो और केन्द्र में शुभग्रह न हो तो जातक की मृत्यु 1 वर्ष में ही हो जाती है।
6. शनि,सूर्य तथा मंगल – ये तीनों एक साथ अष्टम तथा षष्ठ भाव में हो तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि तथा युति न हो तो जातक की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।
7. शनि लग्न अथवा सप्तम स्थान में हो ,चन्द्रमा वृश्चिक या जलचर राशि में हो तथा शुभग्रह केन्द्र में हो तो जातक की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।
8. षष्ठ या अष्टम स्थान में स्थित चन्द्रमा पर किसी पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करता है।
9. लग्नद्रेष्काण या चन्द्रद्रेष्काण का स्वामी निर्बल होकर त्रिक स्थान में हो, तो वह जिस राशि में हो तो उस राशि की संख्या तुल्य मास में बालक की मृत्यु हो जाती है।
10. जन्मकुण्डली में षष्ठ या अष्टम स्थान में शुभ ग्रह हो, उन पर वक्री पापग्रहों की दृष्टि हो और शुभ ग्रह न देखते हो तो जातक की मृत्यु जन्म से 1 मास के भीतर ही हो जाती है।
11. चन्द्रमा केन्द्र या अष्टम स्थान में मृत्यु भाग में हो तो बालक शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करता है। मेषादि राशियों के मृत्यु भाग इस प्रकार है।

राशि	मृत्यु भाग
मेष	26 अंश
वृष	12 अंश
मिथुन	13 अंश
कर्क	25 अंश
सिंह	24 अंश
कन्या	11 अंश
तुला	15 अंश
वृश्चिक	16 अंश
धनु	13 अंश
मकर	25 अंश

कुम्भ	5 अंश
मीन	12 अंश

12. लग्न में मंगल हो तथा उसे शुभ ग्रह न देखते हो या वह शनि के साथ 6ठे अथवा 8वे स्थान में हो तो उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

अरिष्ट योग-

सद्योरिष्ट योगों के पश्चात् ज्योतिषग्रन्थों में अरिष्ट योगों का वर्णन प्राप्त होता है। इन अरिष्टयोगों को ही बालारिष्ट योग भी कहा जाता है। यदि किसी जातक की जन्मकुण्डली में ये योग विद्यमान हो तो जातक की मृत्यु जन्म से 12 वर्ष के भीतर ही हो जाती है। ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में इन बालारिष्ट योगों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है , उनमें से कुछ महत्वपूर्ण बालारिष्ट योगों का वर्णन किया जा रहा है।

1. जन्मलग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तथा केन्द्र (1,4,7,10) एवं अष्टम स्थान में पापग्रह हो तो शिशु की बाल्यकाल में ही मृत्यु हो जाती है।
2. जन्मकुण्डली में दो पापग्रहों के मध्य स्थित चन्द्रमा केन्द्र या अष्टम स्थान में हो तो भी बालक की मृत्यु अल्पायु में ही हो जाती है।
3. राहु से ग्रस्त तथा पापग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न में हो तथा मंगल अष्टम स्थान में हो तो शिशु अपनी माता के साथ मृत्यु को प्राप्त करता है।
4. शनि 12वे,चन्द्रमा लग्न में तथा मंगल 8वें स्थान में हो तो बालक की मृत्यु बाल्यकाल में ही हो जाती है।
5. शनि चन्द्रमा के नवांश में हो , उसे चन्द्रमा देखता हो तथा लग्नेश पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो बालक 6 वर्ष की आयु में ही मृत्यु को प्राप्त कर लेता है।
6. लग्नेश एवं चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो तथा उन्हें सब पापग्रह देखते हो तो बालक की मृत्यु 3रे वर्ष में हो जाती है।
7. चतुर्थ स्थान में शनि के साथ सूर्य हो तो बालक 9वे वर्ष में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।
8. केन्द्र,षष्ठ या अष्टम स्थान में मंगल की राशि में चन्द्रमा हो तथा उस पर शनि एवं राहु की दृष्टि हो तो बालक की 2रे वर्ष में मृत्यु हो जाती है।

अल्पायु योग-

अरिष्टयोग तथा सद्योरिष्ट योगों के अनन्तर ज्योतिषशास्त्र में अल्पायु योगों का वर्णन प्राप्त होता है। इन योगों में उत्पन्न जातक की आयु 12 से 32 वर्ष के मध्य होती है। अल्पायु योग 2 प्रकार के होते है। प्रथम प्रकार के अल्पायु योगों में जातक के मृत्यु वर्ष का उल्लेख नहीं होता अपितु केवल जातक की अल्पायु का उल्लेख होता है, जबकि दूसरे प्रकार के अल्पायु योगों में जातक की आयु का भी उल्लेख किया जाता है। जिन योगों में आयु वर्षों का उल्लेख नहीं होता , उन योगों में 12 से 32 वर्ष के मध्य में मारकेशों की दशा तथा भुक्ति आदि में जातक की मृत्यु होने की प्रबल सम्भावना रहती है। ज्योतिषग्रन्थों में वर्णित अल्पायु योगों में से कुछ महत्वपूर्ण योगों का वर्णन किया जा रहा है –

1. यदि तुला के नवांश में स्थित शनि पर गुरु की दृष्टि हो तो व्यक्ति की 13वे वर्ष में मृत्यु हो जाती है।

2. यदि कन्या के नवांश में शनि हो और उसे बुध देखता हो तो जातक की 14वे वर्ष में मृत्यु हो जाती है ।
3. यदि कर्क राशि में गुरु के साथ सूर्य हो तथा अष्टमेश केन्द्र में हो तो जातक की मृत्यु 22वे वर्ष में होती है।
4. चन्द्रमा तथा शनि में स्थान सम्बन्ध अथवा दृष्टि सम्बन्ध हो तथा सूर्य अष्टम स्थान में हो तो जातक की मृत्यु 29वे वर्ष में हो जाती है।
5. अष्टमेश केन्द्र में हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो 32वे वर्ष में जातक की मृत्यु हो जाती है।
6. अष्टमेश या शनि क्रूरषष्ठ्यंश में हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है।
7. यदि लग्नेश एवं समस्त शुभग्रह आपोक्लिम (3.6,9,12) भावों में हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है ।
8. यदि लग्नेश अष्टमेश की अपेक्षा निर्बल हो , लग्ननवांशेश अपने अष्टमेश की अपेक्षा निर्बल हो,तथा जन्मराशीश अपने अष्टमेश की अपेक्षा दुर्बल हो तो जातक की अल्पायु होती है।
9. यदि निर्बल अष्टमेश अष्टम हो या वह केन्द्र में हो तथा लग्नेश भी निर्बल हो तो जातक की अल्पायु होती है।
10. लग्नेश,दशमेश एवं शनि –ये तीनों यदि अष्टम स्थान में हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है।

मध्यमायु योग-

आपने सद्योरिष्ट, अरिष्ट तथा अल्पायु योग के विषय में पढ़ा। अब आप मध्यमायु योग के विषय में अध्ययन करेंगे। मध्यमायु योग के फलस्वरूप जातक की आयु 33 वर्ष से 70 वर्ष तक होती है। इन ग्रहयोगों का फलितशास्त्र में अनेकत्र वर्णन है , उसमें से कुछ महत्वपूर्ण योगों का वर्णन किया जाता है।

1. लग्नेश निर्बल हो तथा गुरु केन्द्र या त्रिकोण में हो तथा पापग्रह त्रिक स्थान (6,8,12) में हो तो जातक की मध्यमायु होती है।
2. दो शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हो तथा बलबान शनि षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो मनुष्य मध्यमायु को प्राप्त करता है।
3. भाग्येश के साथ लग्नेश हो,पंचमेश पर गुरु की दृष्टि हो तथा कर्मेश उच्चराशि में केन्द्र में हो तो मध्यमायु होती है।
4. क्रूरग्रह दशम स्थान में हो। दशमेश एवं पंचमेश के साथ शनि लाभ स्थान में हो तो जातक मध्यमायु को प्राप्त करता है।
5. लग्न में शत्रुराशि में दो पापग्रहों के मध्य में सूर्य हो तथा उसे शुभग्रह न देखते हो तो मनुष्य की आयु 36 वर्ष की होती है।
6. मंगल के साथ अष्टमेश लग्न में बैठा हो तो जातक की आयु 42 वर्ष की होती है।
7. उच्चराशि का शनि 10वे,गुरु 7वे तथा राहु लग्न में हो तो जातक की आयु 44 वर्ष की होती है।
8. अष्टमेंश सप्तम स्थान में हो तथा पापग्रह युक्त चन्द्रमा षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो जातक की आयु 58 वर्ष की होती है।
9. लग्न में गुरु हो,मीन राशि में सूर्य हो , बुध तथा शनि किसी भी भाव में हो तथा चन्द्रमा 12वे स्थान में हो तो जातक की आयु 66 वर्ष की होती है।
10. चन्द्रमा के साथ सूर्य दशम स्थान में हो, शनि लग्न में तथा गुरु चतुर्थ भाव में हो तो जातक की आयु 68 वर्ष की होती है।

दीर्घायु योग-

दीर्घायु योग से अभिप्राय उन योगों से हो , जिनसे जन्मकालिक ग्रह स्थिति के आधार पर जातक के दीर्घायु होने की सम्भावना रहती है । इनमें से कुछ योगों में तो आयु का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है तथा कुछ योगों में केवल दीर्घायु होने की चर्चा है। ऐसे अनेक योगों का वर्णन ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है। उनमें से कुछ योगों की चर्चा की जा रहीं है।

1. यदि केन्द्र में शुभ ग्रह हो,लग्नेश शुभग्रह के साथ हो तथा उसे गुरु देखता हो तो मनुष्य को दीर्घायु की प्राप्ति होती है।
2. लग्नेश केन्द्र में गुरु एवं शुक्र के साथ हो तो पूर्णायु होती है।
3. अष्टम स्थान में 3 ग्रह हो अथवा 3 ग्रह अपनी उच्च राशि ,मित्रराशि अथवा स्ववर्ग में हो तथा लग्नेश बलबान हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है।
4. पापग्रह षष्ठ स्थान में हो तथा लग्नेश केन्द्र में हो तो जातक की आयु दीर्घ होती है ।
5. पापग्रह तृतीय,षष्ठ एवं एकादश स्थान में हो, शुभग्रह केन्द्र-त्रिकोण में हो तथा लग्नेश बली हो तो जातक की दीर्घायु होती है।
6. अष्टमेश जिस राशि में हो, उसका स्वामी जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी तथा लग्नेश – ये दोनों केन्द्र में हो तो मनुष्य चिरकाल तक जीवित रहता है ।
7. यदि बुध,गुरु एवं शुक्र केन्द्र या त्रिकोण में हो जातक की आयु दीर्घ होती है।
8. यदि लग्नेश एवं सभी शुभ ग्रह केन्द्र में हो तो जातक दीर्घायु होता है ।
9. यदि अष्टमेश एवं सभी पापग्रह आपोक्लिम भावों में हो तो जातक दीर्घायु होता है।
10. अष्टमेश लग्न में हो तथा लग्नेश गुरु एवं शुक्र से दृष्ट-युत हो तो जातक दीर्घायु होता है।

अमितायु योग-

ज्योतिषशास्त्र के आचार्यो ने अमितायु योगों का ग्रन्थों में प्रतिपादन किया है । इन योगों में उत्पन्न जातक 100 वर्ष से अधिक की आयु होती है। इन योगों में उत्पन्न जातक को चिरायु भी कहा जाता है। कुछ महत्वपूर्ण अमितायु योगों का वर्णन किया जा रहा है ।

1. जन्मलग्न में कर्क राशि में चन्द्रमा अथवा बृहस्पति हो । केन्द्र में बुध,शुक्र हो तथा सूर्य,मंगल एवं शनि तृतीय, षष्ठ या एकादश भाव में हो तो जातक की अमितायु होती है।
2. कर्क लग्न का जन्म हो। गुरु केन्द्र में गोपुरांश में हो तथा शुक्र त्रिकोण में पारावतांश में हो तो मनुष्य की अमितायु होती है।
3. सूर्य,मंगल तथा गुरु – ये तीनों शनि के नवांश में नवम भाव में या दशम भाव में बलबान होकर के हो तथा चन्द्रमा लग्न में हो तो मनुष्य चिरायु होता है।
4. सूर्योदय के समय का जन्म हो । गुरु एवं शनि एक ही नवांश में नवम या दशम भाव में हो तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो जातक अमितायु को प्राप्त करता है।
5. मेष का अन्तिम नवांश लग्न में हो, उसमें गुरु या शुक्र हो, वृष के मध्य नवांश में चन्द्रमा हो तथा मंगल सिंहासनांश में हो तो मनुष्य की अमितायु होती है।

इस प्रकार से किसी भी जातक की जन्मकालिक ग्रह स्थिति के आधार पर वह अल्पायु, मध्यमायु , दीर्घायु अथवा अमितायु से युक्त है , यह ज्ञात किया जा सकता है । तदनन्तर मारकेशों की दशा तथा भुक्ति का ज्ञान कर जातक के मृत्यु काल का निर्धारण भी किया जा सकता है ।

3.3.1 निसर्गादि आयु से मृत्यु का काल निर्धारण

वस्तुतः इस संसार में किसी प्राणी की मृत्यु का काल निर्धारण करना अत्यन्त दुःरूह कार्य है। अतः ज्योतिषशास्त्र के अनेकों आचार्यों ने इस दिशा में अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विविध पद्धतियों का आश्रय लिया है। योगादि आयु के माध्यम से किसी व्यक्ति के अल्पायु अथवा दीर्घायु होने का ज्ञान तो हो जाता है परन्तु उसकी मृत्यु के वास्तविक काल निर्धारण कर पाना कठिन रहता है। मणित्थ, सत्याचार्य आदि आचार्यों ने निसर्गादि आयु के माध्यम से मृत्यु का काल निर्धारण किया है। निसर्गादि आयु के निम्नलिखित चार भेद है-

1. निसर्गायु
2. पिण्डायु
3. लग्नायु
4. अंशकायु

इसमें से सर्वप्रथम निसर्गायु का वर्णन किया जा रहा है। सूर्य आदि सात ग्रहों की निसर्गायु क्रमशः 20,1 , 2 , 9, 18, 20 तथा 50 वर्ष होती है ।ग्रहों की निसर्गायु के उक्त वर्ष उनके उच्चराशि में स्थित होने पर बतलाये गये है ।यदि ग्रह उच्चराशि से भिन्न राशि में हो,तो अनुपात विधि से निसर्ग आयु का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए।

पिण्डायु-

सूर्य आदि ग्रह अपनी-अपनी राशि में हों तो उनकी पिण्डायु इस प्रकार होती है – यथा सूर्य की 19 वर्ष,चन्द्रमा की 25 वर्ष,मंगल की 15 वर्ष, बुध की 12 वर्ष , गुरु की 15 वर्ष, शुक्र की 21 वर्ष तथा शनि की 20 वर्ष पिण्डायु होती है। जो ग्रह अपनी उच्च राशि में होता है, उसकी पिण्डायु पठित वर्षों के अनुसार ही मानी जाती है तथा इससे भिन्न राशि में होने पर निसर्गायु की भांति ही अनुपात से पिण्डायु का साधन किया जाता है। इसके लिए स्पष्टग्रह में से उसके उच्च को घटा कर शेष 6 राशि से अधिक हो तो यथावत् रखना चाहिए। फिर सबकी कला बनाकर उसे निसर्ग या पिण्डायु के वर्ष से गुणा कर उनमें 21600 का भाग देने से प्राप्त लब्धि वर्ष,मास ,दिन एवं घटी उस ग्रह की स्पष्ट निसर्ग या पिण्डायु होती है। पिण्डायु साधन में कुछ संस्कारों की चर्चा भी प्राप्त होती है , जिनके अनुसार मंगल के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रह शत्रु राशि में हो तो उसकी स्पष्ट आयु में से उसका 1/3 भाग घटा देना चाहिए। किन्तु मंगल शत्रुराशि में हो तो उसकी आयु यथावत् रहती है। इसी प्रकार शुक्र तथा शनि के अतिरिक्त शेष ग्रह अस्त हो तो उसकी स्पष्ट आयु में से ½ भाग घटा देना चाहिए।

लग्नायु-

ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने किसी भी लग्न पर उसके स्वामी ग्रह, बुध या गुरु से दृष्टि या युति होने पर वह लग्न बलबान माना जाता है ।लग्नायु साधन हेतु दो प्रकार की पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। प्रथम पद्धति के अनुसार स्पष्ट लग्न की कला बनाकर उसमें 200 का भाग देने से जो वर्ष आदि लब्धि होती है , वह लग्नायु होती है ।दूसरी रीति के अनुसार लग्न की जितनी राशिया भुक्त हो , उतने वर्ष का भुक्त अंशो द्वारा अनुपात से मासादि जानकर उन सबका योग ही लग्नायु होती है।

अंशकायु-

अंशकायु के साधन हेतु स्पष्टग्रह के राश्यादि का कलापिण्ड बनाकर उसमें 200 का भाग देने पर जो लब्धि मिले वह वर्ष तथा शेष को 12 से गुणाकर पुनः 200 से भाग देकर मासादि का साधन करना चाहिए। अंशकायु में भी संस्कारो की चर्चा प्राप्त होती है। तदनुसार जो ग्रह अपनी उच्च राशि में हो या वक्री हो तो उसकी आयु के मान को तीन गुना किया जाता है। जो ग्रह स्वनवांश,स्वद्रेष्काण या स्वराशि में हो तो उसकी आयु के मान में से उनका तृतीयांश घटाना चाहिए तथा शुक्र एवं शनि के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रह के अस्तंगत होने पर उसकी आयु के मान में से उसका आधा भाग घटा देना चाहिए ।इसी प्रकार किसी ग्रह के क्रमशः 12वे, 11वे, 10वे, 9वे, 7वे, स्थान में पापग्रह होने पर उसकी आयु के मान में क्रमशः सम्पूर्ण मान का आधा भाग, तीसरा भाग, चौथाई भाग, पाँचवा भाग, छठा भाग घटाना चाहिए किन्तु यदि एक ही स्थान में दो,तीन या अधिक ग्रह हो तो सब ग्रहों का भाग नहीं घटता है अपितु उनमें से जो सबसे अधिक बलबान् हो, उसी का भाग घटाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि एक ही स्थान में पाप एवं शुभ दोनों प्रकार के ग्रह होने पर उनका सब भाग नहीं घटाया जाता है। इस प्रकार संस्कार करन् पर अंशकायु प्राप्त होती है।

इन पूर्वोक्त चार प्रकार की आयु में से कौन सी आयु का ग्रहण करना चाहिए। यह प्रश्न मन में आता है तो उसका उत्तर ज्योतिषग्रन्थों में प्राप्त होता है कि जन्म काल में लग्नेश , सूर्य एवं चन्द्रमा में से लग्नेश यदि सर्वाधिक बली हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो अंशायु की रीति से आयु का स्पष्टीकरण करना चाहिए। यदि सूर्य सबसे अधिक बली हो तो पिण्डायु का ग्रहण करना चाहिए। यदि चन्द्रमा सर्वाधिक बली हो तो निसर्गायु का ग्रहण करना चाहिए। यदि लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा में से दो ग्रह तुल्य बल से युक्त हो तो उन दोनों की आयु का योगार्ध लेना चाहिए। अर्थात् यदि सूर्य एवं चन्द्रमा तुल्य बली हो तो अंशायु एवं पिण्डायु एवं निसर्गायु का योगार्ध लेना चाहिए। यदि कदाचित् लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा तीनों ही तुल्य बली हो तो अंशायु ,पिण्डायु एवं निसर्गायु के योग का तृतीयांश ग्रहण करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

9. अश्वत्थामा एक चिरञ्जीवी है।
10. अल्पायु योग में अधिकतम आयु 1 वर्ष है।
11. अमितायु योग में अधिकतम आयु 70 वर्ष है।
12. मंगल के साथ अष्टमेश होने पर जातक दीर्घायु होता है।
13. सूर्य की निसर्गायु 50 वर्ष है।
14. मंगल की पिण्डायु 15 वर्ष है।
15. बुध की निसर्गायु 9 वर्ष है।

3.3.2 ग्रहदशा से मृत्युकाल का निर्धारण

दशा के द्वारा साधित आयु को दशायु कहते है। योगायु के साधन में सद्योरिष्ट योग, बालारिष्ट योग तथा अमितायु योग अपने प्रभाववश कथित वर्ष में मृत्यु की सूचना देते है अर्थात् इन योगों के होने पर इन योगों में कहे गये वर्ष की समाप्ति पर मृत्यु होती है किन्तु योगायु में अल्पायु योग, मध्मायु योग तथा दीर्घायु योग होने पर मृत्यु काल का निर्णय दशा-अन्तर्दशा की अपेक्षा रखता है। अतः इन योगों के होने पर योग एवं दशा की एकरूपता द्वारा मृत्युकाल का निर्णय करना चाहिए। विविध दशाओं में से विंशोत्तरी दशा एवं अष्टोत्तरी दशा का ही अधिकतम प्रचलन है अतः दशा द्वारा मृत्यु का ज्ञान करने के लिए व्यक्ति के जन्मनक्षत्र के अनुसार विंशोत्तरी या अष्टोत्तरी दशा का भोग्यकाल ज्ञात कर प्रत्येक ग्रह की दशा में अन्य ग्रहों की अन्तर्दशाओं का ज्ञान कर लेना चाहिए।

जैसा कि आप जानते है , द्वादश भावों में से द्वितीय तथा सप्तम भाव को मारक भाव कहा जाता है।अतः अल्पायु,मध्यमायु तथा दीर्घायु आदि का निर्णय होने के बाद उस कालखण्ड में जब मारक ग्रह की दशा-अन्तर्दशा आती है तो उस काल में मनुष्य की मृत्यु की प्रबल सम्भावना होती है।मारकेशों के अतिरिक्त भी निम्नलिखित भावों से सम्बन्ध करने वाले ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा मृत्युकारक होती है।

- व्ययेश से सम्बन्ध करने वाले किसी शुभ ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।
- अष्टमेश की दशा-अन्तर्दशा में।
- केवल पापग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।
- द्वितीय तथा सप्तम भाव में स्थित पाप ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।
- द्वितीयेश तथा सप्तमेश से युक्त पापग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।
- मारक ग्रहों के साथ बैठे शनि की दशा-अन्तर्दशा में।
- षष्ठेश की दशा-अन्तर्दशा में।

- कुण्डली में सबसे निर्बल ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।
- मारकेश से युक्त अष्टमेश की महादशा में।
- मारकेश निर्णय में दिये गये सिद्धान्तों के अनुरूप विविध मारक ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में।
- यदि अष्टम में कोई ग्रह न हो तो अष्टम स्थान पर दृष्टि रखने वाले ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।
- तृतीय स्थान में स्थित ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।
- लग्न से 22वे द्रेष्काण के स्वामी ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।

इस प्रकार से पूर्वोक्त ग्रहों की दशा-अन्तर्दशाओं के आने पर अपनी आयु के अनुसार व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त करता है। यदि किसी जातक की जन्मकालिक ग्रह स्थिति के अनुसार दीर्घायु के योग है तथा बाल्यकाल अथवा युवावस्था में ही यदि वह मारकेशग्रहों की दशा-अन्तर्दशा के प्रभाव में रहता है तो वे ग्रह मारकेश होते हुए भी मृत्युकारक नहीं बन पाएँगे। यदि किसी की जन्मकालिक ग्रह स्थिति के अनुसार अल्पायु योग है तथा बाल्यकाल में ही मारकेश की भी दशा-अन्तर्दशा है तो निश्चित ही उस जातक की मृत्यु की प्रबल सम्भावना होती है। आपने दशावशात् मृत्युकाल के निर्धारण के विषय में अध्ययन किया। अब ग्रहों के गोचर वशात् मृत्युकाल के निर्धारण के विषय में अध्ययन करेंगे।

3.3.3 गोचर से मृत्युकाल का निर्धारण

आकाश में सभी ग्रह प्रतिक्षण भ्रमणशील रहते है। जिनका प्रभाव प्रत्येक प्राणी पर पड़ता है। ग्रहों के भ्रमणवशात् प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन ज्योतिषशास्त्र की जिस पद्धति के अन्तर्गत किया जाता है, उस पद्धति को गोचर पद्धति कहते हैं।

- जन्मकुण्डली में अष्टमेश ,गुलिक,शनि तथा 22 वां द्रेष्काण या उसके स्वामी जिस राशि में हो , उस राशि में शनि के गोचर में जातक की मृत्यु होती है।
- जन्म लग्न के द्रेष्काण का स्वामी,अष्टमेश या 22वे द्रेष्काण का स्वामी जिस राशि में हो,उस राशि में गुरु के गोचर में जातक की मृत्यु होती है।
- जन्मकुण्डली में सूर्य के द्वादशांश की राशि, अष्टमेश के नवांश की राशि या लग्नेश के नवांश की राशि में गुरु एवं सूर्य के गोचर काल में यदि किसी रोग का आरम्भ हो तो वह रोग मृत्युकारक होता है।
- जन्मकाल में जो अष्टमेश या सूर्य की राशि हो, उस राशि में चन्द्रमा के गोचर में उद्भूत रोग मृत्युकारक होता है।
- रोगारम्भ कालीन लग्न एवं चन्द्रमा के निर्बल होने पर जातक की मृत्यु होती है।
- रोगारम्भ के समय गोचर में जन्मलग्नेश एवं राशीश का अस्त होना या पापाक्रान्त होने पर जातक की मृत्यु होती है।
- रोगारम्भ के समय अपशकुन एवं अशुभ निमित्तों के होने पर जातक की मृत्यु होती है।
- प्रश्नकालिक लग्न एवं चन्द्रमा के मृत्युसंज्ञक अंशों में होने पर जातक की मृत्यु होती है।
- प्रश्नलग्न में चरराशि हो तथा उस पर वक्री एवं पापग्रह की दृष्टि होने पर जातक की मृत्यु होती है।

- केन्द्र,त्रिकोण तथा अष्टम स्थान में पापग्रह स्थित होने पर जातक की मृत्यु होती है।

इस प्रकार से गोचर का विचार करके किसी जातक के मृत्युकाल का निर्धारण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि किसी जातक को कोई रोग हो तो उस रोग के आरम्भ होने की तिथि , नक्षत्र तथा रोगारम्भ कालिक ग्रहस्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। उसके आधार पर भी आप किसी रोग की साध्यता-असाध्यता को ज्ञात कर सकते है। कौन सा रोग जातक के लिए मृत्यु का कारण बन सकता है तथा किस रोग मे जातक मृत्यु को पराजित कर सकता है- रोगारम्भकालिक ग्रहस्थिति से यह ज्ञान सरलता से किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न-2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

9. लग्न से..........वाँ द्रेष्काण मृत्युकारक माना जाताहै।
10.अष्टमेश की राशि में गुरु का गोचर ....कारक है।
11.......राशि के प्रश्न लग्न पर वक्री ग्रह की दृष्टि मृत्युकारक है।
12.प्रश्नकालिक लग्न का.........अंशो में होना मृत्युकारक है।
13.रोगारम्भ के समय.........निमित्तों का होना मृत्युकारक हैं।
14.गुलिक की राशि में......... का गोचर मृत्युकारकहै।
15.रोगारम्भ के समय राशीश का अस्त होना..........है।

3.4सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना किकिसी जातक की मृत्यु के काल का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है।सर्वप्रथम किसी भी जातक की जन्मकालिक ग्रहस्थिति के आधार पर यह निर्णय किया जाता है कि जातक की कुण्डली में सद्योरिष्ट, बालारिष्ट योग तो नहीं है। जन्मकालिक ग्रहस्थिति जातक के अल्पायु , दीर्घायु अथवा अमितायु होने में से क्या इङ्गित कर रहीं है। इन सभी के विषय मे विविध योगों का आपने अध्ययन किया, जिसके आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है कि जातक की किस कालखण्ड में मृत्यु की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त निसर्गायु, पिण्डायु, लग्नायु तथा अंशकायु के आधार पर भी किसी जातक की आयु कितनी हो सकती है ? यह ज्ञात किया जा सकता है। तदनन्तर दशाओं के आधार पर,ग्रहों के गोचर के आधार पर तथा प्रश्नलग्न के आधार पर आप किसी जातक की मृत्यु के निश्चित काल का निर्धारण कर सकते हैं।

3.5पारिभाषिक शब्दावली

7. सद्योरिष्ट-जन्म के पश्चात् यदि 1 वर्ष के भीतर ही कोई बालक मृत्यु को प्राप्त करता है तो उसको सद्योरिष्ट कहते है।
8. बालारिष्ट-12 वर्ष से पहले यदि कोई जातक मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसको बालारिष्ट कहते है।
9. अल्पायु -यदि कोई जातक12 से 32 वर्ष के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है तो उसकी अल्पायु मानी जाती है।
10. मध्यमायु- यदि किसी जातक की मृत्यु 32 से 70 वर्ष के मध्य में होती है तो यह मध्यमायु कहलाती है।
11. दीर्घायु- यदि किसी जातक की मृत्यु 70 से 100 वर्ष के मध्य होती है तो यह दीर्घायु कहलाती है।
12. अमितायु- 100 वर्ष से अधिक आयु का होना अमितायु कहलाता है।
13. निसर्गायु- प्रत्येक ग्रह को एक निश्चित आयु प्रदान की गई है जो निसर्गायु कहलाती है।
14. गोचर- ग्रहों का तात्कालिक संचार ही गोचर कहलाता है।

3.6अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास-1 की उत्तरमाला-

18. सत्य।
19. सत्य।
20. असत्य।
21. असत्य।
22. असत्य।
23. सत्य।
24. सत्य।

अभ्यास-2 की उत्तरमाला-

9. 22।
10. मृत्यु।
11. चर।
12. मृत्यु।
13. अशुभ।
14. शनि।
15. मृत्युकारक।

3.7सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
12.बृहज्जातकम्, भट्टोत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999 ई।
13.फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946 ई।
14.लघुजातकम्, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
15.भावप्रकाश, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
16.ज्योतिषशास्त्र में रोग-विचार, प्रो शुकदेव चतुर्वेदी, मोती लाल बनारसी दास, नई दिल्ली- 2016 ई।
17.श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर।

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिंह, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003

2.बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.लघु पाराशरी, पं. सीता राम झा, मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद,वाराणसी सम्वत् 2069।

5. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5. योगादि आयु के आधार पर मृत्यु काल का निर्धारण कीजिए।
6. निसर्गादि आयु के आधार पर मृत्यु का काल निर्धारण कीजिए।
7. दशाओं के आधार पर मृत्युकाल का निर्धारण कीजिए।
8. गोचर के आधार पर मृत्युकाल का निर्धारण कीजिए।

इकाई -04 मृत्यु प्रकार एवं काल

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मृत्यु क्या है ?
4.3.1 नचिकेता कथानक का सूक्ष्म विश्लेषण
4.3.2 मृत्यु के विविध प्रकार
4.3.3 मृत्यु का काल-ज्ञान
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक पाठ्य सामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मनुष्य इस संसार का सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी है। इस संसार में अनेक योनियों में उत्पन्न हुए जीव रहते है परन्तु उनमें से कोई भी जीव ऐसा नहीं है जो अविनाशी हो। ईश्वर और जीव में यही मुख्य अन्तर है कि ईश्वर अविनाशी है जबकि जीव नाशवान् है और सभी जीव अपने-अपने प्रारब्धानुसार सुख-दुःख का भोग करते हुए अन्तिम सत्य मृत्यु को प्राप्त करते है। आधुनिक विज्ञान आज इस स्थिति में पहुँच गया है कि उसने किसी हद तक व्यक्ति के जन्म को नियन्त्रित कर लिया है। आज आधुनिक चिकित्सा पद्धति के माध्यम से किसी बच्चे का जन्म किस समय होगा ? यह निर्धारित करने में मनुष्य सफल हो गया है। परन्तु मनुष्य की मृत्यु को नियन्त्रित करना पाना , आज भी सम्भव नहीं है। करोड़ो- अरबों की धनराशि का व्यय करने के उपरान्त भी सम्पूर्ण चिकिस्कीय उपकरणों तथा विश्व के सर्वश्रेष्ठ चिकित्सकों की उपस्थिति में विश्वस्तरीय चिकित्सा सुविधाओं के होने पर भी मनुष्य का जीवन बचा पाना सम्भव नहीं हो पाता। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को हम पूरी तरह नकार दें। चिकित्सा शास्त्र के कारण ही असाध्य रोग से ग्रसित रोगी भी पूरी तरह से स्वस्थ होते दिखाई देते है परन्तु फिर भी मृत्यु को नियन्त्रित करने में आज तक किसी भी संस्कृति तथा किसी भी सभ्यता की कोई भी चिकित्सा पद्धति पूरी तरह से सफल नहीं हो पाई है और ना ही निकट भविष्य में इस प्रकार की सफलता प्राप्त होने की कोई आशा है क्योंकि ईश्वर ने मृत्यु को अपने हाथ में ही रखा है। भारतीय शास्त्रों में मृत्यु के विषय में विशद विवेचन प्राप्त होता है। संस्कृत वाङ्मय में मृत्यु क्या है ? मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा का क्या होता है ?स्वर्ग तथा नरक क्या है ? किस प्रकार से स्वर्ग तथा नरक की प्राप्ति होती है ? स्वर्ग तथा नरक में किस प्रकार के सुख तथा दुःख को भोगना पड़ता है ? मोक्ष क्या है ? मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार से होती है ? इस प्रकार से मृत्यु विषयक चर्चाओं से हमारे विविध वेदान्त ग्रन्थों तथा अन्य दर्शनशास्त्रीय ग्रन्थों में विस्तृत विवेचन किया गया है। क्योंकि मृत्यु ही एक ऐसा विषय है जो अत्यन्त रहस्यात्मक है। अतः अन्य रहस्यात्मक विषयों की तरह भारत के ऋषियों तथा आचार्यों ने इस रहस्यात्मक विषय में भी अत्यन्त परिश्रम किया है और मृत्यु के विषय में अत्यन्त गूढ़ तथ्यों का प्रतिपादन अपने विविध ग्रन्थों में किया है, जिसकी चर्चा प्रस्तुत इकाई में की जाएगी।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि -

- मृत्यु क्या है?
- यम-नचिकेता संवाद को जान सकेगें।

- भारतीय दर्शन के अनुसार मृत्यु के अभिप्राय को जान पाएगें।
- मृत्यु के भेदों को जान सकेगें।
- मृत्यु की काल-ज्ञान विधि को जान सकेगें।

4.3 मृत्यु क्या है ?

जैसा कि आप जानते है किइस संसार का सबसे बड़ा दुःख मृत्यु ही है। इस संसार में जब किसी की मृत्यु होती है तो उसके प्रियजनों के शोक को देखकर ही मृत्यु की भयावहता का अनुमान हो जाता है परन्तु मृत्यु इस संसार का शाश्वत सत्य है जो एक न एक दिन सबको प्राप्त होनी ही है। इस संसार में जितने भी महापुरुष आए, ईश्वर भी राम, कृष्ण आदि स्वरूपों में अवतरित हुए परन्तु कोई भी इस संसार में सर्वदा नहीं रहा। अपने-अपने समय की पूर्ति होने पर सबने मृत्यु का ही वरण किया क्योंकि जो भी इस संसार में पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु किसी ना किसी दिन होनी ही है तथा जिसकी मृत्यु हुई है, उसका जन्म भी होना ही है। यथोक्तम्-

जातस्य हि धुर्वो मृत्युः धुर्वो जन्म मृतस्य च ॥

यह जन्म-मरण का चक्र सर्वदा चलता रहता है। जब भी किसी की मृत्यु होती है तो मन में यही जिज्ञासा जागृत होती है कि हमारे धर्मग्रन्थों में यह कहा गया है कि हमें सत्कर्म करने चाहिए और दुष्कर्मो से बचना चाहिए। यदि हम सत्कर्म करते है तो हमें स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है तथा यदि हम दुष्कर्म करते है तो हमें नरकों में दुःख भोगने पड़ते है और ये सुख-दुःख मृत्यु के उपरान्त प्राप्त होते है। जबकि मृत्यु के अनन्तर मृत शरीर को जलाकर अथवा मिट्टी मे दबाकर (अपने-अपने धर्म की परम्परा अनुसार) नष्ट कर दिया जाता है तथा आत्मा के विषय में भारतीय शास्त्रों में प्राप्त होता है कि आत्मा अजर तथा अमर है। इसको किसी भी प्रकार का सुख- दुःख आदि नहीं होता। इसको कोई शस्त्र काट नहीं सकता। विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ भगवद्गीता में आत्मा के विषय में प्राप्त होता है-

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

इस प्रकार से आत्मा को सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहने वाली तथा सनातन कहा गया है जो किसी भी प्रकार के सुख तथा दुःख से रहित रहती है परन्तु मन में संशय होता है कि मृत्यु के अनन्तर शरीर तो नष्ट हो जाता है और आत्मा सुख –दुःख से रहित है तो स्वर्गों के सुख तथा नरकों के दुःख कौन भोगता है ?यही संशय नचिकेता के मन में भी

पैदा हुआ अतः उसने मृत्यु के रहस्य को जानने का प्रयास किया और मृत्यु क्या है तथा मृत्यु के अनन्तर क्या होता है ? इस ज्ञान हेतु नचिकेता ने जीवित रहते हुए ही यमलोक की यात्रा की तथा मृत्यु के देवता साक्षात् यमराज से इस रहस्य के विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

कठोपनिषद में प्राप्त इस कथानक के अनुसार उद्दालक नामक ऋषि ने सर्वमेध संज्ञक यज्ञ किया। इस यज्ञ में अपना सर्वस्व दान में देना होता है। अतः उद्दालक ऋषि ने भी अपने सर्वस्व त्याग की भावना से इस यज्ञ को आरम्भ किया ।उस समय गोधन ही सर्वश्रेष्ठ धन माना जाता था। उस ऋषि का एक पुत्र था- जिसका नाम नचिकेता था। उसके पिता उद्दालक ने कुछ उत्तम गायों को अपने पुत्र नचिकेता के लिए सुरक्षित रख लिया था तथा कुछ न देने योग्य वृद्धा गायों को ब्राह्मणों को दान करने हेतु रखा था। यज्ञ में सब कुछ दान कर देने के पश्चात् भी कुछ ब्राह्मणों को दान देना शेष रह गया था ।अतः उस ऋषि ने उस न देने योग्य गायों को दान में देना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार की अदेय वस्तुओं को दान करने का शास्त्र में निषेध किया गया है। ऐसा दान करने से दाता को पुण्य के स्थान पर पाप की प्राप्ति होती है और नरक का भागी बनना पड़ता है। इस सिद्धान्त को उद्दालक का पुत्र नचिकेता अच्छे प्रकार से जानता था अतः जब उसने पिता को इस प्रकार का दान करते हुए देखा तो वह सोचने लगा-

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रयाः ।

अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ताः ददत् ।।

अर्थात् ऐसी गाय जिनमें जल पीने की,भोजन करने की भी शक्ति नहीं हैं। जिनका दुग्ध दुहा जा चुका है तथा जो सन्तान पैदा करने में भी सक्षम नहीं है। पिता के द्वारा ऐसी गायों का दान करने पर उनको आनन्द से रहित विविध नरक लोकों का भोग करना पड़ेगा। पुत्र का यह कर्तव्य है कि वह अपने पिता को नरक में जाने से बचायें। जैसा कि पुत्र शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्माद् त्रायते पितरं सुतः।

तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव पितरं सुतः।।

इस प्रकार से नचिकेता ने यह विचार किया कि मेरे पिता मेरे मोह में फंसकर कुछ गायों को मेरे लिए बचा कर रख रहे हैं क्योंकि मै ही उनका सर्वाधिक व्यक्ति हूँ। क्योंकि पिता उद्दालक के द्वारा किये जाने वाले इस यज्ञ का नाम सर्वमेध है और इस यज्ञ में यज्ञकर्ता को अपना सर्वस्व दान करना होता है तो इस दृष्टि से मेरे पिता को मेरा भी दान करना होगा। अतः यदि मेरे पिता मेरा ही दान कर दें तो मेरे लिए उत्तम गायों को बचा कर

रखने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा और पिता नरक भोगने से भी बच जायेगें। अतः सम्यक् प्रकार से विचार करने के उपरान्त उस धर्मात्मा नचिकेता ने अपने पिता से तीन बार पूछा कि आप मुझे किसको दान करेगें। बारम्बार पूछने पर पिता ने क्रोध में आकर के कहा कि मैं तुम्हें मृत्यु को दान करूँगा। तद्यथा-

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति।

द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ।।

किन्तु ऐसा कहने पर पिता उद्दालक को अत्यन्त शोक तथा दुःख होने लगा। नचिकेता ने जब देखा कि मेरे पिता को अत्यन्त पश्चाताप हो रहा है तो नचिकेता ने अपने पिता के इस शोक को दूर करने हेतु कहा कि आप पश्चाताप न कीजिए तथा हमारे पूर्वजों को देखिये कि वे जो कहते है , वही करते थे और अपने कहे पर शोक भी नहीं करते थे अतः आप भी वैसा ही कीजिये।

इसके अनन्तर नचिकेता मृत्यु के समीप चला जाता है परन्तु मृत्यु के देवता यमराज वहाँ उपलब्ध नहीं थे। अतः यमराज के वहाँ ना होने पर नचिकेता अन्न-जल को त्याग कर उनके द्वार पर ही उनकी प्रतीक्षा करने लगता है। तीन दिन पश्चात् जब यमराज आते है तो उनको अपनी पत्नी से ज्ञात होता है कि एक अतिथि उनके द्वार पर विगत 3 दिन से बिना अन्न-जल को ग्रहण किये प्रतीक्षा कर रहा है। जिस गृहस्थ के घर पर इस प्रकार से अतिथि भूखा पड़ा रहता है तो उस गृहस्थ के समस्त पुण्यों को नष्ट कर देता है। अतः आप सर्वप्रथम उस अभ्यागत का सम्मान करें। यह जानकर यमराज तुरन्त अपने दरवाजे पर जाकर नचिकेता को प्रणाम कर उनसे क्षमा याचना करते हुए प्रत्येक रात्रि के लिए एक-एक वर मांगने के लिए कहा। यह सुनकर नचिकेता ने प्रथम वर की याचना करते हुए कहा कि मेरे पिता मेरे लिए अत्यन्त चिन्तित है, जिसके कारण उनका मन उद्विग्न है और वह विश्वजित यज्ञ का सम्पादन सम्यक् प्रकार से नहीं कर पा रहे है अतः उनको यज्ञ से प्राप्त होने वाले पुण्य का लाभ नही हो पाएगा अतः उसने यम से कहा कि मेरे पिता प्रसन्न , क्रोधरहित तथा शान्तमन वाले हो जायें तथा यहां से लौटकर जब मैं उनके पास जाऊँ तो वे मुझसे प्रेमपूर्वक ही व्यवहार करें यही मेरा प्रथम वर है। यम ने उसको प्रथम वर प्रदान करने के पश्चात् दूसरा वर मांगने के लिए कहा।तब नचिकेता ने कहा कि स्वर्गकामो यजेत्- ऐसा सुना जाता है तो स्वर्ग क्या है ? स्वर्ग की प्राप्ति किस प्रकार से हो सकती है ? ऐसा कौन सा यज्ञ है जिसको करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है – यही मैं दूसरे वर के रूप में याचना करता हूँ। तब यमराज ने नचिकेता को उस यज्ञ के विषय में विस्तृत ज्ञान दिया जो स्वर्ग की प्राप्ति का साधनभूत था। तत्पश्चात् यमराज ने नचिकेता से बताये हुये विषय को पूछकर नचिकेता की परीक्षा भी ली परन्तु नचिकेता ने बतायें हुयें विषय को ज्यों का त्यों सुना दिया। यह सुनकर यमराज ने प्रसन्न

होकर एक वर अपनी ओर से नचिकेता को प्रदान करते हुए कहा कि आज से यह अग्नि नचिकेता अग्नि के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध होगी। तृतीय वर के रूप में नचिकेता ने यमराज ने मृत्यु के रहस्य तथा आत्मज्ञान की याचना की । परन्तु यमराज ने इस ज्ञान की गोपनीयता के रक्षण हेतु तथा नचिकेता की परीक्षा लेने हेतु उसको अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर इस वर को ना मांगने को कहा परन्तु नचिकेता उसी वर को मांगने के लिए अड़ा रहा क्योंकि वह इस संसार की नश्वरता तथा समस्त भौतिक पदार्थों की क्षणभँगुरता से परिचित था अतः यमराज ने उसको यह वर भी प्रदान किया और आत्मज्ञान को प्राप्त कर नचिकेता ने इस समस्त मानवजाति के लिए मोक्षप्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त किया।

इस सम्पूर्ण कथानक में मृत्यु तथा यमराज के विषय में चर्चा प्राप्त होती है। अगर इस सम्पूर्ण प्रसङ्ग का विश्लेषण किया जायें तो यह ज्ञात होता है कि यमराज अथवा मृत्यु कोई व्यक्तिविशेष नहीं जिसका कोई अपना घर हो और कुटुम्ब हो , जिसके घर पर अतिथियों का आवागमन होता रहता हो, अपितु किसी प्राणी की आयु का समाप्त होना ही मृत्यु कहलाता है। आयु की समाप्ति कोई शरीरधारी कैसे हो सकता है ? अगर आप शास्त्रों में प्रदत्त विवरणों का अध्ययन करेंगे तो ज्ञात होगा कि यमराज का एक नाम वैवस्वत भी है। वैवस्वत का अर्थ है कि जो विवस्वान्(सूर्य) से उत्पन्न हुआ हो। सूर्य ही काल का नियामक होता है और आप जानते ही है कि यम अथवा मृत्यु को भी काल कहा जाता है।यह काल भी कोई शरीरधारी व्यक्ति नहीं है। अतः यमराज और नचिकेता की कथा एक रूपक अलङ्कार द्वारा वर्णित कथा है। भारतीय वाङ्मय में परमात्मा की तीन विशिष्ट शक्तियाँ मानी गई है-

1. **सृष्टि उत्पादिका शक्ति**
2. **पालनकर्त्री शक्ति**
3. **संहारक शक्ति**

इनमें से तृतीय संहारक शक्ति को ही मृत्यु कहा जाता है। आत्मतत्व की दृष्टि से परमात्मा निराकार तथा अव्यक्त और विश्वरूप की दृष्टि से परमात्मा को विश्वरूप कहा गया है ।इस दृष्टि से भी उसके यहाँ अतिथि का आना , उसका भूखा रहना और मृत्यु के अन्दर घबराहट का पैदा होना सम्भव प्रतीत नहीं होता। कुछ लोगों की यह मान्यता है कि यम एक देवताविशेष है जो यमपुरी का राजा है तथा सूर्य का पुत्र है तथा उसका मन्त्री चित्रगुप्त है। यह विचार भी काल्पनिक सा प्रतीत होता है जो मानव-मात्र को सत्कर्म की प्रेरणा हेतु शास्त्रों में वर्णित किया गया है।

मृत्यु के सम्बन्ध में एक विचार यह भी है कि गुरु ही मृत्यु है। जब अध्ययन की दृष्टि से बालक गुरुकुल में जाता है तब वह एक प्रकार से मृत्यु को समर्पित होता है।

उसको जन्म देने वाले माता-पिता से उसका सम्बन्ध छूट जाता है और गुरु ही उसका पिता के समान पालन-पोषण करता है तथा विद्या ही उसकी माता होती है , वह विद्या रूपी माता की जितनी उपासना-अराधना करता है ,भविष्य में उसका उतना ही अभ्युदय होता है। वस्तुतः गुरु के सान्निध्य में आकर ही बालक का दूसरा जन्म होता है। अतः जब बालक गुरुकुल से स्नातक बनकर गुरु के सान्निध्य में शास्त्रों का अध्ययन कर बाहर निकलता है तो उसको द्विजन्मा कहते है। प्रथम जन्म जो उसको माता के गर्भ से प्राप्त होता है परन्तु वह अज्ञानग्रसित होता है , उसकी मृत्यु हो जाती है और वह गुरु के सान्निध्य में रहकर ज्ञान से परिपूर्ण होता है। इस प्रकार से वह विद्यामाता के गर्भ में प्रविष्ट होता है तथा अध्ययन की समाप्ति होने पर होने वाले समावर्तन संस्कार के अवसर पर वह नयें जन्म को प्राप्त करता है , इसलिए ही गुरु को मृत्यु कह कर सम्बोधित किया गया है। अथर्ववेद में गुरु के लिए इसी प्रकार की मृत्यु संज्ञा प्रयुक्त की गई है। तद्यथा

आचार्यो मृत्युः

कुछ अन्य ग्रन्थों में भी मृत्युराचार्यस्तव कह कर ब्रह्मचारी का गुरु को किया गया सम्बोधन प्राप्त होता है। इसी प्रकार से अथर्ववेद में ब्रह्मचारी ने भी आचार्य का सान्निध्य प्राप्त होने पर स्वयं को मृत्यु को प्राप्त होने वाला ब्रह्मचारी कहा है। तद्यथा-

मृत्योरहं ब्रह्मचारी

इस प्रकार से नचिकेता ने ज्ञान की प्राप्ति हेतु अपने गुरु यम का सान्निध्य प्राप्त किया। नचिकेता यमराज के घर जाने पर तीन रात्रियों तक भूखा रहा , वस्तुतः रात्रि का भाव अज्ञान से है। तीन प्रकार के अज्ञानों से मानव अभिभूत रहा करता है। वे अज्ञान है-

1. **आत्मिक**
2. **दैविक**
3. **भौतिक**

वस्तुतः ये तीन प्रकार के अज्ञान ही तीन रात्रियां है।ब्रह्मचारी को वास्तविक बुभूक्षा अज्ञान की ही होती है। एक जिज्ञासु की तरह ही नचिकेता भी यमराज के पास अपनी ज्ञान की बुभुक्षा को शान्त करने के लिए ही आया है। नचिकेता ने सर्वप्रथम भौतिक और तदनन्तर दैविक तथा तत्पश्चात् आत्मिक ज्ञान को प्राप्त किया है। अतः उसने यमराज से प्राप्त तीन वरों के रूप में तीन प्रश्नों के माध्यम से अपनी इन तीनों प्रकार की जिज्ञासाओं को शान्त करने का ही प्रयास किया है। ये तीन वर यमराज अपने अतिथि नचिकेता को तीन रात्रियों तक भूखे रहने के कारण प्रदान करता है। तीन रात्रियों तक भूखे रहने का भाव अथर्ववेद के निम्नलिखित मन्त्र द्वारा स्पष्ट होता है –

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।

तं रात्रीस्तिस्त्रः उदरे बिभर्ति तं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ।।

अथर्ववेद के इस मन्त्र का अभिप्राय है कि आचार्य ब्रह्मचारी का उपनयन करता है। उपनयन के समय ब्रह्मचारी विद्यामाता के गर्भ में रहता है । वह तीन रात्रियों तक आचार्य के सान्निध्य में विद्यामाता के गर्भ में रहता है । जब वह दीक्षित होकर के बाहर निकलता है तो देवगण भी उसके दर्शन करने के लिए प्रकट होते है । इस मन्त्र में आचार्य के घर तीन रात्रियों तक रहने का उल्लेख किया गया है । वस्तुतः आत्मिक, दैविक तथा भौतिक ये तीन प्रकार के अज्ञान ही तीन रात्रियों के सूचक है । इन तीनों प्रकार के अज्ञान का विनाश कर वह सर्वदा ज्ञान प्राप्ति का इच्छुक होता है ।क्योंकि वह ज्ञान का भूखा होता है अतः वह अपने गुरु यमराज के पास तीन रात्रियों तक भूखा रहा । इस मन्त्र के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी सुयोग्य गुरु अथवा आचार्य के पास एक जिज्ञासु शिष्य जब जाता है तो वह निश्चित ही ज्ञानवान हो जाता है । नचिकेता तथा यम के इस पारस्परिक संवाद को कुछ विद्वानों ने सत्य माना तो कुछ ने इसको काल्पनिक कहा परन्तु चाहे हम इस संवाद को वास्तविक माने चाहे काल्पनिक माने परन्तु जिन सिद्वान्तों का प्रतिपादन इस संवाद के माध्यम से कठोपनिषद में किया गया है वे सिद्धान्त नितान्त सत्य ,प्रामाणिक और वेदानुकूल है – इसमें कोई संदेह नहीं है ।

4.3.1 नचिकेता कथानक का सूक्ष्म विश्लेषण

आपने नचिकेता और मृत्यु के देवता यम का संवादात्मक कथानक का अध्ययन किया । वस्तुतः नचिकेता द्वारा याचित तीनों वरों का सम्बन्ध इस लोक,परलोक तथा आनन्दलोक से है। उसका प्रथम वर इस लोक से सम्बन्धित था। उसके पिता बारम्बार नचिकेता के प्रश्न पूछने पर अत्यन्त क्रोधित हो गये थे , वे असन्तुष्ट हो गये थे तथा जब उनकी आज्ञा का पालन करते हुए नचिकेता जब मृत्यु के देवता के पास चला गया तो वह गहन शोक में डूब गयें । पिता की इस मानसिक स्थिति के कारण नचिकेता अत्यन्त चिन्तित था अतः उसने पुत्र के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए कहा कि पुत्र अपने पिता को शान्त, आनन्दयुक्त और प्रसन्नचित्त रखें । उसका क्रोध दूर करें और सर्वदा उत्तम व्यवहार करें । वह ऐसी व्यवस्था करे जिससे रात्रि के समय पिता को उत्तम निद्रा आयें । अतः उसने प्रथम वर के रूप में पिता के चित्त के लिए शान्ति, आनन्द और प्रसन्नता की कामना की । तद्यथा-

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्,वीतमन्युर्गतिमो माऽभि मृत्यो।

त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत् प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ।।

इस प्रकार से नचिकेता की अपने पिता के सम्बन्ध में इस चिन्ता के शमन हेतु यम ने नचिकेता को उसके पितृ-परितोष रूप इस प्रथम वर को प्रदान किया जो कि इह-लोक से सम्बन्धित था। द्वितीय वर परलोक विषयक है। इस वर में नचिकेता ने आचार्य यम से स्वर्ग की साधनभूत अग्नि के बारे में जिज्ञासा प्रकट की , जिस अग्नि का अनुष्ठान करने से मनुष्य स्वर्गलोक की प्राप्ति कर लेता है। उस अग्नि का ज्ञान प्राप्त कर नचिकेता यम को उस अग्निचयन के विषय में उसी प्रकार से सुना देता है। इससे प्रसन्न होकर यम उस अग्नि का नाम नाचिकेताग्नि ही कर देता है। तृतीय वर आनन्द लोक की प्राप्ति के सम्बन्ध में है। इस लोक की प्राप्ति का प्रधान साधन आत्मज्ञान है। अतः नचिकेता का तृतीय वर आत्मतत्व विषयक है। मृत्यु के देवता यम श्रेय तथा प्रेय को स्पष्ट करते हुए बताते है कि मनुष्य को क्षणिक सुख प्रदान करने वाले भोगपदार्थ प्रेय होते है तथा मनुष्य को सच्चा कल्याण प्रदान करने वाले पदार्थों को श्रेय कहलाते है। जो व्यक्ति ज्ञानमार्ग का पथिक बनकर उस आत्मतत्व की प्राप्ति का इच्छुक होता है।वह इसी श्रेय मार्ग पर चलता हुए क्षणिक भोगों को त्यागकर आत्मज्ञान को प्राप्त करता है। इस आत्मज्ञान की प्राप्ति किसी उत्तम गुरु की शरणागत होकर ही प्राप्त हो सकती है। बुद्धिरूपी गुहा में स्थित उस आत्मा को अध्यात्म योग के द्वारा जानकर मनुष्य हर्ष-शोक आदि से रहित होकर उस महान् आनन्द का अनुभव किया करता है कि जिसके लिये वह निरन्तर प्रयत्नशील था। तद्यथा-

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ।।

मृत्यु के देवता यम ने उस परम तत्व के रूप में ओ३म् इस अक्षर का उपदेश किया। यह वहीं परमतत्व है, जिसका उपदेश वेदों में किया गया है। तद्यथा-

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदे संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।।

यह वही आत्मतत्व है जिसको जानकर मनुष्य मोह-शोक रहित हो जाता है। इस प्रकार से उपनिषद के ऋषि ने यम-नचिकेता संवाद के माध्यम से सम्पूर्ण मानवजाति को सत्कर्म करने की प्रेरणा देते हुए इहलोक और परलोक साधन का मार्ग प्रशस्त किया।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

16.आत्मा अजर, अमर और सनातन है।

17.यम-नचिकेता संवाद ईशावास्योपनिषद में वर्णित है।

18.नचिकेता के पिता का नाम उद्दालक है।

19.उद्दालक ने सर्वमेध यज्ञ किया।

20.नचिकेता यमपुरी में सात रात्रियों तक भूखा रहा।

21.नचिकेता ने यम से पाँच वर माँगे।

22.नाचिकेताग्नि स्वर्ग को देने वाली है।

4.3.2 मृत्यु के प्रकार

जैसा कि आपने प्रस्तुत इकाई में मृत्यु के देवता यम तथा नचिकेता के संवाद के माध्यम से मृत्यु के रहस्य को जाना तथा किस प्रकार से मानव को इस संसार में आवागमन से मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? इसके विषय में भी विस्तृत विवेचन कठोपनिषद में प्राप्त होता है। इस भौतिक देह का संसार में आना उस प्राणी का जन्म कहलाता है तथा उस भौतिक देह का इस संसार से चले जाना ही उस प्राणी की मृत्यु कहलाता है परन्तु शास्त्रों में केवल भौतिक शरीर के विनाश को ही मृत्यु नहीं माना गया अपितु इस संसार में रहते हुए विविध परिस्थितयों को भी मृत्यु ही माना गया है। क्योंकि जब यह आत्मा इस शरीर से निकलती है तो इस शरीर को जो कष्ट होता है वैसा ही कष्ट इस संसार में रहते हुए विविध प्रकार की परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर होता है। इन परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुए कष्ट के कारण जो दुःख प्राप्त होता है वह मृत्यु के तुल्य ही होता है। ऐसी आठ प्रकार की परिस्थितियों के कारण शास्त्रों ने मृत्यु को भी आठ प्रकार का ही माना है। तद्यथा-

व्यथा दुःखं भयं लज्जा रोगः शोकस्तथैव च।

मरणं चापमानं च मृत्युः अष्टविधं स्मृतम्॥

आठ प्रकार की मृत्यु में से प्रथम प्रकार की मृत्यु व्यथा है। जब किसी प्राणी का मन व्यथित होता है तो संसार के समस्त सुखों की उपलब्धता होने पर भी वह प्रसन्न नहीं होता। वह उसी चिन्ता में सर्वदा व्यथित रहता है। संसार के समस्त सुख-संसाधन भी उसकी व्यथा को शान्त नहीं कर पाते। मानसिक व्यथा की इस स्थिति को किसी भी व्यक्ति का मरण ही माना गया है। इसी को प्रथम प्रकार की मृत्यु माना गया है। मृत्यु का दूसरा प्रकार दुःख है। यदि कोई व्यक्ति अपनी संतान के दुःख से दुःखी हो अथवा अपने काम-काज से दुःखी हो तो वह सर्वविध शारीरिक सौष्ठव के होने पर भी इस दुःख से दुःखी रहता है। यही मृत्यु का दूसरा भेद माना गया है। मृत्यु का तीसरा भेद भय है। जब कोई मनुष्य अपने शत्रु से भयभीत रहता है अथवा उसको किसी प्रकार की हानि का भय रहता है। वह सर्वदा किसी ना किसी भय से आक्रान्त रहता है तो सर्वविध सुख

– सुविधा आदि से सम्पन्न होने पर भी वह विविध भोगपदार्थों का आनन्द लेने में सक्षम नहीं होता। यह स्थिति भी किसी मनुष्य के लिए मृत्यु के ही समान मानी गई है। मृत्यु के चतुर्थ भेद के रूप में लज्जा को माना जाता है। जब कोई मनुष्य अपनी इच्छा से अथवा अज्ञानतावश किसी ऐसे कार्य को कर देता है , जिसके कारण वह सर्वत्र और सर्वदा एक लज्जा के भाव से ग्रसित रहने लगता है और उसको सर्वदा उस गोपनीय कार्य के प्राकट्य का ही भय सताता रहता है तो यह स्थिति भी मृत्यु के समान ही मानी गई है। मृत्यु के तीसरे भेद के रूप में रोग को माना गया है। जब कोई मनुष्य किसी असाध्य रोग से ग्रसित हो जाता है , तब वह समस्त सुखों तथा भोगों की उपलब्धता होने पर भी असाध्य रोग से ग्रसित होने के कारण उन भोगों का भोग करने में समर्थ नहीं होता। ऐसी शरीर के रोगी होने की स्थिति को भी मृत्यु के समान ही दुःखदायी माना गया है। मृत्यु का एक भेद शोक है। जब किसी व्यक्ति के किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है अथवा वह अपने किसी प्रियजन से बिछुड़ जाता है तो वह शोकग्रसित हो जाता है। शोक की यह स्थिति अत्यन्त कष्टकारक होती है। शोक की इस स्थिति में मनुष्य की संसार के समस्त पदार्थों में अरुचि उत्पन्न हो जाती है। समस्त भौतिक सुख-संसाधनों के होने पर भी उस व्यक्ति का मन उन भोगपदार्थों में नहीं लगता है। अतः इस अवस्था को भी मरण का ही एक भेद माना गया है। अपमान को भी मृत्यु का ही एक प्रकार माना गया। श्रीमद्भगवद्गीता में तो अकीर्ति को मरण से भी बढ़कर कहा गया है। यथोक्तम्-

अकीर्ति मरणादतिरिच्यते ॥

जब किसी व्यक्ति का भरी सभा में अपमान हो जाता है तो वह सामाजिक रूप से स्वयं को अपमानित अनुभव करता है। इस अपमान के कारण वह समाज में आमजनों के मध्य में आने-जाने से भी कतराने लगता है। अपमान की यह अवस्था सर्वविध भौतिक सुखों की उपलब्धता होने पर भी अवसाद को प्रदान करने वाली होती है अतः इस स्थिति को भी मृत्यु का ही एक भेद माना गया है। मृत्यु का अन्तिम भेद मृत्यु अर्थात् इस पाञ्चभौतिक शरीर का विनाश होना है। इस प्रकार से मृत्यु के आठ प्रकारों की चर्चा प्राप्त होती है , जिनमें से अन्तिम प्रकार तो इस शरीर का विनाश होना ही है। उसके अतिरिक्त शेष प्रकारों में मानव की स्थिति इस प्रकार की हो जाती है , जिनमें उसके शरीर का विनाश तो नहीं होता परन्तु जो कष्ट उसको अनुभव होता है , उस कष्ट के कारण उसका इस शरीर से मोह भंग हो जाता है। कुछ मनुष्य जो शास्त्रवेत्ता होते है वे भी ऐसी स्थिति में विचलित हो जाते है और जो साधारण मनुष्य है वे तो ऐसी परिस्थिति के उत्पन्न होने पर आत्महत्या जैसा जघन्य पाप भी कर बैठते है। इस प्रकार से आपने प्रस्तुत इकाई में मृत्यु के आठ भेदों को ज्ञान प्राप्त किया। अब मृत्यु के काल के विषय में संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की जाएगी।

4.3.3 मृत्यु का काल

ज्योतिषशास्त्र ग्रहों की स्थिति का विश्लेषण कर किसी मनुष्य को उसके जीवनकाल में प्राप्त होने वाले शुभाशुभत्व का विचार करता है। आयुर्वेद के आचार्यों ने भी विविध प्रकार के रोगों का विचार करते हुए कहा है कि सर्वप्रथम रोगी की आयु का विचार करना चाहिए तदनन्तर ही उसकी चिकित्सा में प्रवृत्त होना चाहिए।

यथोक्तम्-पूर्वमायुः परीक्षेत् ।।

ज्योतिषशास्त्र में आयु का निर्णय ग्रहों के योग,निसर्गादिभेद एवं दशा के द्वारा किया जाता है। विभिन्न योगों के द्वारा निर्णीत आयु को योगायु तथा दशाओं के द्वारा निर्णीत आयु को दशायु कहते है। योगायु का निर्णय करने हेतु ज्योतिषशास्त्र में 6 योगों की चर्चा की गई है। तद्यथा-

1. सद्योरिष्ट योग
2. अरिष्ट योग
3. अल्पायु योग
4. मध्मायु योग
5. दीर्घायु योग
6. अमितायु योग

इनमें से सद्योरिष्ट योग में जातक की आयु केवल 1 वर्ष तक की ही होती है। 1 वर्ष के मध्य ही उस जातक की मृत्यु होने की सम्भावना होती है। अरिष्ट योग होने पर जातक की आयु 2 वर्ष से 12 वर्ष तक होती है। अर्थात् जातक की मृत्यु 2 से लेकर 12 वर्ष के मध्य होने की सम्भावना होती है।अल्पायु योग होने पर जातक की आयु अधिकतम 23 वर्ष की होती है। मध्मायु होने पर जातक की आयु अधिकतम 70 वर्ष की हो सकती है। दीर्घायु होने पर जातक की मृत्यु 100 वर्ष में होती है तथा अमितायु होने पर जातक की आयु 100 वर्ष से भी अधिक होती है। इनमें से सद्योरिष्ट योग तथा अरिष्ट योग होने पर मृत्यु के काल के ज्ञान हेतु ग्रहों की दशाओं का विचार नहीं किया जाता। इन दोनों योगों में ग्रहों के योग का ही प्रभाव ही अधिक होता है अतः योग के प्रभाव स्वरूप शुभ या अशुभ किसी भी दशा में जातक की मृत्यु होने की सम्भावना रहती है अतः ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों के निर्देशानुसार जातक की आयु 12 वर्ष होने पर ही जातक की आयु का निर्णय किया जाता है। शेष अल्पायु,मध्मायु तथा दीर्घायु में मारकेशादि की दशा के आधार पर ही व्यक्ति के मृत्यु काल का निर्णय किया गया है। तात्पर्य यह है कि सद्योरिष्ट तथा अरिष्टयोग में मृत्यु काल का निर्णय योग या गोचरीय ग्रहस्थिति के आधार पर ही हो जाता है। शेष में मृत्यु का निर्णय मारकेशों की दशा तथा भुक्ति के आधार पर किया जाता है। अमितायु योग होने पर जातक की आयु 100 वर्ष से अधिक होने के कारण जातक के मृत्यु काल का विचार नहीं किया जाता। इन 6 प्रकार की आयु के विविध योगों की विस्तृत चर्चा गत इकाई में प्रस्तुत की गई। इसके अतिरिक्त निसर्गायु,पिण्डायु,लग्नायु तथा अंशकायु की चर्चा ज्योतिषग्रन्थों में प्राप्त होती है। लग्नेश,सूर्य तथा चन्द्रमा के बली होने पर इनमें से विविध प्रकार की आयु का ग्रहण किया जाता है। जिसकी विस्तृत चर्चा भी पूर्व इकाईयों में प्रदान की गई। इसके

अतिरिक्त विविध प्रकार की मृत्यदायक दशाओं तथा अन्तर्दशाओं के माध्यम से भी मृत्युकाल का निर्धारण ज्योतिषग्रन्थों में किया गया है।

अभ्यास प्रश्न-2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

16.मृत्यु के............प्रकारहै।
17............मृत्यु का प्रथम प्रकार है।
18............. को मृत्यु से भी बढ़कर माना जाता है।
19.ज्योतिषशास्त्र में सर्वप्रथम...........के परीक्षण का निर्देशहै।
20.सद्योरिष्टयोग में जातक की आयु...........वर्ष होती हैं।
21.अल्पायु योग में जातक की अधिकतम आयु.......... वर्ष है।
22.100 वर्ष से अधिक आयु .... कहलाती है।

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि मृत्यु इस संसार का शाश्वत सत्य है। प्रत्येक जीव के मन में यह प्रश्न होता है कि मनुष्य का मृत्यु के पश्चात् क्या होता है ? स्वर्ग और नरक क्या है तथा इनकी प्राप्ति कैसे होती है ? इसका उत्तर अगर कोई इस संसार में दे सकता है तो मृत्यु का देवता यमराज ही दे सकता है क्योंकि कोई भी प्राणी जब मृत्यु को प्राप्त कर लेता है तो वह इस भौतिक संसार के प्राणियों के सम्पर्क में नहीं रहता तथा उसको जीव अपनी इन्द्रियों के माध्यम से नहीं देख पाता अतः मृत्यु के बाद उसकी क्या स्थिति हुई ? यह मृत जीव कदापि बता नहीं सकता। मृत्यु के पश्चात् की परिस्थिति को मृत जीव तथा यमराज के अतिरिक्त तो कोई जानता ही नहीं है। अतः उपनिषद के ऋषि ने मृत्यु के देवता यमराज के माध्यम से मृत्यु के रहस्य से ना केवल पटाक्षेप किया अपितु व्यक्ति किस प्रकार से जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो सकता है ? इसका भी रहस्योद्घाटन किया। यमराज के द्वारा प्रदत्त तीनों वरों का सूक्ष्म विश्लेषण भी आपने इस इकाई में पढ़ा। तदनु मृत्यु के व्यथादि अष्ट प्रकारों तथा मृत्यु के काल के ज्ञान के सम्बन्ध में चर्चा की गई। व्यथा , दुःख, भय,लज्जा,रोग, शोक, अपमानादि को मृत्यु के समान ही माना गया है। इसी प्रकार किसी भी जातक की मृत्यु के काल के ज्ञान के सम्बन्ध में उसकी जन्मकालिक ग्रहस्थिति के आधार पर उसके

सद्योरिष्ट,अरिष्ट,अल्पायु, मध्यमायु, दीर्घायु तथा अमितायु के योगों का विचार करने की बात कही गई। इनमें से किसी भी योग के उपस्थित होने पर जातक के ग्रहों की दशा तथा भुक्ति के आधार पर मृत्यु का काल निर्धारण किया जाता है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

15.यमराज-भारतीय परम्परा में यमराज को मृत्यु का देवता माना जाता है। जो विविध प्राणियों को उनके शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग-नरक तथा मृत्यु लोक में भेजता है।

16.सर्वमेध-एक यज्ञ है जिसमें यज्ञ करने वाले को अपना सर्वस्व दान करना होता है। नचिकेता के पिता उद्दालक ने इसी यज्ञ का आयोजन किया था।

17.आत्मज्ञान-भारतीय परम्परा में जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त होने हेतु तथा ईश्वर की प्राप्ति करवाने के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता होती है , उसी को आत्मज्ञान कहा गया है। यहीं आत्मज्ञान नचिकेता को यमराज प्रदान करते है।

18.नाचिकेताग्नि-यह यज्ञ की एक अग्नि है जो स्वर्ग को देने वाली है। इसी यज्ञाग्नि का उपदेश यमराज ने नचिकेता को किया तथा नचिकेता ने उसको सुनते ही कण्ठस्थ कर लिया। प्रसन्न होकर यमराज ने इस यज्ञाग्नि का नाम नाचिकेताग्नि कर दिया।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास-1 की उत्तरमाला-

25.सत्य।
26.असत्य।
27.सत्य।
28.सत्य।
29.असत्य।
30.असत्य।
31.सत्य।

अभ्यास-2 की उत्तरमाला-

16.आठ।
17.व्यथा।
18.अकीर्ति।

19.आयु।

20.1

21.23

22.अमितायु।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

19.बृहज्जातकम्, भट्टोत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999 ई।

20.फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946 ई।

21.लघुजातकम्, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

22.भावप्रकाश, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

23.ज्योतिषशास्त्र में रोग-विचार, प्रो शुकदेव चतुर्वेदी, मोती लाल बनारसी दास, नई दिल्ली- 2016 ई।

24.श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर।

4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिंह, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003

2.बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.लघु पाराशरी, पं. सीता राम झा, मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद,वाराणसी सम्वत् 2069।

5. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

9. मृत्यु के रहस्य पर निबन्ध लिखिए।
10. नचिकेता द्वारा माँगे गये तीनों वरों का सूक्ष्म विश्लेषण कीजिए।
11. मृत्यु के विविध प्रकारों का विस्तृत परिचय दें।
12. मृत्यु के कालज्ञान का विस्तृत परिचय दें।

इकाई -05 रोग निर्धारण के प्रमुख तत्व

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 ज्योतिष और आयुर्वेद का पारस्परिक सम्बन्ध
5.3.1 रोग-परिज्ञान के विविध उपकरण
5.3.2 रोगकारक ग्रहों का निर्धारण
5.3.3 रोगकारक भावों का निर्धारण
5.4सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री
5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1प्रस्तावना

सौर जगत् में स्थित ग्रहों तथा नक्षत्रों की गति और स्थिति हमें प्रभावित करती है , जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण सूर्यादि ग्रहों की विविध राशियों में संचार वशात् जलवायु में परिवर्तन का दिखाई देना है ।यह जलवायु परिवर्तन ही मनुष्य की सक्रियता और अकर्मण्यता का प्रमुख कारण है। ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य की सक्रियता का कम होना तथा शरद् ऋतु में बढ जाना इसी का प्रत्यक्ष प्रमाण है । पूर्णिमा तथा अमावस्या को ज्वारभाटा,तूफान तथा भूकम्प आदि की घटनाओं में वृद्धि का कारण सूर्य और चन्द्रमा में पारस्परिक आकर्षण तथा विकर्षण ही है। सूर्यादि ग्रहों का प्रभाव ना केवल प्रकृति पर अपितु सम्पूर्ण प्राणी मात्र को प्रभावित करता है। ग्रहों के इस प्रभाव को जानने के लिए हमारे ऋषियों ने योग को एक माध्यम बनाया। योग साधना के माध्यम से ऋषियों ने अपनी अन्तर्दृष्टि को इतना विकसित कर लिया कि वे समाधि की स्थिति में जाकर इस ब्रह्माण्ड के समस्त रहस्यों को जानने में सक्षम हो गयें। उन्होंने ग्रहों के सूक्ष्मतम प्रभाव को जानकर एक विशेष ग्रहस्थिति में कुछ विशेष घटनाओं की पुनरावृत्ति होने पर उसका विश्लेषण किया और उनको विविध सिद्धान्तों के रूप में ज्योतिषशास्त्रों के ग्रन्थों में समाहित किया । इन सिद्धान्तों के अध्ययन से तथा किसी जातक की जन्मकुण्डली के विश्लेषण से एक विद्वान दैवज्ञ को यह ज्ञात हो सकता है कि जातक अपने जीवन के किस कालखण्ड में किस प्रकार का शुभाशुभ फल प्राप्त करेगा।

भारतीय परम्परा में पूर्वजन्म की अवधारणा है। व्यक्ति को अपने जीवन में प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फल का आधार पूर्वजन्म के किये गयें कर्म ही माने जाते है। वैदिक दर्शनों के अनुसार कर्म के तीन भेद है – संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म और क्रियमाण कर्म। किसी के द्वारा वर्तमान क्षण तक किये गये कर्म- चाहे वे इस जीवन के हो या जन्मान्तरों के हो- उनकों संचित कर्म कहते है। संचित कर्म के उस भाग को प्रारब्ध कहते है , जिनका फल मिलना प्रारम्भ हो चुका हो। जिन कर्मों को हम वर्तमान में कर रहे है अथवा भविष्य में करेंगे वे सब क्रियमाण कर्म कहलाते है। फल प्राप्ति की दृष्टि से जन्म-जन्मान्तरों से लेकर आज तक के कर्मों का फल संचित फल कहलाता है। संचित कर्मों में से कुछ कर्म पुण्यकर्म तथा कुछ कर्म पाप कर्म होते है ,जिनका फल परस्पर विरुद्ध होता है अतः उनका फल एक साथ भोगना सम्भव नहीं है। परिणामतः संचित कर्मों में से जितने कर्मों का फल भोगने के लिए मनुष्य को यह जीवन मिला है ,संचित कर्मों के उसी को प्रारब्ध कर्म कहते है।जो कर्म वर्तमान में किए जा रहे है या भविष्य में किये जायेंगे , उनके फल को ही क्रियमाण कर्मों का फल कहा जाता है। मनुष्य इसी कर्मबन्धन में बंधा हुआ है और कर्मबन्धन के कारण उसको इन कर्मों के फल को भोगना पडता है। यथोक्तम्-

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्

यद्यपि मनुष्य कर्म को करने में स्वतन्त्र है परन्तु उस किए हुयें कर्म का फल भोगने में स्वतन्त्र नहीं है। एक बार जो कर्म कर दिया जाता है , उसका फल निश्चित रूप से भोगना ही पडता है। बिना भोगे वह फल कथमपि नष्ट होने वाला नहीं है। यथोक्तम्-

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।

हमारे जीवन में उत्पन्न होने वाले रोग इन्हीं त्रिविध कर्मों के परिणाम है। मनुष्य को होने वाले जन्मजात रोग तथा वंशानुक्रम से प्राप्त रोग हमारे संचित कर्मों के परिणाम है। जबकि महामारी,संक्रमण तथा अन्य दुर्घटना से होने वाले रोग या अंगभंग आदि प्रारब्ध कर्मों के परिणाम होते है तथा अनुचित आहार विहार से उत्पन्न होने वाले रोगों का कारण क्रियमाण कर्म होते हैं। इन विविध रोगों के निर्धारण में कौन से प्रमुख तत्त्व हेतु है ? इसी के विषय में प्रस्तुत इकाई में चर्चा की जाएगी।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि -

- रोगज्ञान के प्रमुख उपकरणों को जान पाएगें।
- रोगज्ञान हेतु ग्रहों की भूमिका को जान सकेगें।
- रोगज्ञान में नक्षत्रों की भूमिका को जान पाएगें।
- रोगज्ञान में राशियों की भूमिका को जान सकेगें।
- अङ्गों के प्रतिनिधि भावों और राशियों को जान सकेगें।

5.3ज्योतिष और आयुर्वेद का पारस्परिक सम्बन्ध

जैसा कि आप जानते है कि समस्त भारतीय विद्याओं का मूल वेद ही है। समस्त भारतीय शास्त्र इसी वैदिक पृष्ठभूमि पर पल्लवित हुए है। अतः समस्त शास्त्रों के उद्देश्य में एकरूपता भी दृष्टिगोचर होती है। इनका ध्येय मानव मात्र के लिए इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट का परिहार करना है। समस्त भारतीय विज्ञान इसी दिशा में चिरकाल से कार्य कर रहे हैं। इनके उद्देश्य में एकरूपता होने के कारण ही इन शास्त्रों में एक पारस्परिक सम्बन्ध भी परिलक्षित होता है। प्रस्तुत इकाई में ज्योतषशास्त्र और आयुर्वेद के इसी पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में चर्चा की जाएगी। ज्योतिषशास्त्र की ही तरह आयुर्वेद ने भी कर्मप्रकोप तथा दोषप्रकोप को शरीर में समय-समय पर विविध प्रकार के रोगों की उत्पत्ति का कारण माना है। सामान्यतया रोग का मुख्य कारण मिथ्या आहार-विहार है। किन्तु किसी व्यक्ति का आहार-विहार भी पूर्णतया सन्तुलित हो तथा रोगोत्पत्ति का मौसम भी न हो, परन्तु फिर भी वह रुग्ण हो जाता है तो वह रोग कर्मजन्य ही होता है।इन

कर्मजन्य रोगों का ज्ञान केवल ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से ही हो सकता है। इनमें से संचित कर्मों के फल का विचार जन्मकुण्डली के योगों द्वारा होता है। प्रारब्ध कर्मों का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण कर्मों का विचार गोचर द्वारा किया जाता है। यही कारण है कि अन्धापन,कानापन,बहरापन,गूंगापन,लूलापन तथा किसी भी प्रकार की जन्मजात विकलांगता तथा जन्मजात अन्य रोगों का विचार करते समय जन्मकुण्डली के विविध योगों का विचार किया जाता है जबकि वात,पित्त और कफ आदि रोगों का विचार करते समय जन्मकुण्डली के विविध योगों के साथ-साथ दशाओं के विषय में भी चिन्तन किया जाता है ।अनियमित दिनचर्या ,महामारी तथा संक्रमण आदि रोग क्रियमाण कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होते है अतः इनके चिन्तन हेतु गोचर का विचार किया जाता है।

इस प्रकार से आयुर्वेद ने जिन रोगों को कर्मजन्य कहकर असाध्य कह दिया और ऐसे रोगों के निदान एवं चिकित्सा पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला- उन कर्मजन्य रोगों के होने की सम्भावना, उनका प्रारम्भ-समाप्ति और उनके शमन की विधियों का विचार ज्योतिषशास्त्र में विस्तार से किया गया है। इसको ही आयुर्वेद ने काल का अतियोग, अयोग तथा मिथ्यायोग कहा है और कालसम्प्राप्ति को भी रोगों का एक कारण माना है , जिसका विचार ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने किया है ।ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से यह जाना जा सकता है कि किसी रोग की समयावधि कितनी होगी ? क्या रोग साध्य है अथवा असाध्य ? यदि साध्य है तो कितने समय में ठीक होगा ?क्या रोगी को चिकित्सक की चिकित्सा से लाभ होगा अथवा नहीं ? ये कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न है , जिनका उत्तर चिकित्साशास्त्र की किसी भी पद्धति में प्राप्त नहीं होता अपितु केवल ज्योतिषशास्त्र में ही प्राप्त होता है। इसलिए ही ज्योतिर्वेद्यौ निरन्तरौ की कहावत प्राचीन भारतीय परम्परा से ही प्राप्त होती है। आयुर्वेदज्ञ को ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान होना भारतीय परम्परा में अनिवार्य माना गया है ताकि रोग साध्य है अथवा असाध्य है ? ना केवल इसका ज्ञान चिकित्सक को हो सके अपितु कर्मज रोग होने पर उसका उपचार ग्रह चिकित्सा के माध्यम से भी किया जा सके क्योंकि आयुर्वेद ने कुछ रोगों को केवल कर्मजन्य कह कर उनके निदान एवं चिकित्सा पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला है जबकि ज्योतिषशास्त्र के विविध आचार्यों ने इन कर्मज रोगों के विषय में विशद विवेचन अपने ग्रन्थों में किया है , जिनका ज्ञान चिकित्सक को होना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त भारतीय चिकित्सा परम्परा में स्वास्थ्य संरक्षणार्थ औषधि संचय, औषधि निर्माण एवं शल्य क्रिया में कालजन्य विशेषताओं को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। अविकृत ऋतु में औषधि का संचय तथा निर्माण करने से वह औषधि विशेष प्रभावशाली हो जाती है और ऋतु की विकृति से उत्पन्न रोगों का शमन करने में अत्यन्त गुणकारी हो जाती है। इसके अतिरिक्त चिकित्सा के लिए परमोपयोगी दिन,रात,सन्ध्या,नक्षत्र, पक्ष,

मास, ऋतु तथा पर्व आदि का ज्ञान भी इसी शास्त्र के अधीन है। अतः योग्य चिकित्सक को काल का सम्यक् विचार कर ही चिकित्सा करने की निर्देश आयुर्वेद के आचार्यों ने दिया है। जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष नियमों का ज्ञान रखते हैं तथा चिकित्सा में उनका प्रयोग करते है ,वे चिकित्सा में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं।

केवल चिकित्सक ही नहीं अपितु सामान्य व्यक्ति भी इस शास्त्र के सम्यक् ज्ञान से अनेक रोगों से बच सकता है। जैसा कि आप जानते है कि अधिकांश रोग सूर्य तथा चन्द्रमा आदि ग्रहों के प्रभाव के कारण ही उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी एक विशेष स्थिति के कारण समुद्र के अथाह जल में भी उथल-पुथल मचा देता है, उसी प्रकार से वही चन्द्रमा जब एक विशेष स्थिति में आता है तो मनुष्य के शरीर की रक्त संचार प्रणाली, स्नायु मण्डल एवं मन में उथल-पुथल पैदा कर निर्बल मनुष्य को रोगी बना देता है। इसलिए ज्योतिष द्वारा चन्द्रमा के तत्त्वों और उसके प्रभाव से प्रभावित होने वाले पदार्थों को जानकर अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को वैसे पदार्थों के सेवन पर आत्मनियन्त्रण रखकर मनुष्य स्वयं को रोगों के प्रकोप से बचा सकता है । काल विज्ञान, कर्मफलज्ञान, उत्पात ज्ञान, शकुनविद्या, सामुद्रिकविद्या, सर्वाङ्गलक्षण, आयुर्ज्ञान एवं मुहूर्तज्ञान आदि – ये सभी विज्ञान ज्योतिषशास्त्र की आयुर्वेद को ऐसी देन है, जिनका उपयोग भारतीय चिकित्सा पद्धति में पग-पग पर किया जाता है। आचार्य चरक तथा सुश्रुत की संहिताएं इसके जीवन्त प्रमाण है।

5.3.1रोग-परिज्ञान के विविध ज्योतिषीय उपकरण

जैसा कि आप जानते हैं कि पूर्व में भी कहा गया है कि अनुचित कर्मों के फलस्वरूप रोग पैदा होते है, वे कर्म चाहे इस जन्म के हो अथवा जन्मान्तरों के। इस जन्म के अनुचित कर्मों को आहार एवं विहार की अनियमितता कह सकते है , जब कि जन्मान्तरों के अनुचित कर्मों को भारतीय परम्परा में पाप कर्म कहा जाता है। जैसा कि आपने पूर्व में भी पढा कि जन्म-जन्मान्तरों से वर्तमान जीवन के आज और भविष्य तक के सभी कर्मों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है –

1. संचित कर्म
2. प्रारब्ध कर्म
3. क्रियमाण कर्म

इन कर्मों के फल को जानने की ज्योतिषशास्त्र में तीन प्रविधियां आविष्कृत एवं विकसित की गयी है। अतः रोग परिज्ञान के मुख्य रूप से तीन उपकरण माने गये हैं। तद्यथा-

1. योग
2. दशा
3. गोचर

ज्योतिषशास्त्र के होरा स्कन्ध की यह विशिष्टता है कि जन्म-जन्मान्तरों में किसी व्यक्ति द्वारा किये गये समस्त शुभाशुभ कर्मों का फल कब और किस प्रकार का प्राप्त होगा , उसका स्पष्ट प्राक्ट्य यह होराशास्त्र उसी प्रकार से करता है , जिस प्रकार से दीपक अन्धकार में रखे गये पदार्थों को अभिव्यक्त करता है। तद्यथा-

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पङ्कितम्।

व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥

रोगज्ञान का सबसे प्रमुख उपकरण ग्रह हैं। सूर्यादि ग्रह मनुष्य के शरीर के अङ्ग ,धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ये ग्रह अनिष्ट स्थान एवं पापप्रभाववश अनिष्टकारी हो जाते है , तब वह शरीर के जिस अङ्ग ,धातु या दोष का प्रतिनिधित्व करते है , उसमें विकार या रोग की सूचना देते है किन्तु यदि वे ग्रह शुभ स्थानों में तथा शुभ ग्रहों के प्रभाव में हो तो उन ग्रहों से सम्बन्धित शारीरिक अङ्गों तथा धातुओं को पुष्टता प्राप्त होती है ।इस प्रकार ग्रहों के माध्यम से विविध प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों का विचार किया जाता है।

इन रोगों के विचार हेतु विविध प्रकार के योगों को साधन रूप में प्रयोग किया जाता है। ये सभी योग ग्रह, राशि एवं भावों के पारस्परिक सम्बन्ध से निर्मित होते है ।इन योगों को सात भेदों में विभक्त कर विचार किया जा सकता है –

1. **राशि**
2. **भाव**
3. **ग्रह**
4. **राशि एवं भाव**
5. **राशि एवं ग्रह**
6. **भाव एवं ग्रह**
7. **राशि , भाव एवं ग्रह**

राशि से बनने वाले विविध योग-

किसी भी जातक का जन्म एक राशि विशेष में ही होता है , जिसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर सर्वदा दिखाई पडता है। इन द्वादश राशियों तथा इनके नवमांश आदि में उत्पन्न हुए जातकों को किस प्रकार के शुभाशुभ फल का भोग करना होगा तथा उनका स्वभाव, व्यक्तित्व आदि कैसा होगा- इसकी चर्चा ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने अपने विविध ज्योतिषीय ग्रन्थों में की है। उदाहरणार्थ – जातक पारिजात ग्रन्थ में मिथुन लग्न में उत्पन्न जातक के विषय में कहा गया है कि मिथुन लग्न में उत्पन्न जातक भोगी, बन्धुरत,दयालु, धनवान एवं रोगी होता है। इसी प्रकार से वृशिचक नवांश में उत्पन्न

जातक दुःखी, दरिद्री, दुर्बल एवं रोगी होता है। इसी प्रकार से सभी राशियों तथा नवमांशों की फल विषयक चर्चा ज्योतिषीय ग्रन्थों में प्राप्त होती है।

भाव से बनने वाले योग-

कुण्डली में लग्नादि 12 भाव होते है। इन द्वादश भावों के नाम है-

1. तनु 2. धन 3. सहज 4. सुख 5. पुत्र 6. रोग 7. जाया 8. मृत्यु 9. धर्म 10. कर्म 11. आय 12. व्यय।

इन द्वादश भावों में से कुछ भावों की संज्ञा केन्द्रभाव है, कुछ भावों की संज्ञा त्रिकोण,कुछ भावों की संज्ञा पणफर,आपोक्लिम,त्रिक, त्रिषडाय, द्विर्द्वादश , मारक, उपचय एवं अनुपचय है।इन से निर्मित होने वाले योगों को ही भावों से बनने वाले योग कहलाते है। उदहरणार्थ- चन्द्रमा से द्वितीय तथा द्वादश भाव में कोई भी ग्रह न हो, तो केमद्रुम योग होता है। इसी प्रकार से लग्न पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो, तो पिता के परोक्ष में जन्म होता है।

ग्रहों से बनने वाले योग-

होराशास्त्र में शुभ एवं अशुभ फल के सूचक नौ ग्रह माने गये हैं। इन ग्रहों की युति से बनने वाले योगों को ग्रहों से बनने वाले योग कहा जाता है। उदाहरणार्थ- जिसके जन्म के समय चन्द्रमा पूर्णबली तथा पूर्णकला वाला हो, वह अपने जीवन में राजा के समान सुख भोगता है। इसी प्रकार से एक अन्य योग के अनुसार – केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश का पारस्परिक सम्बन्ध होने पर भी व्यक्ति राजयोग का भोग करता है।

राशि एवं भाव से बनने वाले योग-

होराशास्त्र में राशि एवं भाव के पारस्परिक सम्बन्ध से बनने वाले योग सर्वाधिक है।इन योगों में राशि और भाव – दोनों ही का समान रूप से महत्व होता है। उदाहरणार्थ- सप्तम भाव में द्विस्वभाव राशि हो तो शत्रुओं द्वारा किये गये अभिचार (तन्त्र क्रिया) से रोग होता है।इसी प्रकार से मेष लग्न में उत्पन्न व्यक्ति बन्धु-द्वेषी, दुर्बल शरीर वाला, क्रोधी स्वभाव वाला, पराक्रमी एवं दुर्बल जानु होता है।

राशि एवं ग्रह से बनने वाले योग-

राशियों एवं उनके वर्गों में ग्रहों की स्थिति या उन पर ग्रहों की दृष्टि से बनने वाले योगों को राशि एवं ग्रह से बनने वाले योग कहा जाता है। इन योगों में राशि और ग्रह दोनों का ही समान महत्व होता है। उदाहरण के लिए चन्द्रमा एवं शनि यदि कर्क , वृशिचक या कुम्भ राशि के नवमांश में हों तो जातक को गुप्त रोग होता है। एक अन्य उदाहरण

के अनुसार, यदि शनि कर्क में तथा चन्द्रमा मकर में हो तो जातक को जलोदर का रोग होता है।

भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग-

लग्नादि द्वादश भावों में ग्रहों की स्थिति या इन भावों पर ग्रहों की दृष्टि होने पर बनने वाले योगों को भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग कहलाते है।इन योगों मे भाव एवं ग्रह - इन दोनों ही का एक समान महत्व होता है। उदाहरण के लिए लग्न में मंगल हो तथा षष्ठेश दुर्बल हो, तो जातक को अजीर्ण,गुल्म एवं शूल रोग होता है। एक अन्य उदाहरण के अनुसार- पापग्रह एवं राहु के साथ चन्द्रमा 5,8 अथवा 12वे भाव में हो तो जातक पागल, क्रोधी एवं कलह प्रिय होता है।

राशि, भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग-

होराशास्त्र में राशि, भाव एवं ग्रहों के आधार पर बनने वाले योग पर्याप्त संख्या में प्राप्त होते है। इनमें से राशि, भाव एवं ग्रह- इन तीनों का समान रूप से महत्व होता है और ये तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध होने पर ही एक विशिष्ट योग का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए कर्क लग्न में चन्द्रमा एवं बृहस्पति हो तो केन्द्र से बुध एवं शुक्र हो तथा शेष ग्रह त्रिषडाय में हो तो जातक की अमित आयु होती है।

इस प्रकार से योग जातक को होने वाले रोगों के सम्बन्ध में विचार करने का एक प्रमुख तत्व है। होराशास्त्र में ग्रहों की राशियां,उच्च, नीच, मूलत्रिकोण राशि , उनकी नैसर्गिक एवं तात्कालिक मैत्री, उनकी दृष्टि , उनके षड्बल, उनका शुभाशुभत्व, उनकी षड् अवस्थाएं एवं उनके चतुर्विध सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों में राशिशीलाध्याय में राशियों की चर, स्थिर, द्विस्वभाव, षोडशवर्ग, राशिबल, पारिजातादि संज्ञाओं का प्रतिपादन किया गया है। ग्रहों और राशियों के अतिरिक्त लग्नादि द्वादश भावों, उनके विचारणीय विषयों, केन्द्र, त्रिकोण,पणफर, आपोक्लिम,त्रिक,त्रिषडाय, द्विर्द्वादश,मारक,उपचय , अनुपचय आदि भावों , भाव बल तथा भावों के स्वभाव के विषय में विस्तृत विवेचन ज्योतिषग्रन्थों में प्राप्त होता है।

रोग और ग्रह –

प्रत्येक ग्रह के गुण-धर्मों का विस्तृत विवेचन ज्योतिषशास्त्र के विविध आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में किया है।कौन सा ग्रह किस धातु एवं तत्व का प्रतिनिधि है? उसका कद एवं रङ्ग-रूप कैसा है ? वह शरीर के किन अङ्गों को प्रभावित करता है तथा किन रोगों का कारक है ? इन विषयों में विविध होराग्रन्थों में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

सूर्य को अग्नितत्व वाला तथा मध्यम कद वाला ग्रह माना जाता है। यह मनुष्य के नेत्र, हड्डी, वक्ष, फेफडा, शिर, हृदय, प्राणशक्ति, रक्त तथा पित्त आदि का प्रतिनिधित्व करता है। चन्द्रमा जलतत्व तथा दीर्घ कद वाला जलीय ग्रह है। यह व्यक्ति के मन, मस्तिष्क, उदर, मूत्राशय, रक्त, रस-धातु तथा कफ का प्रतिनिधित्व करता है। मंगल अग्नितत्व तथा छोटे कद वाला ग्रह है। यह शरीर में कपाल,कान, स्नायु, जननेन्द्रिय, मज्जा, शारीरिक शक्ति, धैर्य, संघर्षशीलता, उत्तेजना एवं पित्त का प्रतिनिधित्व करता है। बुध ग्रह पृथ्वी तत्व तथा सामान्य कद वाला है। यह जिह्वा, वाणी, स्वरचक्र, श्वासनली, अगला मस्तिष्क,फुस्फुस, केश, हाथ एवं त्रिधातु का प्रतिनिधित्व करता है। बृहस्पति आकाश तत्व तथा मध्यम कद वाला ग्रह है। शरीर में यह चर्बी, वीर्य, उदर, यकृत, रक्तधमनी, त्रिदोष तथा कफ आदि का प्रतिनिधित्व करता है। शुक्र जलतत्व तथा मध्यम कद वाला ग्रह है। यह शरीर में जननेन्द्रिय, शुक्राण, नेत्र, कपोल,चिबुक, स्वर, रस, गर्भाशय एवं संवेग शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। शनि ग्रह वायु तत्व तथा लम्बे कद वाला शुष्क ग्रह है। यह शरीर में अङ्ग सन्धि पैर, घुटने, वात-संस्थान, स्नायुमण्डल, मज्जा ,क्रिया शक्ति तथा वात को प्रभावित करता है। राहु वायु तत्व तथा मध्यम कदवाला ग्रह है। यह शरीर के मस्तिष्क, रक्त,त्वचा एवं वात का प्रतिनिधित्व करता है। केतु भी वायुतत्व तथा छोटे कद वाला ग्रह है। यह शरीर के वात, रक्त तथा चर्म का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार से किसी भी रोग के ज्ञान हेतु ग्रहों का उपकरण के रूप में प्रयोग ज्योतिषशास्त्र में किया जाता है। ग्रहों के अतिरिक्त नक्षत्रों से भी रोग का विचार किया जाता है। किसी रोग की उत्पत्ति किस नक्षत्र में हुई है ? ये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रत्येक नक्षत्र का सम्बन्ध किसी ना किसी रोग से है। कुछ नक्षत्रों में किसी रोग विशेष के उत्पन्न होने पर उसकी अवधि अधिक दिन तक होती है तथा कुछ नक्षत्रों में रोग उत्पन्न होने पर उसकी अवधि कम होती है।उदाहरण के लिए अश्विनी नक्षत्र अर्धाङ्गवात, अनिद्रा, मतिभ्रम आदि रोगों से सम्बन्धित है। इसमें रोग उत्पन्न होने पर वह 1, 9 अथवा 25 दिन तक रहता है। इसी प्रकार से अन्य नक्षत्रों के विषय में भी वर्णन होराशास्त्र के ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

रोगपरिज्ञान में राशिविचार-

जैसा कि आप जानते है कि राशियां द्वादश है। इन राशियों के स्वरूप, उनकी विविध संज्ञाओं का वर्णन विविध होराग्रन्थों में प्राप्त होता है। ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने कालपुरुष की कल्पना कर उसमें मेषादि राशियों का विन्यास किया है। उनमें से जो राशि पाप ग्रहों के प्रभाव में हो , उस राशि से सम्बन्धित शारीरिक अङ्ग में कष्ट अथवा पीडा रहती है। उदाहरण के लिए मेष राशि ललाट, वृष राशि आंख, कान, नाक, गला,होंठ,दांत,मुख , कपोल आदि, मिथुन राशि कण्ठ, भुजा, हथेली, वक्ष एवं स्तन आदि, कर्क राशि फेफडों का, सिंह राशि पेट का, कन्या राशि कमर का, तुला राशि

मूत्राशय तथा गर्भाशय का, वृश्चिक राशि जननेन्द्रिय तथा गुदा का, धनु राशि उरू स्थल का, मकर राशि जानु का, कुम्भ राशि जंघा का और मीन राशि पैरों का प्रतिनिधित्व करती है। इसी प्रकार से प्रत्येक राशि का सम्बन्ध किसी ना किसी रोग विशेष से भी है , जिसकी विशद विवेचन फलितग्रन्थों में प्राप्त होता है।राशियों की ही तरह भावों की भी रोग परिज्ञान में महत्वपूर्ण भूमिका है।

रोगपरिज्ञान में भावविचार-

भावों के विषय में भी आप पढ चुके है कि लग्नादि द्वादश भाव है। यद्यपि प्रत्येक भाव का अपना महत्व है परन्तु रोग विचार की दृष्टि से षष्ठ भाव ,मारक भाव , लग्न , अष्टम् तथा द्वादश भाव प्रमुख है ।जिस प्रकार राशियां कालपुरुष के शरीर में विन्यस्त है , उसीप्रकार से द्वादश भावों का भी कालपुरुष के शरीर में विन्यास किया गया है। प्रथम भाव से मस्तिष्क , द्वितीय से आंख, कानादि, तृतीय भाव से कण्ठ आदि, चतुर्थ भाव से फेफडें, पंचम भाव से उदर, षष्ठ भाव से कमर, सप्तम भाव से मूत्राशय, अष्टम भाव से जननेन्द्रिय, नवम भाव से उरूप्रदेश, दशम भाव से जानु, एकादश भाव से जंघा तथा द्वादश भाव से पैर आदि का विचार किया जाता है। इन समस्त भावों से उन अङ्गों से सम्बन्धित रोगों का भी विचार किया जाता है।

इस प्रकार से रोग के परिज्ञान हेतु ग्रहों , राशियों तथा भावों का समग्र अध्ययन तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का सम्यक् ज्ञान होना अत्यन्त अनिवार्य होता है।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

23.कर्मज रोगों का विचार ज्योतिषशास्त्र के अधीन है।
24.राशियों की संख्या द्वादश है।
25.सिंह राशि से ललाट का विचार होताहै।
26.द्वादश भाव का सम्बन्ध उदर से हैं।
27.सूर्य कफ का कारक है।
28.शनि ग्रह का वायु तत्व है।
29.मीन राशि का स्थान गुदा भाग है।

5.3.2 रोगकारक ग्रहों का निर्धारण

ज्योतिषशास्त्र में सूर्यादि ग्रहों को सत्व, रजस् तथा तमस् का प्रतिनिधि माना जाता है । सत्वगुण के आधिक्य वाले ग्रहों की किरणें अमृतमयी, रजोगुण के आधिक्य वाले

ग्रहों की किरणें उभयगुण मिश्रित होती है। तमोगुण के आधिक्य वाले ग्रहों की किरणें विषमय मानी जाती है। किसी भी जातक के जन्म के समय इन ग्रहों की विविध प्रकार की रश्मियों का प्रभाव जातक पर पडता है जो उसको जीवन भर प्रभावित करता है। इस प्रभाव का विश्लेषण जन्मकुण्डली के माध्यम से किया जाता है। ग्रहों की गति के कारण इन ग्रहों का प्रभाव सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक सा न होकर भिन्न भिन्न होता है। किसी जातक की कुण्डली में कोई एक ग्रह रोग का कारक हो सकता है , वही ग्रह किसी दूसरे जातक की पत्रिका में रोग का कारक नहीं होगा ।इस प्रकार से कौन सा ग्रह रोगकारक होगा तथा उस ग्रह को रोगकारक बनाने वाले हेतु कौन से है , उसकी चर्चा की जा रही है ।निम्नलिखित कारण से कोई ग्रह रोगकारक होता है।

- रोग भाव का स्वामित्व
- अष्टम एवं व्ययभाव का स्वामित्व
- रोग भाव में ग्रह की स्थिति
- लग्नेश
- नीचराशि,शत्रुराशि में स्थिति
- ग्रह का अवरोही होना
- क्रूरषष्टयंश में स्थिति
- पाप ग्रहों का प्रभाव
- अरिष्टकारकता एवं मारकता

ये सभी कारण किसी भी ग्रह को रोगकारक बनाते है। अब आप इन कारणों का क्रमशः विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

1. कुण्डली में षष्ठ भाव को रोग का भाव माना जाता है ।षष्ठ भाव से जिस ग्रह का सम्बन्ध होता है , उसी की प्रकृति के अनुसार जातक को रोग से कष्ट होता है। उदाहरण के लिए षष्ठ स्थान में यदि चन्द्रमा हो तो जातक को कफ तथा नेत्र से सम्बन्धित विकारों से पीडा होती है ।इसी प्रकार से षष्ठेश का सम्बन्ध जिस ग्रह से हो, उससे सम्बन्धित शरीराङ्ग में रोग होता है। यथा- षष्ठेश सूर्य के साथ सिर में, चन्द्रमा के साथ मुख में, मंगल के साथ होने पर कण्ठ में, बुध के साथ होने पर नाभि में, गुरु के साथ होने पर नाक , शुक्र के साथ होने पर नेत्र में, शनि के साथ होने पर पैर में, राहु तथा केतु के साथ षष्ठेश का सम्बन्ध होने पर कुक्षि में रोग होता है।
2. षष्ठेश की ही तरह अष्टेश एवं व्ययेश भी रोगकारक होते है। क्योंकि अष्टमेश मृत्युकारक तथा व्ययेश शारीरिक स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाला भाव है ।षष्ठेश की ही तरह ये दोनों भाव भी जिस ग्रह से सम्बन्ध करते है , उससे सम्बन्धित शरीराङ्ग में रोग देते है। पाप ग्रह दीर्घ कालीन तथा घातक रोग देते है यद्यपि शुभ ग्रह अल्पकालीन तथा साधारण रोग देते है।
3. षष्ठ भाव में स्थित ग्रह भी रोगकारक होता है। वह ग्रह जिस राशि तथा भाव का स्वामी हो, वह भाव अथवा राशिजिस शरीराङ्ग का प्रतिनिधित्व करता हो , उसी शरीराङ्ग में रोग की सम्भावना रहती है।
4. लग्न भाव समग्र शरीर का प्रतिनिधित्व करता है ।इसलिए लग्न अथवा लग्नेश पर पाप प्रभाव का होना शरीर को रोगी बनाता है। सभी ग्रह किसी ना किसी धातु का प्रतिनिधित्व करते है। यथा- सूर्य

अस्थि का, चन्द्रमा रक्त का , मंगल मांस का, बुध ग्रह त्वचा का, बृहस्पति वसा का, शुक्र वीर्य का, शनि स्नायु का प्रतिनिधित्व करता है। इनमें से जो ग्रह लग्नस्थ होकर पाप प्रभाव में हो तो उसी धातु में विकार होने की सम्भावना रहती है।इसी प्रकार से सूर्य नेत्र,हृदय तथा अस्थि का,चन्द्र मन,फेफडे तथा रक्त का, भौम मांस तथा मज्जा का, बुध वाणी,कान तथा त्वचा का, बृहस्पति उदर, आंते तथा चर्बी का, शुक्र नेत्र,मूत्र तथा वीर्य का और शनि पैर तथा स्नायु का प्रतिनिधित्व करता है। अतः लग्नस्थ ग्रह पीडित होने पर उनसे सम्बन्धित नेत्रादि में विकार रहता है।लग्नेश का बली होना उनसे सम्बन्धित धातु तथा शरीराङ्ग में बलबत्ता का तथा लग्नेश का निर्बल होना उस शरीराङ्ग के निर्बल होने का द्योतक है।

5. यदि कोई ग्रह अपनी नीच राशि अथवा शत्रु राशि में स्थित हो, तो उस ग्रह से सम्बन्धित धातु तथा शरीराङ्ग के विकास में बाधा तथा रोग का सूचक होता है।उदाहरण के लिए सूर्य पित्तज्वर,दाह,नेत्रपीडा,हृदयदौर्बल्य का, चन्द्रमा शीतज्वर,कफ, जलोदर,उन्मादादि रोग को देने वाला, मंगल ग्रह चोट, गुप्तरोग, रक्तस्राव तथा जलने आदि से पीडा का प्रदायक, बुध ग्रह त्रिदोष, चर्मरोग, कर्णरोग आदि को देने वाला, बृहस्पति सूजन, कमर एवं पैर में पीडा का प्रदायक, शुक्र ग्रह मूत्ररोग,वीर्यरोग तथा नेत्रविकार का और शनि स्नायुविकार,वायुविकार एवं शरीर में विविध प्रकार के दर्दों की सूचना देने वाला ग्रह है।
6. यदि कोई ग्रह अपने परमोच्च से आगे तथा परमनीच से पहले हो तो वह अवरोही ग्रह कहलाता है। इस प्रकार का अवरोही ग्रह अपनी दशान्तर्दशा में रोगदायक होता है।
7. प्रत्येक राशि में 30 अंश तथा 60 षष्टयंश होते है।इसलिए प्रत्येक षष्ठयंश आधे अंश अथवा 30 कला का स्वामी होता है। इनमें से प्रत्येक षष्ठयंश का एक स्वामी होता है। इनमें से कुछ षष्ठयंशेश शुभ होते है तथा कुछ षष्ठयंश क्रूर होते है।क्रूर षष्टयंश में स्थित ग्रह की दशा में जातक रोग से पीडित रहता है।
8. जिस भाव के स्वामी पर पाप प्रभाव हो, उस ग्रह की दशा भी रोगकारक होती है। कोई ग्रह यदि पाप ग्रहों के साथ हो, पाप ग्रहों से दृष्ट हो, पापग्रहों के मध्य में हो या पाप ग्रह से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध करता हो, तो ऐसा ग्रह पाप प्रभाव में होता है और रोगकारक होता है।
9. होराशास्त्र में बालारिष्ट आदि योगों का वर्णन प्राप्त होता है। जातक की कुण्डली में इन योगों के होने पर वह बचपन में रोगी रहता है। अरिष्ट योग भङ्ग होने पर बालक रोगी होते हुए भी सुरक्षित रहता है परन्तु अरिष्ट योग के भङ्ग ना होने की स्थिति में प्राणों के संकट की भी सम्भावना रहती है।पाराशर मतानुसार द्वितीयेश तथा सप्तमेश मारकेश कहलाते है तथा वराहमिहिर ने अष्टम को मारक भाव माना है। यदि सूर्यादि ग्रह अरिष्टयोग के कारक हो तो वह विविध प्रकार के रोगों को प्रदान करते है। सूर्य अग्निदाह,उष्णज्वर,पित्तक्षोभ एवं ब्रेन हैमरेज का कारक है। चन्द्रमा हैजा, जलोदर, तपेदिक, एवं निम्न रक्तचाप का कारक है। मंगल दुर्घटना,रक्तविकार,बबासीर अतिसार उच्चरक्तचाप आदि रोगों को देता है। बुध पाण्डुरोग, मधुमेह,भ्रान्ति एवं त्रदोष को प्रदान करता है। बृहस्पति कफ रोग देता है। शुक्र प्रमेहरोग,मधुमेह,वीर्यविकार तथा नेत्ररोगों का कारक है। शनि सन्निपात,लकवा एवं कैंसर रोग का कारक है। राहु कुष्ठ रोग,छूत रोग, विष एवं कीटाणुजन्य रोगप्रदायक है।केतु दुर्घटना,हृदयगति रुकना तथा वायरसजन्य रोगों को देना वाला है।यदि कोई ग्रह मारक हो तो वह अपनी प्रकृति के अनुसार विविध रोगों से पीड़ा देता है। सूर्य एवं मंगल मारक हो तो पित्त रोगकारक, चन्द्रमा या गुरु मारक होने पर क्षयरोगकारक, शुक्र मारक होकर पाप प्रभाव में होने पर वातरोग,प्रमेह अथवा क्षयरोगकारक होता है।राहु पापदृष्ट अष्टमस्थ होने पर चेचक,उष्णताजन्य रोग तथा सर्पदंश से पीड़ा देने वाला और केतु पापदृष्ट अष्टमस्थ पित्तरोगकारक होता है।

इस प्रकार से पूर्व वर्णित कारण किसी भी ग्रह की रोगकारकता के मुख्य हेतु है। इनमें से कोई भी लक्षण किसी भी ग्रह में दिखाई देने पर वह ग्रह उस जातक के

रोगकारक ग्रह कहलाता है। अब आप भावों तथा राशियों की रोगकारकता में विविध हेतुओं के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

5.3.3रोगकारक भावों का निर्धारण

किसी जातक के जन्माङ्ग में जितना महत्व ग्रहों का है, उतना ही महत्व भावों का भी है। द्वादश भावों में से कौन सा भाव रोगकारक होगा तथा उसके पीछे क्या कारण होगें , इसकी चर्चा अब की जाएगी।

- षष्ठ भाव ।
- अष्टम एवं व्यय भाव।
- पाप ग्रहों के मध्य में स्थिति।
- पाप ग्रहों की युति एवं दृष्टि।
- त्रिक स्थान से सम्बन्ध।
- स्वामियों की अनिष्ट स्थान में स्थिति।
- भाव, राशि एवं स्वामियों की बलहीनता।
- भाव से त्रिक या त्रिकोण में पापग्रहों की स्थिति।
- रोगकारक ग्रहों से सम्बन्ध।
- शुभ ग्रहों का प्रभाव न होना।

इस प्रकार से षष्ठ भाव , अष्टम भाव तथा व्यय भाव ऐसे भाव है,जो रोगकारक माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कारण भी है जो किसी भी भाव को रोगी बना सकते है। अब हम इन्हीं उपरोक्त हेतुओं की विस्तृत चर्चा करेंगे।

1. षष्ठ भाव को ही रोग भाव भी कहते हैं। यदि शुभ ग्रहों का प्रभाव इस भाव पर हो तो वे रोगवृद्धिकारक तथा पाप ग्रहों का प्रभाव रोगों में ह्रास करता है। क्योंकि ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्तानुसार कोई भाव शुभ ग्रह से तथा अपने स्वामी से युत-दृष्ट होने पर अपने नैसर्गिक फल में वृद्धि को प्राप्त करता है तथा पाप ग्रहों से दृष्ट-युत होने पर नैसर्गिक फल में ह्रास को प्राप्त करता है। षष्ठ भाव का नैसर्गिक फल रोगोत्पत्ति है अतः इस पर शुभ प्रभाव रोगवृद्धिकारक तथा पाप प्रभाव रोगों को कम करता है।
2. अष्टम भाव मृत्यु का भाव है अतः शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना जाता है और व्यय भाव लग्न से 12वां होने के कारण स्वास्थ्य के ह्रास का द्योतक है।अतः इन दोनों भावों में स्थित राशि तथा ग्रह भी रोगकारक होते है। इसी कारण से होराशास्त्र के ग्रन्थों में लग्नेश के 6,8,12 भाव में स्थित होने पर शारीरिक सुख की हानि कही गई है।

3. यदि कोई भाव दो पापग्रहों के मध्य हो अर्थात् जिस भाव के दोनों तरफ पाप ग्रह हो तो वह भाव जिस शरीराङ्ग का प्रतिनिधित्व करता हो, उसमें विकार उत्पन्न होने की सम्भावनी रहती है ।उस भाव से 12 वे भाव में स्थित पाप ग्रह मार्गी तथा 2रें भाव में स्थित पाप ग्रह वक्री होने पर पापकर्तरी योग होता है ।ऐसा होने पर सम्बन्धित शरीराङ्ग का स्वास्थ्य तथा विकास बाधित होता है ।
4. जिस भाव पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो अथवा पाप ग्रहों की युति हो, तो वह भाव पाप प्रभाव में होता है । ऐसा भाव जिस शरीराङ्ग का प्रतिनिधित्व करता है , उस शरीराङ्ग में रोग पैदा करता है तथा उस शरीराङ्ग का विकास भी बाधित रहता है ।
5. षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश भाव को त्रिक भाव कहते है ।जैसा कि आप जानते है कि इनमें से षष्ठ भाव रोग का, अष्टम मृत्यु का तथा द्वादश भाव स्वास्थ्य के ह्रास का सूचक है । जिस भाव का स्वामी इन त्रिक भावों में हो अथवा जिन भावों के स्वामी इन त्रिक भावों में हो, वह भाव जिस शरीराङ्ग का प्रतिनिधित्व करता हो, उस भाव से सम्बन्धित शरीराङ्ग में रोग रहता है तथा उसके विकास में भी बाधा की सम्भावना होती है ।
6. कुण्डली में दो प्रकार के स्थान होते है । -
    1. इष्ट स्थान
    2. अनिष्ट स्थान

शुभ ग्रहों के लिए तृतीय,षष्ठ , अष्टम तथा द्वादश स्थान अनिष्ट स्थान होते है, इनके अतिरिक्त शेष स्थान इष्ट स्थान होते है । पाप ग्रहों के लिए तृतीय,षष्ठ तथा एकादश स्थान के अतिरिक्त सभी स्थान अनिष्ट स्थान होते है ।अतः किसी भाव का स्वामी जब अपने इष्ट स्थान में हो तो उस भाव से सम्बन्धित शरीराङ्ग पुष्ट होता है तथा जिस भाव का स्वामी अपने अनिष्ट स्थान में हो तो उस भाव में सम्बन्धित शरीराङ्ग में विकार होता है ।

7. यदि कोई भाव अथवा भावेश निर्बल होता है, तो वह भाव जिस शरीराङ्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो उस शरीराङ्ग में विकार होता है।
8. होराशास्त्र का एक प्रसिद्ध सिद्धान्त भावात् भावम् का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस भाव से 6,8,12,5 तथा 9वे भावों में पाप ग्रह हो तो उस भाव से सम्बन्धित शरीराङ्ग में विकार उत्पन्न करता है ।
9. रोगकारक ग्रहों तथा उन ग्रहों के रोगकारक होने के कारणों के विषय में आप पूर्व में पढ़ ही चुके है ।इन रोगकारक ग्रहों का जिस भाव से सम्बन्ध हो,वह भाव शरीर के जिस अङ्ग का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें विकार या रोग पैदा करता है ।
10. जिस भाव पर शुभग्रहों की दृष्टि तथा शुभ ग्रहों की युति हो तो उस भाव पर शुभ ग्रहों का प्रभाव माना जाता है ।वह भाव जिस शरीराङ्ग का प्रतिनिधित्व करता है , वह भाव पुष्ट होता है । जिस भाव पर किसी भी प्रकार का शुभ प्रभाव ना हो,उस भाव से सम्बन्धित शरीराङ्ग में विकार उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है ।

इस प्रकार से पूर्वोक्त कारणों से यह ज्ञात हो सकता है कि कौन सा भाव रोगकारक है तथा किस भाव पर पाप ग्रहों का प्रभाव है ? जिस भाव पर पाप ग्रहों का प्रभाव हो , उस भाव से सम्बन्धित शरीराङ्ग में विकार अथवा रोग होने की प्रबल सम्भावना रहती है ।

अभ्यास प्रश्न-2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. षष्ठ भावकारक है।............
2. त्वचा का प्रतिनिधि ग्रहहै।...........
3. शुक्र ग्रह का प्रतिनिधित्व करता है।............
4. 6,8 तथा 12 भाव की संज्ञाहै।.............
5. 5 तथा 9वे भाव की संज्ञाहैं। ....
6. त्रिषडाय भावों में पापग्रहहोते है।..........
7. लग्नेश की त्रिक भावों में स्थितिहोती है।...........

5.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिष और आयुर्वेद का पारस्परिक सम्बन्ध है। किसी जातक को भविष्य में होने वाले विविध रोगों के परिज्ञान हेतु ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों के योग, दशा तथा गोचर के आधार पर फलकथन का विधान है, जिसका आधार इस जन्म तथा जन्मान्तरों में किये गये शुभाशुभ कर्म है। कोई ग्रह विशेष किसी व्यक्ति विशेष के लिए रोगकारक हो सकता है तथा वही ग्रह किसी अन्य व्यक्ति के लिए रोगकारक नहीं होता है। इसी प्रकार से कुण्डली में 6,8, 12 भाव रोगकारक भाव है तथा अन्य भाव भी कुछ विशेष परिस्थितयों में रोगकारक बन जाते है , जिसकी विस्तृत चर्चा आपने प्रस्तुत इकाई में पढ़ी। किस ग्रह तथा किस भाव से कौन से शरीराङ्ग का विचार किया जाता है ? तथा किस प्रकार से पाप प्रभाव होने पर वह शरीराङ्ग भी विकृत तथा रोगयुक्त हो जाता है। शुभ ग्रहों के प्रभाव से युक्त होने पर किस प्रकार से वह शरीराङ्ग पुष्ट हो होता है। इस प्रकार से प्रत्येक ग्रह तथा भाव का शरीर पर पड़ने वाला शुभाशुभ प्रभाव शरीर को किस प्रकार से पुष्ट और रोगी बनाता है , उसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत इकाई में किया गया है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

आयुर्वेद-आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है , इसमें विविध प्रकार की औषधियों के माध्यम से रोगियों की चिकित्सा की जाती है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार यह देवताओं की चिकित्सा पद्धति है जिसका ज्ञान योग साधना के फलस्वरूप ऋषियों ने प्राप्त किया तथा विविध रोगों के ज्ञान तथा निदान हेतु मानव मात्र को प्रदान किया।
ज्योतिष-छः वेदाङ्गों में से एक है जो वेदपुरुष का नेत्र माना जाता है।

होराशास्त्र-ज्योतिषशास्त्र के तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता तथा होरा। इनमें से होरास्कन्ध के अन्तर्गत जातक को होने वाले रोगों का विचार उसकी जन्मकालिक स्थिति के आधार पर किया जाता है।

रोगकारक ग्रह- जो ग्रह रोगकारक भावों के स्वामी होते है अथवा जिन ग्रहों का सम्बन्ध रोगकारक भावों के स्वामियों के साथ होता है, उन्हें रोगकारक ग्रह कहते है।

रोगकारक भाव- द्वादश भावों में से षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश भाव रोगकारक भाव माने जाते है। इसके अतिरिक्त जो भाव पाप ग्रहों के प्रभाव में हो , वे भी रोगकारक हो जाते है।

5.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास-1 की उत्तरमाला-

32.सत्य।
33.सत्य।
34.असत्य।
35.असत्य।
36.असत्य।
37.सत्य।
38.असत्य।

अभ्यास-2 की उत्तरमाला-

23.रोग।
24.बुध।
25.वीर्य।
26.त्रिक।
27.त्रिकोण।
28.शुभ।
29.अशुभ।

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

25.जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
26.बृहज्जातकम्, भट्टोत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999 ई।
27.फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946 ई।

28.लघुजातकम्, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
29.भावप्रकाश, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
30.ज्योतिषशास्त्र में रोग-विचार, प्रो शुकदेव चतुर्वेदी, मोती लाल बनारसी दास, नई दिल्ली- 2016 ई।

5.7सहासक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिंह, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003

2.बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.लघु पाराशरी, पं. सीता राम झा, मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद,वाराणसी सम्वत् 2069।

5. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

13. आयुर्वेद तथा ज्योतिष के पारस्परिक सम्बन्ध पर निबन्ध लिखिए।
14. रोग-परिज्ञान के विविध उपकरणों का विस्तृत परिचय दें।
15. रोगकारक ग्रहों के निर्धारण पर निबन्ध लिखिए।
16. रोगकारक भावों के निर्धारण पर निबन्ध लिखिए।

खण्ड-तृतीय
रोग ज्ञान के ज्योतिषीय आधार

इकाई-१ जन्मांग चक्र के आधार पर रोग ज्ञान

इकाई की संरचना

१.१ प्रस्तावना
१.२ उद्देश्य
१.३ जन्मांग चक्र का परिचय
१.४ रोगोत्पत्ति के कारण
१.५ रोग के भेद
१.६ ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख स्कन्ध
१.७ फलकथन करते समय ध्यातव्य बातें
१.८ मेषादि द्वादश राशियां एवं उनके रोग
१.९ लग्नादि द्वादश भावों से विचारणीय रोग
१.१० लग्न से शारीरिक सुख का ज्ञान
१.११ विभिन्न रोगों के योग
    १.११.१ नेत्ररोग
    १.११.२ जन्मान्ध योग
    १.११.३ कर्ण रोग
    १.११.४ दन्तरोग विचार
    १.११.५ कुष्टादि रोगकारक योग
    १.११.६ गण्डादिकारकयोग
    १.११.७ विकलांग योग
    १.११.८ उन्माद योग
    १.११.९ क्षयरोग
    १.११.१०वायु जनित रोग
१.१२ रोग शान्ति हेतु उपाय
१.१३ रोगनिवृत्ति हेतु रत्न (मणि) धारण-
१.१४ रोग निवृत्ति हेतु स्नानार्थ औषधियां
१.१५ अभ्यास प्रश्न-
१.१६ सारांश-
१.१७ पारिभाषिकशब्दावली-
१.१८ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-
१.१९ निबन्धात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई जन्मांग चक्र के आधार पर रोग ज्ञान नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। तथा इस इकाई में आप कुण्डली के द्वादश भावों के द्वारा रोग की पहचान करना सीखेगें। हम सब जानते ही हैं किमानव सृष्टि विधाता की अद्भुत व

सर्वोत्कृष्ट रचना है। जिसमें हमारी यह भारत भूमि ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, अध्यात्म, वेद-वेदांग व आत्मचिन्तन के लिए सुप्रसिद्ध है। तथा उसी आत्मचिन्तन के फलस्वरूप हमारे ऋषि-मुनियों से जो दिव्य ज्ञान हमें प्राप्त हुआ है, उसे ज्योतिष शास्त्र कहते हैं। जिसके आधार पर हम अपने भूत-भविष्य व वर्तमान में होने वाली घटनाओं का अवलोकन कर सकते हैं। साथ ही ज्योतिष शास्त्र के द्वारा मनुष्य के पूर्व जन्मार्जित शुभाऽशुभ कर्मों का जन्म कालिक ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर सुख दुःख, रोगादि का विवेचन किया जाता है। मनुष्य के जन्म समय पर खगोल में ग्रहों की जो स्थिति होती है मनुष्य की जन्मकुण्डली उसी का एक प्रत्यक्ष रूप होता है। तथा उसी जन्म कुण्डली के द्वादश भावों में स्थित ग्रह, नक्षत्र व राशियों के आधार पर मानव जीवन की विभिन्न गतिविधियों व रोगों का विश्लेषण किया जाता है। ये रोग हमारे शरीर में क्यों होते हैं ? इनका क्या कारण है? रोग कब होगा? या कौन सा रोग होगा? वह रोग साध्य होगा अथवा असाध्य? रोग का कारक ग्रह कौन होगा? आदि का आप इस इकाई में विधिवत अध्ययन करेंगे तथा तत्सम्बन्धित अनेक विषयों से परिचित हो सकेंगे।

१.२ उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह ज्ञान कर सकेंगे कि-

१.रोगों का प्रमुख कारण क्या होता है।

२. जन्म कुण्डली के द्वारा रोगों की पहचान कैसे करें।

३.रोग की सम्भावना कब बनती है।

४.कौन सा भाव अथवा ग्रह रोग का कारक होताहै।

५.भावों से विचारणीय कौन-कौन से रोग होते हैं।

१.३ जन्मांग चक्र का परिचय-

किसी भी जातकके जन्म समय पर खगोल में ग्रह, नक्षत्र व राशियों की जो स्थिति होती है मनुष्य की जन्मकुण्डली अथवा जन्मांगचक्र उसी का यथार्थ रूप होता है। जन्मांग चक्र में द्वादश भाव होते हैं-

तनुर्धनं भ्रातृसुखपुत्रशत्रुकलत्रकाः।
मरणं धर्मकर्मायव्यया द्वादश राशयः।।[1]
देहं द्रव्यपराक्रमौ सुखतुतौ शत्रुः कलत्रं मृतिः
भाग्यं राजपदं क्रमेण गदिता लाभव्ययौ लग्नतः।
भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मतं देहिनां।।

[1] शीर्षबोध

तस्मादेव शुभाशुभाख्यफलजः कार्यो बुधैर्निर्णयः।।[२]

जिनको हम तन, धन, सहज, सुहृत, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय। तथा इन्ही द्वादश भावों में स्थित ग्रह, नक्षत्र व राशियों के आधार पर मानव जीवन की विभिन्न घटनाओं व रोगों का विश्लेषण किया जा सकता है। तथा भविष्य में होने वाले रोग-व्याधियों का पूर्व में ही विश्लेषण कर उनका उपचार करके ठीक किया जा सकता है। यहां पर हम सभी के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि आखिर ये रोग शरीर में होते क्यों हैं? इस सन्दर्भ में ज्योतिष शास्त्र का कथन है कि मानव के पूर्वजन्मार्जित अशुभ कर्मों के द्वारा हमारे शरीर में विविध रोग होते हैं यथा-

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानं जपहोमसुरार्चनै।।[३]

१.४ रोगोत्पत्ति के कारण-

कतिपय विद्वानों का मानना है कि रोग आहार-विहार आदि की अनियमियता के कारण उत्पन्न होते हैं। तथा मनुष्य यदि अपने खान-पान, आहार-विहार व दैनिक जीवनचर्या पर नियन्त्रण रखे तो वह स्वस्थ एवं दीर्घायु रह सकता है। किन्तु ज्योतिष शास्त्र केवल मनुष्य के आहार-विहार की अनिमियता को ही रोग की उत्पत्ति का कारण नहीं मानता अपितु पूर्वजन्मार्जित कर्मों को मानता है।इसके पीछे यह कारण है कि हम कई बार ऐसे व्यक्तियों को भी देखते हैं जिनका खान-पान, रहन-सहन सब कुछ नियमित समय पर होता है लेकिन फिर भी वे किसी न किसी रोग से ग्रसित हो जाते हैं। यदि मात्र आहार-विहार की अनिमियता को ही रोगोत्पत्ति का कारण मान लिया जाय तो आनुवांसिक रोग, महामारी, जन्मजात रोग, दुर्घटना आदि से होने वाले रोगों की सम्यक व्याख्या नहीं की जा सकती है।

आयुर्वेद के अनुसार रोग वात, पित्त और कफ तथा सात धातुएं (रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और मल (मूत्र, पुरीष तथा स्वेद) ये जब हमारे शरीर में साम्यावस्था में रहतें हैं तो तब शरीर आरोग्यवान रहता है। किन्तु जब ये विकृतावस्था में आजाते हैं तब शरीर में व्याधि अथवा रोग उत्पन्न होते हैं। सरल भाषा में कहें तो शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार जिनसे हमें किसी भी प्रकार का शारीरिक व मानसिक दुःख प्राप्त होता है उन्हें रोग कहते हैं।

विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।[४]

सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च।।

---

[2] जातकालंकार
[3] प्रश्नमार्गः अध्याय–13, श्लोक, 28
[4] चरक सूत्रस्थान, 9–4

१.५ रोगों के भेद-

रोगदो प्रकार बताये गये हैं-

१.सहज रोग २.आगन्तुक रोग

निजागन्तु विभागेन तत्र रोगा द्विधा स्मृता।[५]

सहज रोग की श्रेणी में जन्मजात रोग आते हैं जैसे- अंग हीनता, बधिरपन, गूंगापन, नपुंसकता, अंधापन, आनुवांसिक्ता व वात-पित्त-कफ आदि विकारों से उत्पन्न होने वाले रोग तथा आगन्तुक रोगों की श्रेणी में चोट, महामारी, व्यभिचार, अभिशाप (सिद्ध महापुरुषों का श्राप) मारणादि का तांन्त्रिक प्रयोग, दुर्घटना आदि रोग आते हैं।जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि ज्योतिष शास्त्र रोगों की उत्पत्ति का कारण पूर्वजन्मार्जित कर्मों को ही मानता है तथा जन्मांगचक्र, प्रश्न कुण्डली व गोचर में ग्रहों की प्रतिकूल स्थिति के द्वारा रोग की पहचान की जाती है। तथा जातक को पहले ही आस्वस्थ कर दिया जाता है कि आपको अमुक रोग होने की सम्भावना है तथा इसका परिणाम अमुक निकलेगा अतः आपको पूर्व में ही सचेत होकर कार्य करने की आवश्यकता है। यथा-

यदुपचित मन्य जन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिंम्।

व्यंजयति शास्त्र मेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।[६]

१.६ ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख स्कन्ध-

ज्योतिष शास्त्र को मुख्य तीन स्कन्धों में विभाजित किया गया है-

सिद्धान्तसंहिताहोरा रुपस्कन्धत्रयात्मकम्।

वेदस्यनिर्मलं चक्षुः ज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम्।।[७]

होरा, सिद्धान्त तथा संहिता। इसमें सिद्धान्त स्कन्ध के अन्तर्गत मुख्य रूप से गणित, भूगोल खगोल, ग्रह-नक्षत्रों की गति स्थिस्ति आादि की गणना, ग्रहकक्षाक्रम का विचार, त्रुट्यादि से प्रलय पर्यन्त कालगणना, सौर चान्द्रादि मासों के भेद, ग्रहचार के नियम, व्यक्त अव्यक्त गणित का विवेचन, दिग् देश और काल का ज्ञान वर्णित है जैसे कि सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्त स्कन्ध के लक्षण के विषये में कहा है-

[5]अष्टांगहृदयम् सूत्रस्थान, 1–20

[6]लघुजातकम्– अध्याय–1 श्लोक, 3

[7]नारद संहिता–01/04

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालगणना मानप्रभेदः क्रमा-

चारश्चद्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।।

भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितैश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते।

सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितः स्कन्धप्रबन्धे बुधैः।।

संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत प्राकृतिक आपदाओं (बाढ, भूकम्प, सुनामी ज्वार-भाटा, ज्वालामुखी, बादल फटना) सामुद्रिक शास्त्र, अंगलक्षण, स्वप्न विचार, वृष्टि विचार आदि समष्टि गत विषय निरूपित हैं।

इसी प्रकार होरा स्कन्ध में मानव के पूर्व जन्मार्जित शुभाशुभ कर्मों का जन्मकुण्डली के द्वादश भावों में स्थित ग्रहों के आधार पर जीवन में घटने वाली समस्त घटनाओं के परिणाम का ज्ञान किया जाता है। लघुजातक ग्रन्थ में आचार्य वराहमिहिर ने कहा है-

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम्।

व्यंजयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।

अर्थात् जिस प्रकार अन्धकार में दीपक वस्तुओं को प्रकाशित करता है उसी प्रकार यह होराशास्त्र प्रत्येक जीव के पूर्व जन्मार्जित शुभाशुभ कर्मो के परिणामों को बताता है।इस होरा स्कन्ध के अनेक ग्रन्थों में रोगों का विषद विवेचन देखने को मिलता है। तथा इन रोगों का प्रतिपादन जन्मकुण्डली के द्वादश भावों में बनने वाले ग्रहयोगों के आधार पर किया जाता है-

ग्रहाणां स्थितिभेदेन पुरुषान् योजयन्ति हि।

फलैः कर्मसमुद्भूतैरिति योगाः प्रकीर्तिताः।।[८]

१.७ फलकथन करते समय ध्यातव्य-

जब हम किसी पत्रिका में रोगों का विचार अथवा निर्णय करते हैं उस समय हमें निम्नलिखित कुछ बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए तभी हम रोग तथा रोग के आरम्भ होने के समय का सही पता कर पायेंगे। जैसे-१. ग्रह से आश्रित भाव अथवा राशि, २. ग्रहों की युति, ३. लग्नेश व षष्ठेश की स्थिति, ४. अन्य ग्रहों के साथ उनका सम्बन्ध, ५. ग्रहों की दृष्टि तथा परस्पर राशि परिवर्तन आदि।

[8]प्रश्नमार्गः अध्याय–12, श्लोक, 30

ग्रहाश्रितभभावान्य ग्रहयोगेक्षणादिकम्।

दौस्थ्याधिक्यं च संचिन्त्य सर्वं वाच्यं यथोचितम्।।[९]

तथा रोगों का जन्मकुण्डली में अन्य भी कई प्रकार से विश्लेषण किया जाता है जैसे- १. रोग भाव अर्थात छठे भाव में स्थित ग्रहों से, २. अष्टम और द्वादश भाव में स्थित ग्रह से, ३. षष्ठेश व अष्टमेश से संयुक्त ग्रहों से, ४. लग्नेश की दुर्बलता से, ५. गतिमान ग्रह की महादशा से तथा ६. भावों में स्थित पापग्रह व उनकी दृष्टि, पाप प्रभाव युक्त राशि व भाव, नीच राशि गत अस्त व निर्बल ग्रह,मारक तथा बालारिष्ट ग्रहादि से।

रोगस्य चिन्तामपि रोगभावस्थितैर्ग्रहैर्वा व्ययमृत्युसंस्थैः।

रोगेश्वरेणापि तदन्वितैर्वा द्वित्र्यादिसम्वादवशाद्वदन्तु।।[१०]

ज्योतिषशास्त्र में कालपुरुष की कल्पना की गई है जिसके द्वादश अंग हैं। कालपुरुष के इन द्वादश अङ्गों पर द्वादश राशियों का आधिपत्य होता है तथा जन्मकाल में जो राशि निर्बल या पाप ग्रह से पीड़ित होती है मनुष्य के शरीर का वह अंग कमजोर और रोग ग्रस्त रहता है। जिसके आधार पर हम किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि मनुष्य को कौन सा रोग होगा यथा-

कालङ्गानि वराङ्ममाननुमुरो हृत्कोडवासोभृतो,

वस्तिर्वव्यंजनमूरुजानुयुगले जंघे ततोन्घ्रि द्वयम्।।

मेषाश्विप्रथमावनर्क्षचरणाश्चक्रस्थिता राशयो,

राशिक्षेत्रगृहर्क्षभानि भवनं चैकार्थ सम्प्रत्ययाः।।[११]

अर्थात मेष राशि का आधिपत्य शिर में, वृष का मुख, मिथुन का भुजाओं में, कर्क का हृदय में, सिंह का पेट में, कन्या का कमर में, तुला का वस्ति में, वृश्चिक का गुप्तांग में, धनु का उरु में, मकर का जानु में, कुम्भ का जंघाओं में तथा मीन का आधिपत्य पैरों में होता है। मेषादि द्वादश राशियों में सेजिस राशि परपाप ग्रहों का अत्यधिक प्रभाव रहता है जातक के उस राशि से सम्बन्धित अंग पर विविध रोग होते हैं जैसे-

१.८ मेषादि द्वादशराशियां एवं उनके रोग-

राशियां	रोग

9प्रश्नमार्गः अध्याय–12, श्लोक, 76

10फलदीपिकाः पूर्वाद्धृत, अ0 14, श्लोक–01

11बृहज्जातकम्– अध्याय–1 श्लोक, 4

मेष	नेत्ररोग, मुखरोग, मेदरोग, सिरदर्द, मानसिक तनाव, उन्माद एवं अनिद्रा।
बृष	गले एवं श्वासनली के रोग, घटसर्प तथा आंख, नाक एवं गले के रोग।
मिथुन	रक्तविकार, श्वास रोग, फुफ्फुसरोग एवं मज्जारोग।
कर्क	हृदयरोग एवं रक्तविकार
सिंह	उदरविकार, मेदवृद्धि एवं वायुविकार।
कन्या	जिगर, जिल्ली, अमाशय के विकार, अपचन, मन्दाग्नि एवं कमर के दर्द।
तुला	मूत्राशय के रोग, मधुमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ एवं बहुमूत्र।
वृश्चिक	गुप्तरोग, अर्श, भगंदर, उपदंश, शूक एवं संसर्ग-जन्य रोग।
धनु	यकृत दोष, ऋतु विकार, अस्थिभंग, मज्जारोग एवं रक्त दोष।
मकर	वात रोग, शीत रोग, चर्म रोग एवं रक्तचाप।
कुम्भ	जलोदर, मानसिक रोग, ऐंठन एवं गर्मी।
मीन	असहिष्णुता (एलर्जी), चर्मरोग, रक्तविकार, आमवात, आंव, ग्रन्थि, गठिया।

इसी प्रकार सूर्यादि नवग्रह हमारे शरीर में बाह्य अंगो के अतिरिक्त आन्तरिक भावों तथा शरीरस्थ धातुओं को भी प्रभावित करते हैं यथा-

आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः सत्वं धराजः शशिजोऽथ वाणी।

ज्ञानं सुखं चेन्द्रगुरुर्मदश्च शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम्।।[१२]

धातुओं के सन्दर्भ में कहा गया है-

स्नाय्यवस्थ्यसृक त्वगथ शुक्लवसे च मज्जा।

मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्य भौमः।।[१३]

अर्थात् सूर्य अस्थि का, चन्द्रमा रक्त का, मंगल मज्जा का, बुध त्वचा का, बृहस्पति वसा का, शुक्र वीर्य का और शनि स्नायु का कारक होता है। सूर्यादि ग्रह यदि पापाक्रान्त हो, निर्बल हो, शत्रु क्षेत्र में पीडित हो तो जातक को अनेक बीमारियां होने की सम्भावना बनती है। कौन सा ग्रह शरीर में किस रोग का कारण बनता है अथवा कौन से ग्रह किस रोग को देने वाले हैं इस विषय में ज्योतिषशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में वर्णन मिलता है जैसे-

सूर्यादीनां कुक्षिहृन्मूलर्द्धवक्षांस्यूरू वक्त्रं जानुनी चांघ्रियुग्मम्।

[12]लघुजातकम्– अध्याय–2 श्लोक, 1
[13]बृहज्जातकम– अध्याय–2 श्लोक 11

अंगानिस्युर्व्याधयोंगेग्रहाणांवक्तव्यादौर्बल्यदौस्थ्यादिभाजाम्।।[14]

ग्रहों के द्वारा प्रभावित अंग

ग्रह	सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अंग	कुक्षि	हृदय	शिर	वक्षस्थल	उरु	मुख	जानु
कारक	अस्थि	रक्त	मज्जा	त्वचा	मज्जा	वीर्य	स्नायु
दोष	पित्त	वात एवं कफ	पित्त	त्रिदोष	कफ	कफ एवं वायु	वायु

१.६ लग्नादि द्वादश भावों से विचारणीय रोग-

जन्मांगचक्र में लग्नादि द्वादश भावों के द्वरा मानव जीवन में होने वाले रोगों का विश्लिेषण पूर्व में ही किया जा सकता है। तथा किस-किस भाव से भाव से कौन-कौन से रोगों का विचार किया जा है वह निम्न है-

प्रथम भाव- इस भाव से सिर दर्द, मानसिक रोग, नजला, एवं दिमागी कमजोरी का विचार किया जाता है। यह भाव व्यक्ति के स्वास्थ्य का प्रतिनिधि भाव है। व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का इस भाव से मूल्यांकन होता है।

द्वितीय भाव- इस भाव से मृत्यु का विचार होता है। यह भाव नेत्र रोग, कर्ण रोग, मुख रोग, नासा रोग, दन्त रोग, तथा गले की खराबी का प्रतिनिधित्व करता है।

तृतीय भाव- इस भाव से कंठ एवं गले की खराबी, गण्डमाला, श्वास, खांसी, दमा, फेफड़े के रोग एवं हाथों में होने वाले विकारों, दुबलापन आदि का विचार किया जाता है।

चतुर्थ भाव- इस भाव से छाती, ह्रदय एवं पसलियों में होने वाले रोगों का विचार किया जाता है। पागलपन एवं अन्य मानसिक विकारों के विचार में भी इस भाव का अत्यंत महत्व होता है।

पंचम भाव- इस भाव से मंदाग्नि, अरुचि, पित्त रोग, जिगर, तिल्ली एवं गुर्दे के रोगों का विचार किया जाता है। यह भाव पेट के सभी रोगों का प्रतिनिधित्व करता है।

षष्ठम भाव- इस भाव से कमर का दर्द, अपेंडिक्स, आंतों की बीमारी, हर्निया एवं अश्मरी का विचार किया जाता है।

[14]प्रश्नमार्ग– अध्याय:–12 श्लोक 07

सप्तम भाव- इस भाव से भ्रमण, मधुमेह, प्रदर , उपदंश, पथरी, गर्भाशय के रोग तथा बस्ती में होने वाले रोगों का विचार किया जाता है।

अष्टम भाव- इस भाव से गुप्त रोग, वीर्य विकार, अर्श, भगंदर, उपदंश, संसर्गजन्य रोग, वृषण रोग, एवं मूत्रकृच्छ का विचार किया जाता है।

नवम भाव- इस भाव से स्त्रियों के मासिक धर्म संबंधी रोग, यकृत दोष, रक्त विकार, वायु विकार, कूल्हे का दर्द एवं मज्जा रोगों का विचार किया जाता है।

दशम भाव- इस भाव से गठिया, कंपवात, चर्म रोग, घुटने का दर्द एवं अन्य वायु जनित रोगों का विचार किया जाता है।

एकादश भाव- इस भाव से पैर में चोट, पैर की हड्डी टूटना, पिंडलियों में दर्द, शीत विकास एवं रक्त विकार का विचार किया जाता है।

द्वादश भाव- इस भाव से असहिष्णुता (एलर्जी) कमजोरी, नेत्र विकार, पोलियो एवं शरीर में रोगों प्रतिरोध क्षमता की कमी आदि का विचार किया जाता है।

१.१० लग्न से शारीरिक सुख का ज्ञान-

देहाधीशः सपापो व्ययरिपुमृतिगश्चेत्तदा देहसौख्यं।

न स्याज्जन्तोर्निजर्क्षे व्ययरिपुमृतिपस्तत्फलस्यैव कर्ता।।

मूर्तौ चेत्क्रूरखेटस्तदनु तनुपतिः स्वीयवीर्येण हीनो।

नानातंकाकुलः स्याद् व्रजति हि मनुजो व्याधिमाधिप्रकोपम्।।

अंगाधीशः स्वगेहे बुधगुरुकविभिः संयुतः केन्द्रगो वा।

स्वीये तुंगे स्वमित्रे यदि शुभभवने वीक्षितः सत्स्वरूपः।।

स्यन्नूनं पुण्यशीलः सकलजनमतः सर्वसम्पन्निधानं।

ज्ञानी मन्त्री च भूपः सुरुचिरनयनो मानवो मानवानाम्।।[१५]

अर्थात् लग्नेश यदि पापग्रहों के साथ त्रिकस्थानों में हो तो जातक को शारीरिक सुख प्राप्त नहीं होता है। यदि द्वादशेश, षष्ठेश, अष्टमेश अपने- अपने भावों में स्थित हो तो भी जातक को शारीरिक सुख होता। लग्नेश यदि निर्बल हो और लग्न में पाप ग्रह स्थित हों तो जातक अनेक रोगादि से कष्ट पाता है।

[15]जातकालंकार

यदि बुध, बृहस्पति और शुक्र से युत लग्नेश लग्न में हो, केन्द्रस्थ में हो, अपनी उच्चराशि में हो, मित्र राशि में हो, शुभ भाव में हो, तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो जातक सुन्दर, पुण्यात्मा, सर्वमान्य, समस्त सम्पत्ति से युक्त, ज्ञानी, विद्वान तथा राजा होता है।

लग्नाधीशे नाशगते तु शुष्कराशौ तनोः कष्टमतीव कृच्छ्रम्।

लग्नाशपस्थांशपराशिनाथः शुष्कग्रहः स्यात्तनुशुष्कमाहुः।।

लग्नेश शुष्क राशि का होकर यदि अष्टम भाव में स्थित हो तो जातक का शरीर रोगादि से दुर्बल होता है। लग्नेश जिस राशि के नवांश में स्थित हो उस राशि का स्वामी यदि दुःस्थानगत हो तो भी जातक का शरीर दुर्बल होता है। इसी प्रकार क्रूर ग्रहों से युक्त लग्नेश यदि त्रिक स्थानों में हो तब भी शारीरिक सुख नहीं होता है। लग्नेश षष्ठेश से युत होकर त्रिकस्थ हो तो तब भी जातक रोगी होता है-

सक्रूरो देहपो देहसौख्यहाऽन्त्यारिरन्ध्रगः।

सारीशे देहपे दुःस्थे लग्नस्थे वाऽथ रोगवान्।।

जन्म कुण्डली के द्वारा विविध प्रकार के शारीरिक रोगों का ग्रहों की युति स्थिति के आधार विश्लषण किया जाता है। अब आप जन्मांगचक्र में ग्रहों के द्वारा बनने वाले विभिन्न रोंगों को पढेगें-

१.११ विभिन्न रोगों के योग

मन्दारान्वितवीक्षिते व्ययधने चन्द्रारुणौ चाक्षिरुक्।

शौर्यायागिरसो यमारसहिता दृष्टा यदि श्रोत्ररुक्।।

सोग्रे पञ्चमभे भवेदुदररुग्रन्ध्रारिनाथान्विते।

तद्वत्सप्तमनैधने सगुदरुक्छुक्रे च गुह्यामयः।।

द्वादश या द्वितीय भाव में सूर्य या चन्द्रमा स्थित होकर यदि मगंल और शनि से दृष्ट हो या युत हो तो नेत्र रोग होता है। तृतीय भाव, एकादश से युत या दृष्ट हो तो नेत्र रोग होता है । तृतीय भाव, एकादश भाव और बृहस्पति यदि मगंल और शनि से युत या दृष्ट हो तो कर्णरोग होता है। षष्ठेश या अष्टमेश के साथ मगंल यदि पचंम भाव में स्थित हो तो जातक उदरव्याधि से पीडित होता है। उसी प्रकार षष्ठेश या अष्टमेश यदि सप्तम भाव में स्थित हों तो गुदामार्ग में रोग होता है। उक्त योग में यदि शुक्र हो तो व्यक्ति जननेन्द्रिय सम्बन्धित व्याधि से पीडित होता है।

१.११.१ नेत्ररोग-

द्वादश भाव से वामनेत्र और द्वितीय भाव से दक्षिणनेत्र का विचार किया जाता है। यदि सूर्य अथवा चन्द्रमा द्वितीय भाव मे मगंल और शनि से दृष्ट हों तो जातक को नेत्ररोग होता है। यदि सूर्य या चन्द्रमा के साथ मंगल हो और उन पर शनि की दृष्टि भी हो तो जातक का ऑपरेशन आदि भी होता है। इसी प्रकार सूर्य या चन्द्रमा के साथ यदि शनि युत हो और मंगल के द्वारा दृष्ट हो, तो आपरेशन आदि उपचार के द्वारा पुनः नेत्रज्योति प्राप्त होती है। किन्तु यदि द्वितीय या द्वादश भावस्थ सूर्य और चन्द्रमा को शनि तथा मंगल दोनों देखतें हो तो नेत्रज्योति का नाश होता है। इसी प्रकार कर्णरोग का विचार भी करना चाहिए।

तृतीय भाव के पीडित होने से स्वजनों एवं बन्धु-बन्धवों, ज्येष्ठ भ्राता आदि को कष्ट और एकादश भाव के पाप पीडित होने पर किसी निकट सम्बन्धी की हानि होती है।[१६]

इसी प्रकार फलदीपिकाकार आचार्य मन्त्रेश्वर ने अन्य रोगों के विषय में कहा है- यदि छठे या आठवें भाव में सूर्य स्थित हो तो ज्वरादि का भय होता है। मंगल या केतु हों तो व्रण तथा चोट आदि का भय होता है। शुक्र हो तो गुप्तांग में रोग होता है। बृहस्पति हो तो क्षयरोग होता है। शनि हो तो वात विकार से जनित व्याधियों का भय होता हैं। मंगल से दृष्ट राहु यदि छठे या आठवें भाव में स्थित हो तो कठिन व्रण (कार्बंकल) आदि की सम्भावना होती है। उक्त भावों में यदि शनि के साथ चन्द्रमा स्थित हो तो प्लीहा (तिल्ली), शोथ से उत्पन्न व्याधि होती है। जलराशि (कर्क, मीन, वृश्चिक और मकर का उत्तरार्द्ध) का क्षीण चन्द्रमा (कृष्ण पक्ष की पंचमी से शुक्ल पक्ष की पंचमी तक का चन्द्रमा क्षीण होता है) पापग्रहों के साथ यदि षष्ठ या अष्टम भाव में स्थित हो तो अम्बुरोग (जलोदर) या क्षयरोग होता है। जैसे-

षष्ठेऽर्केप्यथवाष्टमे ज्वरभयं भौमे च केतौ व्रणम्।

शुक्रे गुह्यरुजं क्षयं सुरगुरौ मन्दे च वातामयम्।।

राहौ भौमनिरीक्षिते च पिलकां सेन्दौ शनौ गुल्मजं।

क्षीणेन्दौ जलभेषु पापसहिते तत्स्थेऽम्बुरोगं क्षयम्।।

ऐसे ही यदि किसी जातक के जन्म समय में लग्नस्थान में स्थित मंगल को अथवा चन्द्रमा को गुरु और शुक्र देखते हों तो मनुष्य काणा होता है। सूर्य से आगे कालांश के भीतर अर्थात अस्तासन्न मंगल हो तो कान्तिहीन दृष्टि होती

---

[16]फलदीपिका 4 / 10

है। इसी प्रकार सूर्य से आगे बुध हो तो आंखों में चिन्ह होता है। यदि पापदृष्ट शुक्र लग्न या अष्टम में हो तो जातक की आंखें अश्रुपात से पीडित होती है। यथा-

स्यान्नूनं चाल्पनेत्रस्तदनु तनुगतं भूमिजं वा अपेशं।

पश्येद् वाचस्पतिश्चेदसुरकुलगुरुः काणदृंगमानवः स्यात्।।

विच्छाया तिग्मभानोः क्षितिभुवि च परोभागगे दृंगनराणां।

सौम्ये चिन्हं दृशि स्यादथ क्वुषि लये भार्गवे क्रूरदृष्टे।।[१७]

प्रिय छात्रों बृहत्पाराशरहोराशास्त्रकार ने भी कहा है कि- षष्ठेश स्वगृह या लग्न में अथवा अष्टम भाव में स्थित हो तो जातक के शरीर में व्रण (घाव) होते है। षष्ठ भाव में जो राशि हो, उससे सम्बन्धित जो अंग होता हैअउस अंग मे विशेष रूप से व्रण (घाव) होते हैं। इसी प्रकार पिता आदि भावों के अधिपति षष्ठेश से युक्त होकर षष्ठ या सप्तम भावों से युक्त हो तो पिता आदि व सम्बन्धियों को व्रण कहना चाहिए। यदि सूर्य षष्ठ स्थान का अधिपति होकर उक्त स्थान में स्थित हो तो मस्तिक में, चन्द्र से मुख में, भौम से कण्ठ में, बुध से नाभि में, गुरु से नासिका में, शुक्र से नेत्र में, शनि से पैर में एवं राहु अथवा केतु से कुक्षि (पेट) में व्रण कहना चाहिए। लग्नेश भौम के क्षेत्र (मेष, वृश्चिक) अथवा बुध के क्षेत्र (मिथुन, कन्या) में से किसी भाव में स्थित हो और बुध से दृष्ट हो तो जातक के मुँह में व्रण होते हैं। यथा-

षष्ठाधिपः स्वगेहे वा देहे वाऽप्यष्टमे स्थितः।

तदा व्रणो भवेद्देहे षष्ठराशिसमाश्रिते ।।

एंव पित्रादिभावेशास्तत्तत्कारकसंयुताः।

व्रणाधिपयुताश्चापि षष्ठाष्टमयुता यदि।।

तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम्।

इन्दुना च मुखे कण्ठे भौमेन ज्ञेय नाभिषु ।।

गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे ।

शशिना राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत्।।

लग्नाधिपः कुजक्षेत्रे बुधभे यदि संस्थितः।

---

[17]जातकालंकार योगाध्याय/06

यत्र कुत्र स्थितो ज्ञेन वीक्षितो मुखरुक्प्रदः।।

इसी प्रकार द्वितीय भाव में शनि भूलेख और मंगल की युति द्वितीय के साथ हो तो जातक नेत्र रोग से ग्रसित होता है ऐसे ही द्वितीय भाव यदि अनेक आप ग्रहों से युक्त हो और उन पर शनि की दृष्टि हो तो भी जातक नेत्र विकार से युक्त होता है। वक्री ग्रह की राशि में यदि षष्ठेश स्थित हो तो भी जातक नेत्र रोग से ग्रसित होता है। इसी प्रकार मंगल की राशि में स्थित लग्नेश यदि मंगल से तथा बुध की राशि में स्थित लग्नेश बुध से देखा जाता हो तो तो जातक नेत्र रोगी होता है। अष्टमेश लग्नेश के साथ यदि छठे भाव में स्थित हो तो जातक बाईं आंख रोग ग्रसित होती है। ऐसे ही अष्टम भाव में यदि शुक्र स्थित हो तो जातक की दाहिनी आंख में रोग होने की संभावना बनती है। धनेश शुभ ग्रहों से से दृष्ट हो और लग्नेश पापग्रहों से युक्त हो तो जातक नेत्र रोगी होता है। मंगल, शनि और मान्दी से युक्त द्वितीयेश नेत्र हमेशा रोग कारक होता है। जिस जातक की जन्मकुण्डली में द्वितीय और द्वादश भाव में स्थित पाप ग्रह शनि से देखा जाता हो वह भी नेत्र रोगी होता है। यदि नेत्रेश की नवमांश राशि का स्वामी यदि पाप ग्रह की राशि में स्थित हो तो जातक नेत्र रोगी होता है। ऐसे ही लग्न अथवा अष्टम भाव में स्थित शुक्र यदि क्रूरग्रहों से दृष्ट हो तो जातक अश्रुपात से से पीड़ित होता है।

शन्यायरयोगे गुलिकेन युक्ते नेत्रेश्वरे तत्र तु नेत्ररोगरू।

नेत्रे यदा पापबहुत्वयोगे यमेन दृष्टे सति रूग्णनेत्ररू।।[१८]

मंगल शयन अवस्था में होकर यदि लग्न में स्थित हो तो जातक नेत्र रोग से ग्रसित होता है। द्वितीयेश यदि शुक्र से युक्त हो तो जातक तब भी नेत्र रोगी नेत्र रोगी भी नेत्र रोगी नेत्र रोगी होता है। ऐस ही शुक्र से छठे, आठवें या बारहवें भाव में यदि नेत्रेश स्थित हो तो जातक नेत्र रोगी होता है। त्रिकोण में सूर्य यदि पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो जातक के नेत्र निस्तेज अर्थात ज्योतिविहीन होते हैं। ऐसे ही शनि और मंगल यदि गुलिक से युक्त होकर द्वितीयेश के साथ द्वितीय भाव में बैठे हों तो जातक नेत्र रोगी होता है। तथा द्वितीय भाव में यदि पापग्रह स्थित होकर शनि से देखे जाते हों तो जातक नेत्र रोग होता है।

१.११.२ जन्मान्ध योग-

जिस जातक की जन्मांग पत्रिका में लग्नेश यदि सूर्य और शुक्र के साथ त्रिक अर्थात छठे, आठवें या बारहवें भाव में स्थित हो अथवा ग्रहणकालिक सूर्य यदि लग्न में और मंगल शनि त्रिकोण (५,९) भाव में हों या नेत्र स्थान (द्वितीय,

[18]जातक पारिजात–

द्वादश) का स्वामी सूर्य और शुक्र के साथ यदि त्रिक (तृतीय, षष्ठ, द्वादश) भाव में हों तो जातक जन्मांध होता है।

चंद्रमा यदि भौम के साथ त्रिक स्थानों में हो तो तो जातक किसी ऊंचे स्थान से गिरकर अंधा होता है। ऐसे ही चंद्रमा यदि बृहस्पति के साथ त्रिक स्थानों में हो तो जातक अत्यधिक ताप से अंधा होता है। अथवा चंद्रमा यदि बुध के साथ त्रिकस्थ हो तो जातक किसी शस्त्र के द्वारा चोट लगने से अंधा होता है।

यदि किसी व्यक्ति के जन्म समय में राहु से ग्रस्त सूर्य लग्न में हो और लग्न से नवें तथा पांचवें स्थान में शनैश्चर वा मंगल हों तो ऐसा जातक जन्मान्ध होता है।[१९]

१.११.३ कर्ण रोग-

जिस जातक की जन्मपत्रिका में षष्ठ्यंशस्थ मंगल यदि तृतीय भाव में स्थित हो तो जातक के कान में रोग होता है। इसी प्रकार तृतीय भाव में शनि के साथ गुलिक शुभ ग्रहों की दृष्टि से विहीन होकर स्थित हो तो जातक को कर्ण रोग होता है। तृतीय भाव का अधिपति यदि क्रूर षष्ठ्यंश में स्थित हो तो जातक कर्ण रोगी रोगी बनता है। ऐसे ही कारकांश लग्न में पाप दृष्ट केतु की स्थिति कान में छेद करवाता है। अथवा कर्ण रोग दायक होता है।

१.११.४ दन्तरोग विचार-

यदि किसी जातक की जन्मकुण्डली में पापग्रह अर्थात सूर्य, मंगल, चन्द्रमा और शनि लग्न से सातवें स्थान में स्थित हों तो ऐसे व्यक्ति के दान्तों में विकार होता है।[२०]

जन्म समय में यदि मेष, वृष, और धनु इनमें से कोई लग्न में हो और पापग्रहों से दृष्ट हो तो ऐसे जातक के दॅात रोग ग्रस्त होता हैं।[२१]

पापदृष्ट धनु, वृष या मेष लग्न होने से मनुष्य दन्तरोगी और पापयुत दृष्ट धनु या वृष लग्न हो तो खल्वाट होता है। यदि पापग्रह लग्न से नवम, द्वितीय, द्वादश और पांचवें भाव में हो तो मनुष्य बन्धनभागी होता है। इसी तरह पापग्रहयुत मेष, धनु या वृष लग्न होने से रज्जु कृत बन्धन होता है।

क्रूरैर्दष्टे विलग्ने सुविकृतरदनश्चाापगो मेषसंज्ञे।

---

[19]बहज्जातकम् अनिष्टाध्याय / 12

[20]होराशास्त्रम् अनिष्टाध्याय / 11

[21]होराशास्त्रम् अनिष्टाध्याय / 15

खल्वाटः पापलग्ने धनुषि गवि तथाऽऽलोकिते क्रूरखेटैः।।

धर्मार्थान्त्यात्मजस्था यदि खलखचरा बन्धभाक् पुरुषः स्या-

देवं लग्ने क्रिये वा धनुषि गवि तथा रश्मिजं बन्धनं नुः।।[२२]

१.११.५ कुष्टादि रोगकारक योग-

लग्नेश मंगल या बुध हो और चन्द्र ,राहु या शनि से युक्त हो तो जातक को कुष्ठ रोग का प्रकोप रहता है ।लग्नेश न हो और चन्द्र लग्न में राहु के साथ स्थित हों तो श्वेत कुष्ठ का योग होता है और शनि के साथ स्थित हो तो कृ ष्णकुष्ठ एंव भौम के साथ हो तो रक्तकुष्ठ कारक योग होता है।

लग्नाधिपौ कुजबुधौ चन्द्रेण यदि संयुतौ।

राहुणा शनिना सार्द्धं कुष्ठं तत्र विनिर्दिशेत्।।

लग्नाधिपं विना लग्ने स्थितश्चेत्तमसा शशी।

श्वेतकुष्ठं तदा कृष्ण कुष्ठं च शनिना सह।

कुजेन रक्तकुष्ठं स्यात्ततदेवं विचारेत्।।

इसी प्रकार जातकालंकार ग्रन्थ में आचार्य गणेश दैवज्ञ का कथन है कि जिसके जन्मकाल में लग्न का स्वामी और बुध अथवा मंगल और चन्द्रमा, राहु या केतु से युत होकर किसी स्थान में हों तो वह मनुष्य श्वेत कुष्ठ रोग वाला होता है। यदि मंगल के साथ सूर्य होतो जातक रक्त कुष्ठ से पीडित होता है। यदि मंगल शनि के साथ होतो कृष्ण कुष्ठ होता है। सूर्य के साथ लग्नेश यदि द्वादश, षष्ठ और अष्टम स्थानों में से किसी भी हो तो मनुष्य तापगण्ड नामक रोग विशेष से पीडित रहता है। यथा-

लग्नाधीशेन्दुपुत्रौ क्षितितनयनिशानायकौ क्वावि संस्थौ।

युक्तौ स्वर्भानुना वा भवति हि मनुजः केतुना श्वेतकुष्ठौ।।

आदित्यो भौमयुक्तस्तदनु शनियुतौ रक्तकृष्णाख्यकुष्ठी।

सार्को लग्नाधिनाथी व्ययरिपुनिधनस्थानगस्तापगण्डः।।[२३]

ऐसे ही मंगल और शनि से युत चन्द्रमा मेष या वृष राशि में हो तो रोगयुक्त श्वेतकुष्ठी होता है। यदि शुक्र, मंगल, चन्द्र और शनि, मीन, कर्क या

---

[22]जातकालंकार योगाध्याय / 31
[23]जातकालंकार योगाध्याय / 06

वृश्चिक राशि में बैठे हों तो मनुष्य शरीर-सुखहीन, महापापी और रक्तकुष्ठी होता है। गुरु, शुक्र या लग्न से छठे स्थान का स्वामी पापग्रह से दृष्ट हो तथा लग्न में हो तो मनुष्य के मुख में शोफ रोग होता है।

चन्द्रो मेषे वृषे वा कुजशनिसहितः श्वेतकुष्ठी सरोगो।
दैत्येज्यारेन्दुमन्दास्तिमिभवनगताः कर्कटालिस्थिता वा।।
अंगे सौख्येन हीनः परमकलुषकृद्रक्तकुष्ठी नरः स्याद्।
वागीशो भार्गवो वा यदि रिपुगृहपो मूर्तिगः क्रूरखेटैः।।[२४]

१.११.६ गण्डादिकारकयोग-

षष्ठेश और अष्टमेश लग्न में सूर्य के साथ युक्त हो तो ज्वरगण्ड होता है। मंगल से युक्त होने पर गठिया, जोडों का दर्द, वायु जनित रोग तथा शस्त्र से आघात होता है। बुध से युक्त होने पर पित्त सम्बन्धी व्याधि होती है। गुरु से युक्त होने पर रोग का अभाव। शुक्र से युक्त रहने पर पत्नी द्वारा रोग की उत्पत्ति। शनि से युक्त रहने पर वायु सम्बन्धी रोग का प्रकोप, राहु से युक्तहो तो अन्त्यज जाति से आघात एवं केतु से युक्त रहने पर नाभि में व्रण (घाव) होता है।चन्द्र से युक्त होने पर जल से उत्पन्न रोग अथवा कफसम्बन्धी व्याधि कहनी चाहिए। इसी प्रकार पितृ आदि भावों से युक्त होने पर पिता आदि परिवार के सदस्यों को भी उक्त रोगसम्बन्धी परेशानी होती है अतः उनका रोगविचार भी करना चाहिए। यथा-

लग्ने षष्ठाष्टमाधिशौ रविणा यदि संयुतौ।
ज्वरगण्डः कुजे ग्रन्थिः शस्त्रव्रणमथापि वा।।
बुधेन पित्तं गुरुणां रागाभावं विनिर्दिशेत्।
स्त्रीभिः शुक्रेण शनिना वायुना संयुतो यदि।।
गण्डश्चाण्डालतो नाभौ तमःकेतुयुते भयम्।
चन्द्रेण गण्डः सलिलैः कफश्लेष्मादिना भवेत्।।
एंव पित्रादिभवानां तत्तत्कारकयोगतः।
गण्डं तेषां वदेदेवमूह्यमत्र मनीषिभिः।।

---

[24]जातकालंकार योगाध्याय/08

इसी प्रकार जातकालंकार ग्रन्थ में आचार्य गणेश दैवज्ञ का कथन है कि जिसके जन्मकाल में चन्द्रमा के साथ लग्नेश त्रिक अर्थात छठे आठवें, बारहवें स्थान में हो तो उसे जल से उत्पन्न गण्डरोग होता है। यदि मंगल से युक्त लग्नेश त्रिक स्थानों में हो तो शस्त्रजनित घाव से ग्रन्थरोग होता है। इसी प्रकार त्रिक स्थान में स्थित लग्नेश बुध के साथ होने पर पित्तरोग, गुरु के साथ रहने पर ऑव रोग, शुक्र से युत हो तो क्षय रोग और शनि, राहु, वा केतु से यति करे तो चोर अथवा अन्त्यज जाति से उत्पन्न रोग होता है। जैसे-

ज्ञेयश्चन्द्रेण गण्डो जलज इह युतो ग्रन्थिशस्त्रव्रणः स्याद्।

भूमिपुत्रेण पित्तं हिमकरतनयेनाथ जीवेन रोगः।

आमोद्भूतस्ततत्रश्चेद् भृगुतनययुतो नुः क्षयाख्यो गदः स्या-

च्चौरोद्भूतोन्त्यजाद्वा यमशिखितमसामेकयुक् तन्वधीशः।[२५]

१.११.७ विकलांग योग-

यदि केन्द्र (प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम) स्थानक्रूराक्रान्त हो, केन्द्र में सूर्य और चन्द्रमा स्थित हों, लग्न में शुक्र यदि शनि से दृष्ट हो तो कटिभाग से विकलांग, चतुर्थ भाव में शुक्र हो और मंगल शनि या बुध के साथ बृहस्पति का योग हो तो क्रमशः पैर, हाथ या कटिभाग से विकलांग, दशम भाव में चन्द्रमा, सप्तम भाव में मंगल और शनि वेशिस्थान (सूर्य से द्वितीय भाव) में स्थित हो, पंचम अथवा नवम भाव में स्थित मंगल पापग्रहों से दृष्ट हो तो भी जातक विकलांग होता है। द्वितीय भाव में शनि, दशम भाव में चन्द्रमा तथा सप्तम भाव में बुध हो या शुक्र चन्द्रमा और शनि नीच राशिगत हों और कुम्भराशिगत सूर्य हो तो उपर्युक्त सभी योगों में जातक विकलांग अर्थात् विकल अंगों वाला होता है। लग्न से नवम स्थान में पापग्रहयुक्त शनि और चन्द्रमा यदि मेष, मीन, कर्क, मकर और वृश्चिक राशियों में से किसी राशि में हो तो मनुष्य खन्ज लंगडा होता है।[२६]

इसी प्रकार यदि लग्न से अष्टम और नवम स्थानों के स्वामी पाप ग्रह से चतुर्थ स्थान में पापयुत हो अथवा मंगल और शनि के साथ राहु या सूर्य लग्न से छठे, स्थान में हो या पापदृष्ट शनि और षष्ठेश द्वादश भाव में हो तो उक्त

---

[25]जातकालंकार योगाध्याय / 07

[26]जातकालंकार योगाध्याय / 10

तीनों योगों में उत्पन्न जातक विकलांग होता है। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र और शनि यदि लग्न से छठे या आठवें स्थान में हो तो मनुष्य के हाथों में पीडा होती है। जैसे-

आयुः पुण्याधिनाथौ यदि खलखचरात् तुर्यगौ पापयुक्तौ।

जंघावैकल्यवान् स्यात् कुजशनिसहिते सैहिकेये च सूर्ये।।

द्वेष्यस्थे तद्वदेवं शनिरिपुगृहपौ रिःफयातौ खलैश्चेद्।

दृष्टौ तद्वत्तदानीं रविविधुरविजा वैरिरन्ध्रालयस्थाः।।[२७]

१.११.८ उन्माद योग-

यदि किसी जातक के जन्मकाल में मंगल लग्न से सातवें स्थान में तथा बृहस्पति लग्न में हो तो वह जातक विक्षिप्त होता है।

यदि शनैश्चर लग्न में और मंगल नवम, पंचम या सप्तम भाव में स्थित हों तो भी जातक विक्षिप्त होता है।

शनैश्चर के साथ क्षीणचन्द्रमा लग्न से बारहवें स्थान में हों तो भी वह जातक विक्षिप्त होता है।

सोन्मादोऽवनिसूनुनास्तभवने जीवे विलग्नाश्रिते।

तद्वच्चाह यमोदयेऽवनिसुते धर्मात्मजद्यूनेगे।।

याते वा ससहस्त्ररश्मितनये क्षीणे व्ययं शीतगौ।[२८]

लग्न में बृहस्पति यदि सप्तम भाव में बैठे हुए मंगल से देखा जाता हो तो जातक उन्मादी अर्थात विक्षिप्त होता है। शनि लग्न में हो तथा सप्तम भाव या पंचम नवम अर्थात त्रिकोण स्थान में मंगल स्थित हो तो हो तो तो जातक उन्माद रोग से ग्रसित होता है। इसी प्रकार लग्न में शनि, द्वादश भाव में सूर्य तथा त्रिकोण स्थान में चंद्रमा या मंगल स्थित हो तो भी जातक उन्माद रोग से ग्रसित होता है। ऐसे ही तृतीय भाव का स्वामी यदि अस्त या नीच राशि में होकर अष्टम भाव में में बैठा हो तथा पाप ग्रहों के द्वारा देखा जाता हो तो हो तो भी जातक उन्मादी होता है। ऐसे ही पूर्ण चंद्रमा द्वादश भाव में शनि के साथ युक्त होकर पाप ग्रहों के द्वारा देखा जाता हो तो जातक विष के प्रभाव से उन्मादी होता है।

[27] जातकालंकार योगाध्याय/27

[28] होराशास्त्रम् अनिष्टाध्यायः 13

धनेश एवं शनि यदि पाप ग्रहों के द्वारा युक्त हों तो जातक वायुजन्य उन्माद से उन्माद से ग्रसित होता है। इसी प्रकार शनि तथा धनेश यदि सूर्य से युक्त हो तो राजकोप के कारण उन्माद से ग्रसित होता है। यदि जातक के जन्मांग चक्र में शनि और धनेश भौम से युक्त हो तो पित्त के द्वारा उन्माद होता है। इसी प्रकार सूर्य और चंद्रमा त्रिकोण अर्थात पञ्चम, नवम भाव या लग्न में हों तथा केंद्र में बृहस्पति एवं जन्म के समय शनि या मंगल की कालहोरा हो या शनिवार अथवा मंगलवार के दिन का जन्म हो तो जातक उन्माद ग्रस्त होता है। ऐसे ही चंद्रमा यदि लग्न में शनि से युति करता हो और बुध से देखा जाता हो तो जातक अविवेकी अर्थात विकल होता है।

इज्येऽगें केजस्ते उन्मादी।

लग्ने शनौ मन्दत्रिकोणे कुजे उन्मादी।

मन्देगें व्ययेर्के कोणे चन्द्रे वा भौम उन्मादी।

मूढे नीचे षष्ठे सोत्थेशे पापदृष्टे गरलज उन्मादी।

क्षीणेन्द्वर्कजावन्त्ये उन्मादी।

मन्दार्थेशौ सपापौ वातज उन्मादः।

धनेशार्कजौ सूर्ययुतौ राजकोपज उन्मादः।

यमार्थेशौ भौमयुतौ पित्तज उन्मादः।

चन्द्रार्कौ कोणांगौ केन्द्रे जीवे यमारक्षणवारे उन्मादः।

इन्द्वर्कजौ लग्ने ज्ञदृष्टौ विह्वलः।[२९]

१.११.९ क्षयरोग-

लग्नेश के साथ शुक्र यदि त्रिकस्थ हो तो जातक क्षय रोग से पीड़ित होता है। कारकांश लग्न से चतुर्थ भाव और द्वादश भाव में क्रमशरू मंगल और राहु अर्थात चतुर्थ भाव में मंगल और द्वादश भाव में राहु हो तो जातक क्षय रोगी होता है। इसी प्रकार लग्न को यदि मंगल और शनि देखते हैं तो जातक श्वासादि क्षय रोग से से पीड़ित होता है। ऐसे ही सूर्य और चंद्रमा यदि परस्पर एक दूसरे की राशि में स्थित हो तो जातक क्षय रोगी होता है। इसी प्रकार सूर्य और चंद्रमा एक साथ सिंह राशि में अथवा कर्क राशि में हो स्थित हों तो जातक क्षय रोगी होता है। शनि के साथ चंद्रमा यदि मंगल के द्वारा देखा जाता हो तो जातक

[29]जातकतत्वम्–प्रथमविवेकः पृष्ठ–118

संग्रहणीजन्य क्षयरोग से पीड़ित होता है। बुध यदि कर्क राशि में हो तो जातक को क्षय रोग होने की संभावना बनती है।

सूर्य और चन्द्रमा ये परस्पर एक दूसरे के गृह या नवांश में स्थित हों अर्थात सूर्य के स्थान में या नवांश में चन्द्रमा और चन्द्रमा के स्थान या नवांश में सूर्य हो तो जातक क्षयरोग युक्त होता है। अथवा एक समय में एक ही स्थान में ही अर्थात सिंह राशि सिंह राशि के नवांश या कर्क राशि कर्क राशि के नवांश में ही दोनों (सूर्य और चन्द्रमा) स्थित हों तो भी जातक क्षयरोग से पीडित होकर कृश देह वाला होता है।

अन्तश्शशिन्यशुभयोर्मदगे पतंगे।

श्वासक्षयप्लिहकविद्रधिगुल्मभाजः।।

शोषी परस्परगृहांशगयो रवीन्द्वोः।

क्षेत्रेऽथवा युगपदेव तयोः कृशो वा।।[३०]

१.११.१० वायु जनित रोग-

नीचे राषि का शश्ठेष यदि षनि से युत हो तो जातक को वायु जनित रोग देने वाला होता है। लग्न में बृहस्पति, तथा सप्तम भाव में शनि की स्थिति बनती हो तो जातक वायु जनित रोगों से पीड़ित रहता है। इसी प्रकार त्रिकोण अथवा सप्तम स्थान में मंगल और लग्न में षनि स्थित हो तो वात की अधिकता से जातक को अत्यधिक कष्ट होता है। यदि क्षीण चंद्रमा के साथ शनि द्वादश भाव में स्थित होय तो भी वात की अधिकता के कारण जातक को अत्यंत कष्ट होता है। यदि किसी जातक की पत्रिका में शुक्र और मंगल लग्न से सप्तम स्थान में विद्यमान होकर पापग्रहों से दृष्ट हों तो जातक वात जनित रोग से परव्याप्त होता है।[३१]

इसी तरह यदि किसी जातक के जन्म समय में शनि सातवें तथा बृहस्पति लग्न में स्थित हो तो जातक वातरोगी होता है।[३२]

१.१२ रोग शान्ति हेतु उपाय-

पीडाकारक ग्रहों की महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, योगिनि दशा तथा गोचर की स्थिति वशात् वर्त्तमान व भविष्य में हाने वाले रोंगों का ज्योतिषशास्त्र के द्वारा पूर्वानुमान करके तथा उन ग्रहों से सम्बन्धित दान, स्नान, मन्त्र जाप, ध्यान, यज्ञ,

[30]होराशास्त्रम् अनिष्टाध्याय/08

[31]बृहज्जातकम् अरिष्टाध्याय/07

[32]होराशास्त्रम् अनिष्टाध्याय/13

अनुष्ठान, ईष्टार्चन, रत्न धारण, औषधि सेवन, स्त्रोत्रादि का पाठ व ग्रहों से सम्बन्धित रंगों का प्रयोग तथा अपनी दैनिक दिनचर्या एवं खान-पान में सुधार करके हम रोगों को समाप्त कर सकते हैं-

सूर्यादीनां मुनिभिरुदिता दक्षिणास्तु ग्रहाणां।

स्नानैर्दानैर्हवनबलिभिस्तत्र तुष्यन्ति यस्मात्।।[३३]

१.१३ रोगनिवृत्ति हेतु रत्न (मणि) धारण-

ग्रहों के अशुभ प्रभाव को दूर करने के लिये हमारे शास्त्रों में रत्न धारण करने की विधि को विस्तृत रूप से बताया गया है। ग्रहों तथा रत्नों का आपस में धनिष्ठ सम्बन्ध है। खगोल में स्थित ग्रह, नक्षत्र व तारे अपनी रश्मियां भूमण्डल पर विखेरते हैं, जिनका प्रभाव भूमण्डल पर रहने वाले सभी प्राणियों, वनस्पतियों तथा खनिजों के जीवन पर पडता है। प्रायः हम सभी जानते ही है कि रत्न प्रकृति के द्वारा प्रदत्त एक बहुमूल्य निधि है जो अनेक गुणों से युक्त होते हैं। ऋग्वेद के अग्नि सूक्त के प्रथम मन्त्र में अग्नि को ‘‘रत्नधातमम्‘‘ शब्द से संबोधित किया गया है। अर्थात् रत्नों के निर्माण में अग्नि की ताप क्रिया का प्रभाव विद्यमान रहता है जिसे आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। कहा जा सकजा है कि जब विभिन्न तत्व रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा आपस में मिलते हैं तब रत्नों की उत्पत्ति होती है तथा रत्न अपने रंग, रूप, आकृति, व गुणों के द्वारा मनुष्यों को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम होते हैं। इसीलिये कहा गया है यथा-रमन्ते अस्मिन् अतीव अतः रत्नम्।[३४]किस ग्रह के लिए कौन सा रत्न धारण करना चाहिए इसका उल्लेख हमें ज्योतिष शास्त्र के अनेक ग्रथों में मिलता है-

माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्रनीलम्।

गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्युः रत्नान्यथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णम्।।[३५]

ग्रह	रत्न	धातु	अंगुली	समय	वार	नक्षत्र
सूर्य	माणिक्य	स्वर्ण	अनामिका	प्रातः	रविवार	कृत्तिका, उ. फा. उ.षा.
चन्द्रमा	मोती	चांदी	कनिष्ठिका	प्रातः	सोमवार	रोहिणी, हस्त, श्रवण

33ज्योतिषतत्वप्रकाश पृष्ठ 291, श्लोक–570
34आयुर्वेद प्रकाश–5/2
35मुहुर्त्तचिन्तामणि–गोचरप्रकरणम्–14

मंगल	मूँगा	स्वर्ण	अनामिका	प्रातः	मंगलवार	मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा
बुध	पन्ना	स्वर्ण	कनिष्ठिका	प्रातः	बुधवार	आश्लेषा, जेष्ठा, रेवती
गुरु	पुखराज	स्वर्ण	तर्जनी	प्रातः	गुरुवार	पुनर्वसु, विशाखा, पू, भाद्र
शुक्र	हीरा	प्लेटिनम	कनिष्ठिका	प्रातः	शुक्रवार	भरणी, पू. फा, पूर्वाषाढा
शनि	नीलम	पंचधातु	मध्यमा	सायं	शनिवार	पुष्य, अनुराधा, उ. भाद्रपदा
राहु	गोमेद	अष्टधातु	मध्यमा	सूर्यास्त	शनिवार	आर्दा, स्वाति, विशाखा
केतु	लहसुनिया	चांदी	अनामिका	सूर्यास्त	गुरुवार	अश्विनी, मघा, मूल

अब मन में प्रश्न उठता है कि कौन सा रत्न धारण करें जिससे हमारा शरीर रोग मुक्त होकर स्वस्थ रहे? इसके लिये हमें अपनी कुण्डली के अनुसार लग्नेश ग्रह का रत्न धारण करना चाहिए। क्योकि लग्न द्वादश भावों में स्वास्थ्य अथवा शरीर का कारक है जो रोग प्रतिरोधक क्षमता का पर्यायवाची भी है यानि यदि हमारे शरीर में रोग प्रति रोधक क्षमता अच्छी रहेगी तो शरीर स्वतः ही स्वस्थ रहेगा। अतः हमें रोंगो के संक्रमण से बचने के लिए अपने लग्नेश ग्रह का रत्न धारण करना चाहिए।

क्रम	जन्मलग्न	लग्नेश	धारणीय रत्न
१.	मेष	मंगल	मूंगा
२.	वृष	शुक्र	हीरा
३.	मिथुन	बुध	पन्ना
४.	कर्क	चन्द्रमा	मोती
५.	सिंह	सूर्य	माणिक
६.	कन्या	बुध	पन्ना
७.	तुला	शुक्र	हीरा
८.	वृश्चिक	मंगल	मूंगा
९.	धनु	गुरु	पुखराज

१०.	मकर	शनि	नीलम
११.	कुम्भ	शनि	नीलम
१२.	मीन	गुरु	पुखराज

इसी प्रकार ग्रहों के वैदिक व तान्त्रिक मन्त्रों का जाप तथा ग्रहों की समिधा से हवन आदि करके भी हम अपने शारीरिक कष्टों व रोगों को दूर कर सकते हैं-

सप्त रुद्रा दिशो नन्दा नवचन्द्रा नृपास्तथा।

त्रिपक्षा अष्टचन्द्राश्च सप्तचन्द्रास्तथैव च।।

इमाः संख्या सहस्त्रघ्ना जपसंख्याः प्रकीर्तिताः।

क्रमादर्कादिखेटानां प्रीत्यर्थं द्विजपुंगव।।[३६]

अर्काद् ब्रह्ममहीरुहाद् खदिरतोऽपामार्गतः पिप्पला-

दाद्रौदुम्बरशाखिनोऽप्यथशमी दूर्वाकुशेभ्यः क्रमात्।

सूर्यादिग्रहमण्डलस्य समिधो होमाय कार्या बुधैः।।

सुस्निग्धाः सरलत्वचा वनचिताः प्रादेशमात्रा शुभाः।।[३७]

ग्रह	मन्त्र	समय	जपसंख्या	समिधा
सूर्य	ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः	प्रातः	७०००	अर्क
चन्द्रमा	ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः	सन्ध्या	११०००	पलाश
मंगल	ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः	अपरान्ह	१००००	खदिर
बुध	ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः	अपरान्ह	९०००	अपामार्ग
गुरु	ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः	सन्ध्या	१९०००	पीपल
शुक्र	ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः	प्रातः	१६०००	गूलर

[36]बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्–ग्रहशान्त्यध्यायः–19–20

[37]बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्–ग्रहशान्त्यध्यायः–21

शनि	ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः	मध्यान्ह	२३०००	शमी
राहु	ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः	रात्रि	१८०००	दुर्वा
केतु	ॐ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः	रात्रि	१७०००	कुशा

१.१४ रोग निवृत्ति हेतु स्नानार्थ औषधियां-

ग्रह जनित रोग की शान्ति हेतु ज्योतिष शास्त्र में अनेक औषधियों से स्नान के लिए आदेशित किया गया है कि यदि इन औषधियों से निर्मित जल के द्वारा रोगी स्नान करता है तो उसे शरीरिक कष्ट में अवश्य आराम मिलता है जैसे-लाजवन्ती, कूट, वरियार, कांगनी, मोथा, सरसों, हल्दी, देवदारु, शरफोंका तथा लौंध को तीर्थ के जल में मिश्रितकर स्नान करने ग्रहजनित पीडा में आराम मिलता है। अन्य विद्वानों के मत में ग्रहों के अनुसार निम्न औषधियों से स्नान करने पर रोग शान्त हो जाते हैं-

लाजाकुष्ठबलाप्रियंगुधनसिद्धार्थैर्निशादारुभिः।

पुखालोध्रयुतैर्निगदितं स्नानं ग्रहोत्थाघहृत्।।[३८]

	ग्रह	स्नान हेतु औषधियां
१.	सूर्य	मेनशिल, लाजवन्ती इलायची, देवदारु, केशर, मुलेठी, कनेर के फूल।
२.	चन्द्रमा	कूठ, पंचगन्ध, गजमद, शंख, सीप, श्वेतचन्दन, एवं स्फटिक।
३.	मंगल	विल्वछाल, रक्तचन्दन, धमनी, रक्तपुष्प, सिंगरफ, मालकांगनी, मौलसिरी।
४.	बुध	बला, माल कंगनी, गोबर, मधु, अक्षत, फल, स्वर्ण, मोती, एवं गोरोचन।
५.	गुरु	हल्दी, देवदारू, मालतीपुष्प, पीली सरसों, मुलहटी, मधु, एवं मालती।
६.	शुक्र	शरपुखा, इलायची, मैनसिल, सुवृक्षमूल, एव ंकेशर।
७.	शनि	कालेतिल, सुरमा, लोबान, धमनी, सौफ, मुत्थरा, सरसों तेल एवं खिल्ला।
८.	राहु	लोंध, बान, तिलपत्र, मुत्थरा, हाथी दांत, एवं कस्तूरी।
९.	केतु	लोबान, तिलपत्र, मुत्थरा, हाथी दांत एवं कस्तूरी।

[38] मुहूर्तचिन्तामणि—गोचरप्रकरणम् श्लोक—16

इसी प्रकार सूर्यादि ग्रहों के निमित्तशास्त्रों में बताई गयी वस्तुओं का दान करके भी ग्रह जनित रोगों से निजात पाई जा सकती है यथा-

धेनुः कम्ब्वरुणो वृषश्च कनकं पीताम्बरं घोटकः।
श्वेतो गौरसिता महासिरज इत्येता रवेर्दक्षिणाः।।[३९]

	ग्रह	दान की वस्तुएं
१.	सूर्य	गेंहूँ, गुड, ताम्र, स्वर्ण, रक्त चन्दन, माणिक्य, लाल वस्त्र, सवत्सा गौ।
२.	चन्द्रमा	चावल, शक्कर, घी, मोती, चांदी, श्वेत वस्त्र, कपूर, शंख, वृषभ, दही।
३.	मंगल	लाल बैल, गुड, ताम्र, मूंगा, कनेर पुष्प, मसूर, रक्त चन्दन, मसूर लाल वस्त्र।
४.	बुध	हरा वस्त्र, हाथी दांत, स्वर्ण, मूंग, घी, कांस्य पात्र, पन्ना, दूर्वा।
५.	गुरु	हल्दी, पीलावस्त्र, शक्कर, चना दाल, स्वर्ण, पुखराज, केला, केशर, लड्डू।
६.	शुक्र	स्वर्ण, विचित्र वस्त्र, चांदी, गौ, श्वेत घोडा, हीरा, घृत, चावल, कपूर, श्वेत पुष्प।
७.	शनि	नीलम, सुवर्ण, लोहा, उडद, सरसों तेल, कम्बल, नीला वस्त्र, भैंस, कस्तूरी।
८.	राहु	गोमेद, तिल, सरसों, सप्तधान्य, कोयला, कम्बल, नीला वस्त्र, सीसा, शस्त्र।
९.	केतु	लहसुनियां, लोहा, तिल, धूम्रपुष्प, नारियल, बकरी, शस्त्र, कम्बल, धूम्रवस्त्र।

अर्थात् निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जो साध्य रोग हैं उन्हें मणि, मन्त्र, औषधि तथा दान आदि कृत्यों के द्वारा समय रहते ठीक किया जा सकता है। किन्तु जो असाध्य रोग हैं उनके लिये हमें अपने पूर्व जन्मार्जित कर्म बन्धनों को काटना पडेगा तभी जाके हमें उन असाध्य रोगों से मुक्ति मिल पाएगी।

१.१५ अभ्यास प्रश्न-

१. भाव कितने होते हैं ?

[39]मुहूर्तचिन्तामणि–गोचरप्रकरणम् श्लोक–16

२. रोग मुख्यतः कितने प्रकार के होते हैं ?

३. त्वचा का कारक कौन सा ग्रह होता है ?

४. नेत्र स्थान कौन से भाव को कहते हैं ?

५. सिंह राशि काल पुरुष के किस अंग में होती हैं।

१.१६ सारांश-

प्रिय पाठकों इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जन्मांग चक्र के द्वारा रोगों का विश्लेषण कैसे करना है इस से अवगत हो गये होंगे। पाठकों ज्योतिष शास्त्र में रोगों का सम्बन्ध पूर्व जन्म के शुभाऽशुभ कर्मों के साथ है। तथा इन सभी साध्य व असाध्य रोगों से मुक्ति हेतु ज्योतिषशास्त्र में मणि, मन्त्र, औषधि व दान आदि बताया गया है। जिनका प्रयोग करके हम इन रोगों से मुक्त हो सकते हैं।

१.१७ पारिभाषिक शब्दावली-

नक्षत्र- जिसका कभी क्षरण नहीं होता। अर्थात् जो हमेंशा एक जगह पर स्थित रहता है।

केन्द्र- प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम भाव की केन्द्र संज्ञा होती है।

लग्न-पूर्वी क्षितिज में आकाश का जो भाग पृथ्वी से लगा रहता है उसे लग्न कहते हैं।

त्रिकोण- पंचम तथा नवम भाव की त्रिकोण संज्ञा होती है।

त्रिक-तृतीय, षष्ठ, द्वादश भाव को त्रिक कहते हैं।

उन्माद-मस्तिष्क का वह रोग जिसमें मन व बुद्धि का संतुलन बिगड जाता है।

१.१८ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

१. द्वादश

२. दो

३. बुध

४. द्वितीय, द्वादश

५. उदर

१.१६ निबन्धात्मक प्रश्न

१. काल पुरुष अंगों में स्थित राशियों का उल्लेख कीजिये।

२. द्वादश भावों से विचारणीय रोगों का वर्णन कीजिये।

३.नेत्ररोग को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

इकाई-२ दशा के माध्यम से रोग काल निर्माण

इकाई की संरचना-

२.१ प्रस्तावना
२.२ उद्‌देश्य
२.३ रोग होने की सम्भावना
२.४ विंशोत्तरी दशा साधन
२.५ अन्तर्दशा साधन
२.६अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशासाधन
२.७ सूर्य दशाफल
२.८ चन्द्र दशाफल
२.९ भौम दशाफल
२.१० बुध दशाफल
२.११ गुरु दशाफल
२.१२ शुक्र दशाफल
२.१३ शनि दशाफल
२.१४ राहु दशाफल
२.१५ केतु दशाफल
२.१६ जन्मांगचक्र में सूर्य की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय
२.१७ जन्मांगचक्र में चन्द्रमा की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय
२.१८ जन्मांगचक्र में मंगल की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय
२.१९ जन्मांगचक्र में बुध की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय
२.२० जन्मांगचक्र में गुरु की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय
२.२१ जन्मांगचक्र में शुक्र की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय
२.२२ जन्मांगचक्र में शनि की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय
२.२३ जन्मांगचक्र में राहु की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय
२.२४ जन्मांगचक्र में केतु की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय
२.२५ ग्रहों की स्थिति के अनुसार कौन से रोग होने की सम्भावना होगी
२.२६ अभ्यास प्रश्न
२.२७ सारांश-
२.२८ पारिभाषिकशब्दावली
२.३० अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
२.३१ निबन्धात्मक प्रश्न

२.१ प्रस्तावना-

ज्योतिष शास्त्र के द्वारा मानव जीवन में वाली शुभाशुभ घटनाओं का विवेचन विभिन्न प्रकार से किया जाता है। जिसमें ग्रहों की दशा का साधन कर उनके अनुसार फल कथन एक प्रमुख विधि है। ये दशाएं ज्योतिष शास्त्र में अनेक प्रकार की देखने को मिलती हैं।इनमें विंशोत्तरी दशा, अष्टोत्तरी दशा, योगिनी दशा, चरदशा, नवमांश दशा, स्थिरदशा, ब्रह्मदशा, केन्द्रदशा, कारक दशा, स्थूल दशा, त्रिकोण दशा, शूलदशा, निर्याण दशा, मण्डूक दशा, दृग्दशा, नक्षत्र दशा आदि दशाएं सम्मिलित हैं। प्रिय छात्रों इस पाठ में हम विंशोत्तरी दशा साधन करना सीखेंगे तथा दशाओं के माध्यम से रोग काल का निर्णय करने में सक्षम हो पायेंगे। साथ ही यह भी जान पायेंगे की कौन सी दशा जातक के लिए शुभ होती है? कौन सी अशुभ? कौन सी दशा जातक केलिए पूर्ण फलदायक होती है? कौनसी मध्यम? कौनसी दशा राजयोग कारक होगी कौनसी नहीं? कौन सी दशा रोगकारक होगी तथा किस दशा में रोग से मुक्ति इन सभी प्रश्नों के उत्तर व समाधान हम इस पाठ का अध्ययन करके जान पाएंगे।

आइये जानते हैं रोग किसे कहते हैं।रोगशरीर, मन व आत्मा की वह अवस्था है जिसमें शरीर, मन व आत्मा अपने सामान्य कार्यों को सम्पादित करने में असक्षम होते हैं। कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य की विपरीत अवस्था ही रोग है। इसी को परिभाषित करते हुये सुश्रुत संहिता में आचार्य सुश्रुत कहते हैं-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थः इत्यभिधीयते।।[४०]

रोगों का वर्गीकरण आचार्यों ने निम्न प्रकार से किया है-

रोग

↓

शारीरिक रोग | मानसिक रोग | आध्यात्मिक रोग

जन्मजात एवं जीवन पर्यन्त चलने वाले रोगों के प्रारम्भ काल का विचार जन्म कुण्डली में स्थित ग्रहयोगों के आधार पर किया जाता है। वहीं अन्य सभी रोगों के आरम्भ होने की संभावना का विचार योगकारक ग्रह की दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा, प्रश्न कालिक ग्रह स्थिति एवं गोचर में स्थित ग्रहों के आधार पर किया जाता है। यहां पर ध्यान दने वाली बात यह है कि दीर्घकालीन समय तक चलने वाले रोग ग्रहों की महादशा एवं अन्तर्दशा में ही में

---

[40]सुश्रुत संहिता 15./41

आरम्भ होते हैं तथा अल्पकालीन रोग उनकी प्रत्यन्तर दशा, सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशाओं में होते हैं। महादशा एवं अन्तर्दशा के समय दीर्घकालीन रोग कब होगा इसका निश्चय सम्बन्धित ग्रहों के गोचरीय परिभ्रमण के आधार पर करना चाहिए।

२.२ उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

१.रोग के अर्थ की विवेचना कर सकेंगे।

२.रोगों का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

३.शरीर में रोग कब उत्पन्न होंगे यह जान पायेंगे।

४.दशा साधन कर पायेंगे।

५.दशा के माध्यम से रोगों का वर्गीकरण कर सकेंगे।

२.३ रोग होने की सम्भावना-

प्रिय विद्यार्थियों जैसा कि हम जानते ही हैं कि ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों की स्थिति के द्वारा रोग होने की सम्भावना तथा शरीर के कौन से अंग पर रोग होगा यह जाना जाता है। इसी प्रकार जन्म कुण्डली में स्थितविभिन्न ग्रहयोगों के द्वारा यह भी जाना जाता है कि जातक को कौन से रोग होने की सम्भावना है तथा वह किस से वर्ष में होगा। प्रिय छात्रों ग्रह रोगों को उत्पन्न नहीं करते हैं अपितु उत्पन्न होने वाले रोगों की पूर्व सूचना देते हैं। अतः रोग कारक ग्रह, ग्रहयोग व उन ग्रहों की दशाओं के आधार पर रोगोत्पत्ति के समय का निर्धारण किया जासकता है।

रोग उत्पत्ति के सम्भावित समय का निर्धारण दो प्रकार से किया जाता है पहला ग्रहों के द्वारा निर्धारित योग से तथा दूसरा दशाओं के माध्यम से। विभिन्न योगों में बतलाए गए वर्षों में रोग उत्पत्ति के काल का निर्धारण दशाफल के नियमों की अपेक्षा रखता है। दशा का फल दो प्रकार का होता है एक साधारण तथा दूसरा विशिष्ट। अर्थात ग्रह साधारणतया जो फल देते हैं वह साधारण फल कहा जाता है तथा ग्रहों की स्थिति, ग्रह स्थान,बल एवं योग के कारण जो फल प्राप्त होता है, वह विशिष्ट फल कहलाता है।

साधारण फल वह है जिस कीमात्र अनुभूति होती है जबकि विशिष्ट फल जीवन में विलक्षण घटनाओं को घटित करता है रोग जीवन में घटित होने वाली वह विशिष्ट घटना है जो मानव के जीवन में उथल-पुथल मचा सकता है अतः

रोग उत्पत्ति को साधारण फल न मानकर विशिष्ट फल ही मानना चाहिए। जैसा कि आप जानते ही हैं कि रोगेश, अष्टमेश मारकेश, अवरोही ग्रह, नीच या शत्रुराशिगत, पापयुक्त, पापदृष्ट, नवांशगत, निर्बल, अशुभ स्थान में स्थित तथा षट्यांश आदि में स्थित ग्रह रोगकारक होते हैं।

जीवन में जब-जब ऐसे ग्रहों की दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा प्राणदशा आदि आती हैं तब मनुष्य को कोई न कोई रोग अवश्य होता है। इस प्रकार हम विभिन्न योगों में बतलाए हुए ग्रहों के द्वारा तथा उक्त ग्रहों की दशाओं के द्वारा रोग उत्पत्ति के सम्भावित काल को यथार्थ रूप में जानकर उसका निर्णय कर सकते है। इसके लिये हमें सर्व प्रथम दशा साधन करना होता है। विशोंत्तरी दशा का साधन इस प्रकार से किया जाता है-

२.४ विंशोत्तरी दशा साधन-

जन्म नक्षत्र की संख्या में २ घटाकर शेष में ६ का भाग दें, एकादि शेष से सूर्यादि ग्रहों की दशा जाननी चाहिए। जैसे- १ शेष रहने पर सूर्य की दशा, २ शेष रहने पर चन्द्रमा की, ३ शेष रहने पर मंगल की, ४ शेष रहने पर राहु की, ५ शेष की, ६ अथवा ० शेष रहने पर शुक्र की दशा समझनी चाहिए।

दास्त्रादितो जन्मभसंख्यका या दृगुणिता सांकहृतावशेषात्।

सू.चं.कु.रा.जी.श.बु.के.शु.पूर्वाः दशाधिपाः संकथिता मुनीन्द्रैः।।[४१]

विंशोत्तरी दशा क्रम- में सूर्य के दशा वर्ष ६, चन्द्रमा के १०, मंगल के ७, राहु के १८, गुरु के १६, शनि के १६, बुध के १७, केतु के ७, तथा शुक्र के २० वर्ष होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर विशोंत्तरी दशा में ग्रहों के १२० दशावर्ष होते हैं।

षड् दश सप्ताष्टदश षोडश नन्देन्दवो मुनिशशांकाः।

सप्त नखा वर्षाणि हि रव्यादीनां यथाक्रमतः।।[४२]

कृत्तिका से आरम्भ करके भरणी तक ६. ६ नक्षत्र ३ आवृत्ति करके ३६ कोष्ठ के चक्र में अर्थात् ६. ६ कोष्ठ की पंक्ति में एक में ग्रह और ३ पंक्ति नक्षत्र रखने से दशापति का ज्ञान होता है।

कृत्तिकामवधिं कृत्वा भरण्यवधि गण्यते।

---

[41] मानसागररी पंचमोध्यायः पृष्ठ 328

[42] मानसागरी 5/6

विंशोत्तरीदशाचक्रं षट्त्रिंशाद्भिश्च कोष्ठकैः।।[४३]

सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
कृतिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लषा	मधा	पू.फाल गुनी
उ. फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	जेष्ठा	मूल	पूर्वाषा ढा
उ.षाढा	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिशा	पू.भाद्र	उ.भाद्र	रेवती	अश्विनी	भरणी
०६	१०	०७	१८	१६	१९	१७	०७	२०

अब जन्म नक्षत्र के भयात व भभोग की पूर्ववत् गणना करके भयात में जन्म नक्षत्र वश ज्ञात दशेश ग्रह की दशा वर्ष से गुणा कर भभोग से भाग देने पर जो लब्धि होती है, उसे दशा वर्ष और शेष में १२ से गुणा कर भभोग से भाग देने पर लब्धि मास तथा शेष में क्रम से ३०, ६०, ६० से गुणा और भभोग से भाग देने पर दिन घटी व पल आदि भी प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्राप्त वर्षादि ग्रह दशा भुक्तवर्षादि होती है। दशा वर्ष से घटाने पर भोग्य वर्षादि होते हैं।

उदाहरण-जैसे किसी जातक का जन्म सम्बत् १९८३ में मृगशिरा नक्षत्र में हुआ। भयात ५८/१५ भभोग ५१/३१ तथा स्पष्ट सूर्य ६/२६/३६/५३ है। वहां जन्म नक्षत्र मृगशिरा तक संख्या ५ में से २ घटाने पर शेष ३ हुआ। अतः सू. चं.कु. इत्यादि गणना से तीसरी संख्या कुज अर्थात मंगल की दशा हुई।

अब मंगल की दशा संख्या ७ से पलमय भयात् ३४९४ को गुणा करने पर २४४६५ इसमें पलात्मक भभोग ३५७१ का भाग देने से लब्धि वर्षादि ६/१०/६/२२/५ भुक्त दशा हुआ। इसको दशामान ७ में से घटाने पर भोग्य दशामान वर्षादि ०/१/२३/३७/५५ हुआ। अब जन्म सम्बत् को भोग्यवर्ष में जोडने से वर्ष और सूर्यादि स्पष्ट राशि को मासादि मानकर जोड देगें ंतो दशा का वर्ष, मास, घटी, पल निकल जाता है। फिर आगे राहु आदि ग्रहों के क्रम से वर्ष मान जोडकर दशाचक्र बनाना चाहिए। यथा-

महादशाचक्रम्

मंगलभुक्त	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
६ १० ६ २२	० १ २३ ३७	१८	१६	१९	१७	७	२०	६	१०

---

[43]मानसागरी 5/7

५	५५								
जन्मसंवत् १९८३	१९८३	२००१	२०१७	२०३६	२०५३	२०६०	२०८०	२०८६	२० ९३
सूर्य ९ २९ ३६ ५३	११ २३ १४ ४८	११ २३ १४ ४८	११ २३ १४ ४८	११ २३ १४ ४८	११ २३ १४ ४८	११ २३ १४ ४८	११ २३ १४ ४८	११ २३ १४ ४८	११ २३ १४ ४८

२.५ अन्तर्दशा साधन-

दशा दशा हता कार्या दशभिर्भागमाहरेत्।

यल्लब्धं स भवेन्मासस्त्रिघ्नं शेषं दिनं भवेत्।।[४४]

ग्रह के दशामान को प्रत्येक ग्रह के दशामान से पृथक-पृथक गुणाकर गुणनफन में १० का भाग देने से लब्धि मास और शेष भाग को ३ से गुणाकर दिनादि अन्तर्दशा का मान होता है।

उदाहरण- जैसे सूर्य की दशा में सूर्य आदि सब ग्रहों की अन्तर्दशा का मान जानना है, तो सूर्य दशा वर्ष ६ को सूर्य दशामान से गुणा करने से ३/६ इसमें १० के भाग देने से लब्धि ३ मास, शेष ६ को ३ से गुणा करने से १८ दिन हुए। अतः सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा मासादि ३/१८ हुई एवं अन्य ग्रहों की दशा से भी अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा समझें।

सूर्य की दशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा

ध्रुव	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	१
०	३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
१८	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

चन्द्रमा की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव,	चं	भौ.	रा.	बृ.	शं.	बु.	के.	शु.	सू.
०	०	०	१	१	१	१	०	१	०
१	१०	७	६	४	७	५	७	८	६

मंगल की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.

44मानसागरी 5/8

०	०	१	०	१	०	०	१	०	०
०	४	०	११	१	११	४	२	४	७
२१	२७	१८	६	६	२७	२७	०	६	०

राहु की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	च.	मं.
१	२	२	२	२	१	३	०	१	१
१	८	४	१०	६	०	०	१०	६	०
२४	१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८

बृहस्पति की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	च.	मं.	रा.
०	२	२	२	०	२	०	१	०	२
१	१	६	३	११	८	६	४	११	४
१८	१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४

शनि की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव	श.	बु.	के.	शु.	सू.	च.	मं.	रा.	गु.
०	३	२	१	३	०	१	१	२	२
१	०	८	१	२	११	७	१	१०	६
१८	३	६	६	०	१२	०	६	६	१२

बुध की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव	बु.	के.	शु.	सू.	च.	मं.	रा.	गु.	श.
०	२	०	२	०	१	०	२	२	२
१	४	११	१०	१०	५	११	६	३	८
२१	२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	६

केतु की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव	के.	शु.	सू.	च.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.
०	०	१	०	०	०	१	०	१	०
०	४	२	४	७	४	०	११	१	११
२१	२७	०	६	०	२७	१८	६	६	२७

शुक्र की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव,	शु.	सू.	च.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.
०	३	१	१	१	३	२	३	२	१
२	४	०	८	२	०	८	२	१०	२

२.६ अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशासाधन-

स्वान्तर्दशाद्युवृन्दं च हन्त्यात्स्वाब्दैर्गहस्य च।

विंशोत्तरशतेनाप्तं घस्त्रा घट्याऽवशेशकम्।।

जिस अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा जाननी हो उसको दिनात्मक बनाकर फिर उसको पृथक्-पृथक् ग्रहों के दशामान से गुणाकर १२० के भाग देने से लब्धि दिन और शेष ६० से गुणा कर १२० के भाग देने से लब्धि घटी होती है।

उदाहरण-यथा सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा मासादि ३/१८ है तो इसको दिनात्मक बनाने से १०८ हुआ। इसको सूर्य के दशामान से गुणा करने से ६४८, इसमें १२० का भोग देने से लब्धि ५ दिन, शेष ४८ को ६० से गुणा कर १२० का भाग देने से लब्धि घटी २४ हुई। इस प्रकार अन्य ग्रहों की प्रत्यन्तर्दशा साधन करें।

प्रत्येक ग्रह अपनी महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा और सूक्ष्म दशाकाल में जातक को शुभाशुभ फल देते हैं। जो ग्रह अपनी उच्च राशि में, मित्र राशि में, अपनी स्वराशि में, स्वकीय षड्वर्ग में वा केन्द्र में रहते हैं वे हमेशा अपनी दशा में अत्यन्त शुभ फलदायक होते हैं तथा जो ग्रह अपनी नीच राशि, शत्रु राशि और अस्तङ्गत होते हैं वे अपनी दशा में धन-धान्य की हानि, रोग व्याधि, शोक-सन्ताप आदि अशुभ हैं।

स्वोचे स्वगेहे यदि वा त्रिकोणे वर्गे स्वकीयेऽथ चतुष्टये वा।

नास्तंतो नोऽशुभदृष्टियुक्तो जन्माधिपः स्याच्छुभदः स्वपाके।।[४५]

यदि ग्रह अपने उच्च या स्वराशि, मित्र की राशि में होकर नीच या शत्रु के नवांश मे हो, अथवा नीच-शत्रु राशि में भी अपने या मित्र के नवांश में हो तो ऐसे ग्रह की दशा मिश्र फल दायक होती है।

तुंगे स्वगेहे स्वसुहृद्गृहांशे नीचारिभस्थेऽपि च खेचरेन्द्रे।

मिश्रं फलं स्यात्खलुतस्य पाके होरागमज्ञैः परिकल्पनीयम्।।[४६]

इसी तरह यदि शुभ ग्रह ३, ६, ११ स्थानों में हों तो वे जातक को बाल्यावस्था में ही शुभ फल दायक होते हैं। यदि पापग्रह ३, ६, ११ वें भाव में हों तो अन्तिम अवस्था में धन, स्त्री, पुत्रादि के सुख को देते हैं।

[45] जातकभरणम् दशाफलाध्यायः 03

[46] जातकभरणम् दशाफलाध्यायः 05

त्रिषष्ठलाभेषु गतैः समस्तैः सौम्यैः सुखार्थाश्च भवन्ति बाल्ये।

तत्रैव पापैर्वयसोऽन्त्यभागे जायार्थपुत्रादिसुखानि सम्यक्।।[४७]

२.७ सूर्य दशाफल-

सूर्य की दशा में परदेश गमन, राजा से लाभ, व्यापार से आमदनी, ख्याति लाभ, धर्म में अभिरुचि किन्तु यदि सूर्य नीच राशि में पापग्रह युक्त या दृष्ट हो तो जातक को ऋणी व्याधिपीड़ित, प्रियजनों के वियोगजन्य कष्ट को सहने वाला, राजा से भय और और कलह आदि अशुभ फलदायक होता है। सूर्य यदि मेष राशि में हो तो मेष राशि में हो तो नेत्ररोग कारक, धनहानि, राजा से भय, नाना प्रकार के कष्ट, वृष राशि में हो तो स्त्री-पुत्र के सुख से हीन, हृदय और नेत्र का रोगी, मित्रों से विरोधय मिथुन राशि में हो तो धन्य-धान्ययुक्त, शास्त्र-काव्य से आनन्द देने वाला, विलास कारक, कर्क राशि में हो तो राज सम्मान धन प्राप्ति माता पिता बंधु वर्ग से पृथक था था बंधु वर्ग से पृथक था था वर्ग से पृथक था वाद जन्य रोग रोग सिम्हा राशि में हो तो राजमान्य उच्च पद आसीन राजमान्य उच्च पद आसीन प्रश्न कन्या में हो तो कन्या रत्न की प्राप्ति धर्म में अभिरुचि तुला राशि में हो तो ३ पुत्र की चिंता प्रदेश गमन वृश्चिक राशि में हो तो प्रताप की वृद्धि प्रताप की वृद्धि विश्व अग्नि से पीड़ा से पीड़ा धनु राशि में हो तो राजा से प्रतिष्ठा की प्राप्ति विद्या की प्राप्ति मकर राशि में हो तो स्त्री पुत्र धन आदि की जनता की जनता त्रिदोष रोगी पर कार्यों से प्रेम से प्रेम कुंभ में हो तो शिशु नता नता शिशु नता हृदय रोग अल्प धन घुटनों से विरोध और मीन राशि में हो तो सूर्य दशा काल में वाहन लाभ प्रतिष्ठा की वृद्धि धनवान की प्राप्ति विषम ज्वर आदि फलों की प्राप्ति होती है।

१.८ चन्द्र दशाफल-

पूर्ण चंद्र उच्च राशि का और शुभ ग्रहों युक्त हो तो ऐसी दशा में अनेक प्रकार के सम्मान मंत्री विद्वदसभा का सदस्य, विद्या, धन, धर्मादि प्राप्तिकारक होता है। वहीं यदि चन्द्रमा नीच या शत्रु राशि में हो तो उस दशाकाल में कलह, क्रूरता, सिर में दर्द, धन का नाश आदि अनेक कष्टदायक फल होते हैं। यदि चंद्रमा मेष राशि में हो तो जातक को उस दशा में स्त्रीसुख, विदेश से प्रीति, यात्राएं तथा कलह कारक होती है। वृष में हो तो धन-वाहन का लाभ, स्त्री पुत्र से प्रेम, माता की मृत्यु, पिता को कष्ट होता है। मिथुन में हो तो देशांतरगमन, तथा संपत्ति का लाभ। कर्क में हो तो गुप्त रोग होने की संभावना होने की संभावना, धन-धान्य की वृद्धि, कला, संगीत, वाद्य यंत्रों से प्रेम, सिंह में हो तो बुद्धि-विद्या दायक, सम्मान कारक, धन का लाभ होता है। कन्या में हो तो विदेशगमन, स्त्री प्राप्ति,

[47]जातकभरणम् दशाफलाध्यायः 04

काव्य से प्रेम, अर्थलाभ। तुला में हो तो विरोध, चिंता, अपमान, व्यापार में धन-लाभ, मर्म स्थान में हो तो रोग कारक। वृश्चिक में हो तो चिंता, रोग, साधारण सामक धन-धान्य का लाभ तथा धर्म की हानि। धनु राशि में हो तो वाहनादि का लाभ, धन का नाश। मकर में हो तो सुख, पुत्र स्त्री-धन आदि की प्राप्ति, उन्माद या वायु जन्य रोग से कष्ट। कुम्भ राशि में हो तो व्यसन, ऋण, नाभि से ऊपर तथा नीचे पीड़ा, दन्त रोग, नेत्र रोग, तथा कर्ण रोग और मीन राशि में हो तो अर्थागम, धनसंग्रह, पुत्रलाभ, शत्रुनाश आदि आदि फलदायक दशा होती है।

२.९ भौम दशाफल-

मंगल की दशा आरंभ होने पर जातक को अग्नि अधिकारियों से भूमि और वाहन आदि के के कार्यों से धन की प्राप्ति होती है शस्त्र से या व्यापार करने से भी धन लाभ का योग बनता है अग्नि से तात्पर्य है यहां यह है कि यह है कि यह है कि जहां फैक्ट्री नील आदि का काम होता हो का काम होता हो अग्नि से संबंधित जो औजार आधी बनते हैं बनते हैं उनसे मालिक को लाभ होगा अथवा ऐसे फैक्ट्रियों में व्यवसायियों में जातक को रोजगार की प्राप्ति होगी भूमि अथवा मकान के कारोबार से भी जातक को लाभ होता है अर्थात जातक भूमि का क्रय विक्रय करता करता करता क्रय विक्रय करता करता विक्रय करता करता है अथवा नए नए भवन निर्माण करके उनको बेचने का काम करता है जिससे जातक को धन लाभ की संभावना बनती है यदि मंगल की दशा में जातक दवाइयों का काम करता है तो भी उसको उसको लाभ होगा मंगल की दशा में सेना आदि से भी लाभ होता है यदि मंगल शुभ हो तो किंतु योग वही यदि मंगल अशुभ हो तो उसके अनेक दुष्परिणाम जातक को देखने पड़ते हैं जैसे पित्त जनित रोग खून में खराबी शरीर में पीड़ा आदि मंगल की दशा में जातक को अपनी पत्नी से बैर की संभावना बनती है पुत्र बंधु गुरु से भी बैर हो सकता है अर्थात इनसे सद्भाव नहीं रहता है तथा जातक स्वयं को एकाकी समझता है।

२.१० बुध दशाफल-

उत्तरा सीगत और बलवान बुध की दशा में विद्या विज्ञान शिल्प कर्म में उन्नति धन लाभ स्त्री पुत्र को सुख कफ वात पित्त की पीड़ा होती है यदि मेष राशि में बुध हो तो बुध की दशा में धन हानि छल कपट युक्त व्यवहार के लिए प्रवृत्ति वृष राशि में हो तो धन यश लाभ स्त्री पुत्र की चिंता विशिष्ट मिथुन में हो तो अल्प लाभ साधारण कष्ट माता को सुख कर्क में हो तो जनार्दन काव्य सृजन योग्य प्रतिभा की जागृति विदेश गमन सिम हमें हो तो ज्ञान यश धन्ना कन्या में हो तो ग्रंथों का निर्माण प्रतिभा का विकास धन ऐश्वर्य का लाभ वृश्चिक में हो तो काम पीड़ा अनाचार अधिक खर्च धनु में हो तो मंत्री शासन की प्राप्ति

नेतागिरी राजनीति में सफलता मकर में हो तो नीचे से मित्रता धन हानि अल्लाह कुंभ में हो तो बंधुओं से कष्ट दरिद्रता रोग दुर्बलता और मीन राशि में हो तो बुध की दशा में खासी विश्व अग्नि अस्त्र आदि से पीड़ा अल्प हानि नाना प्रकार के कष्ट व शोकादि बुध की दशा में प्राप्त होते हैं

२.११ गुरु दशाफल-

गुरु की दशा में ज्ञान लाभ धन्य धन्य अस्त्र शस्त्र वाहन लाभ कंट्रोल गुल्म रोग प्लीहा रोग आदि फल की प्राप्ति होती है यदि मेष राशि में गुरु हो तो उसकी दशा में राजयोग की प्राप्ति अर्थात प्रशासन क्षेत्र में सफलता विद्या श्री धन पुत्र सम्मान आदि का लाभ वृष में हो तो रोग विदेश में निवास धन हानि मिथुन में हो तो विरोध प्लेस धन का नाश कर्क में हो तो राज्य से लाभ ऐश्वर्या राय ख्याति प्रतिष्ठा का लाभ मित्रता उच्च पद की प्राप्ति सेवा वृत्ति सिम हमें हो तो राजा से मान सम्मान की प्राप्ति पुत्र स्त्री बंधु लाभ हर्ष धनधान्य की पूर्णता कन्या में हो तो रानी के आश्रय से धन लाभ शासन में योगदान देना भ्रमण विवाद कला तुला में हो तो फोड़ा फुंसी विवेक का अभाव अपमान शत्रुता वृश्चिक में हो तो पुत्र लाभ निरोग था धन लाभ पूर्ण ऋण का अदा हो ना धनु राशि में हो तो सेनापति मंत्री सदस्य उच्च पद आसीन आदि लाभ होते हैं मकर में हो तो आर्थिक कष्ट स्थानों में रोग कुंभ में हो तो राजा से सम्मान की प्राप्ति धारा सभा का सदस्य विद्या धन लाभ साधारण आर्थिक सुख और मीन में हो तो विद्या धन स्त्री पुत्र प्रसन्नता आदि सुखों की प्राप्ति होती है।

२.१२ शुक्र दशाफल-

शुक्र की दशा में रत्न आभूषण वस्त्र सम्मान नवीन कार्यारंभ काम कीड़ा वाहन सुख आदि फल मिलते हैं यदि मेष राशि में शुक्र हो तो मन में चंचलता विदेश भ्रमण उद्योग व्यसन प्रेम धन हानि दृश्य में हो तो विद्यालय धनक कन्या सुख की प्राप्ति मिथुन में हो तो काव्य प्रेम प्रसन्नता धन लाभ प्रदेश गमन व्यवसाय में उन्नति कर्क में हो तो उद्यम से धन लाभ आभूषण लाभ स्त्रियों से विशेष प्रेम सिम हमें हो तो साधारण आर्थिक कष्ट श्री द्वारा धन लाभ पुत्र हानि पशुओं से लाभ कन्या में हो तो आर्थिक कष्ट दुख परदेस गमन स्त्री पुत्र से विरोध तुला में हो तो ख्याति लाभ ब्राह्मण अपमान वृश्चिक में हो तो प्रताप प्लेस धन लाभ सुख चिंता धनु में हो तो काव्य प्रेम प्रतिभा का विकास राज्य से सम्मान लाभ पुत्रों से स्नेहा मकर में हो तो चिंता कष्ट वात पित्त कफ जनित रोग कुंभ में हो तो व्यसन रोग कष्ट धन हानि और अमीर में हो तो राजा से धन लाभ व्यापार से लाभ कारोबार की वृद्धि राजनीति में सफलता आदि फलों की प्राप्ति होती है।

२.१३ शनि दशाफल-

यदि सनी जातक की पत्रिका में बलवान हो तो धन जन सवारी ऐश्वर्या प्रताप ब्राह्मण कीर्ति रोग आदि फल प्राप्त होते हैं तथा यदि शनि मेष राशि में हो तो शनि की दशा में स्वतंत्रता प्रवास मर्म स्थान में रोग चर्म रोग बंधु बंधुओं से वियोग विश्व में हो तो निरुद्यम, वायु पीड़ा कला वामन दस्त के रोग राजा से सम्मान की प्राप्ति विजय लाभ मिथुन में हो तोरण फर्स्ट चिंता परतंत्रता कर्क में हो तो नेत्र कान के रोग बंदूक योग विपत्ति दरिद्रता से हमें हो तो रोग कला आर्थिक कष्ट कन्या में हो तो मकान का निर्माण करना भूमि का लाभ सुखी तुला में हो तो धन-धान्य का लाभ विजय लाभ विलास, भौतिक सुख व वस्तुओं की प्राप्ति होती है। वृश्चिक में हो तो भ्रमण कृपणता नीच संगति साधारण आर्थिक कष्ट, धनु में हो तो राजा से सम्मान जनता में ख्याति आनंद प्रसन्नता यश लाभ मकर में हो तो आर्थिक संकट विश्वासघात बुरे व्यक्तियों का साथ कुंभ में हो तो पुत्र धन स्त्री का लाभ सुख कीर्ति विजय तथा मीन में हो तो अधिकार की प्राप्ति सुख सम्मान स्वास्थ्य उन्नति आदि फलों की प्राप्ति होती है।

२.१४ राहु दशाफल-

राहु यदि मेष राशि में स्थित हो तो उसकी दशा में अर्थ लाभ साधारण सफलता घरेलू झगड़े भाई से विरोध दृश्य में हो तो राज्य से लाभ अधिकार की प्राप्ति कष्ट सहिष्णुता सफलता मिथुन में हो तो दशा के आरंभ में कष्ट तथा मध्य में सुख होता है। कर्क मैं हो तो अर्थ लाभ पुत्र लाभ नवीन कार्यारंभ धन संचित करना से हमें हो तो प्रेम ईर्ष्या रोग सम्मान कार्यों में सफलता कन्या में हो तो मध्यम वर्ग के लोगों से लाभ व्यापार में लाभ व्यसनों की हानि नीच कार्यों से प्रेम संतोष तुला राशि में हो तो झंझट अचानक कष्ट बंधु बंधुओं से प्लेस धन लाभ यस और प्रतिष्ठा की वृद्धि वृश्चिक राशि का राहु हो तो आर्थिक कष्ट शत्रुओं से हानि नीच कार्यरत धनु राशि में राहु हो तो यस लाभ सभा धाराओं में प्रतिष्ठा उच्च पद की प्राप्ति मकर राशि का राहु हो तो सिर में रोग वाद जनित रोग आर्थिक संकट कुंभ का हो तो धन लाभ व्यापार से साधारण लाभ विजय और मीन राशि का हो तो विरोध झगड़ा अल्प लाभ अनेक रोग आदि होते हैं अर्थात राहु की दशा सामान्यतया कष्ट कारक ही होती है।

२.१५ केतु दशाफल-

यदि मेष राशि में केतु हो तो धन लाभ यस स्वास्थ्य वृक्ष में हो तो कष्ट हानी पीड़ा चिंता अल्प लाभ मिथुन में हो तो कीर्ति बंधुओं से विरोध रोग पीड़ा तर्क में हो तो सुख कल्याण मित्रता पुत्र लाभ स्त्री लाभ से हमें हो तो अल्प सुख धन लाभ कन्या में हो तो निरोग प्रसिद्ध सत कार्यों से प्रेम नवीन कार्य करने में रुचि तुला में हो तो व्यसनों में रुचि कार्य हानि अलफलाह वृश्चिक में हो तो धन सम्मान पुत्र श्री का लाभ कफ रोग बंधन जन्म कष्ट राहों में हो धनु में हो

तो सिर में रोग नेत्र पीड़ा भाई झगड़े मकर में हो तो हानि साधारण व्यापारियों से लाभ नवीन कार्यों में असफलता कुंभ में हो तो आर्थिक संकट पीड़ा चिंता बंधु बंधुओं का वियोग और मीन में हो तो साधारण लाभ अकस्मात धन की प्राप्ति लोक में ख्याति विद्या लाभ कीर्ति लाभ आदि होता है दशा फल का विचार करते समय ग्रह किस भाव का स्वामी है और उसका संबंध कैसे ग्रहों से है इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए तभी आपका फलादेश सही होता है।

२.१६ जन्मांगचक्र में सूर्य की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय-

यदि किसी जातक की जन्मपत्रिका में अवरोही सूर्य की दशा गतिमान हो तो उसे अग्निभय अर्थात जलने का डर, परम नीच राशि में स्थित सूर्य की दशा में विपत्ति एवं मृत्यु का भय। शत्रु राशिगत सूर्य की दशा में शारीरिक कष्ट, शत्रुराशि में स्थित सूर्य की दशा में चोरों से भय एवं अग्निभय रहता है। समराशिगत सूर्य की दशा में लड़ाई झगड़े आदि से चोट लगने का खतरा। नीच ग्रह से युक्त सूर्य की दशा में मनोविकार। पापदृष्ट सूर्य की दशा में शारीरिक कृशता व कमजोरी। नीचांश स्थित सूर्य की दशा में ज्वर एवं प्रमेह। छठे भाव में स्थित सूर्य की दशा में गुल्म, अतिसार, मूत्रकृच्छ एवं प्रमेह रोग होने की सम्भावना। अष्टम भाव में स्थित सूर्य की दशा में अग्नि भय, ज्वर एवं अतिसार। द्वादश भाव में स्थित सूर्य की दशा में विष का भय। द्वितीय भाव में स्थित सूर्य की दशा में वाक् विकार। चतुर्थ भाव में स्थित सूर्य की दशा में विष व अग्नि से भय। निर्बल सूर्य की दशा में शोक व संताप। क्रूर षट्यांशगत सूर्य की दशा में क्रोध की अधिकता व सिर दर्द। सर्पद्रेष्काण युक्त सूर्य की दशा में विष भय रहता है।

२.१७ जन्मांगचक्र में चन्द्रमा की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय-

अवरोही चन्द्रमा की दशा में तालाब या जलाशय में गिरना का भय, नीचाँशगत चन्द्रमा की दशा में मानसिक विकार एवं नेत्र रोग। शत्रु राशि में स्थित चन्द्रमा की दशा में कलह एवं उद्वेग। नीचराशिगत चंद्रमा की दशा में अग्नि भय। क्षीण चन्द्रमा की दशा में उन्माद। पापयुक्त चन्द्रमा की दशा में अग्नि भय एवं मनोव्यथा। छठे भाव में स्थित चन्द्रमा की दशा में मूत्रकृच्छ रोग। अष्टम भाव में स्थित चन्द्रमा की दशा में जल भय या जलोदर। क्रूर द्रेष्काण युक्त चन्द्रमा की दशा में विभिन्न रोग होने की संभावना बनती है।

२.१८ जन्मांगचक्र में मंगल की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय-

अवरोही मंगल की दशा में अग्नि का भय एवं राज के द्वारा दण्डित होने का भय रहता है। यदि मंगल अपनी नीच कर्क राशि में हो तो चोरभय व अग्निभय होता है। शत्रुराशिगत मंगल हो तो उस दशा में प्रमाद, मूत्रकृच्छ रोग, गुदा रोग

व नेत्र रोग की सम्भावना होती है। नीच ग्रह युक्त मंगल की दशा में मानसिक विकार केन्द्रस्थ मंगल की दशा में विषजन्य रोग। सप्तमस्थ मंगल की दशा में मूत्रकृच्छ रोग, गुदा रोग। द्वितीयभावस्थ मंगल की दशा में मुख एवं नेत्र रोग होते है। पंचमस्थ मंगल की दशा में विस्फोट, विसर्प, फोडा। नीचांशगत मंगल की दशा में राजा से शारीरिक दण्ड तथा वक्री मंगल की दशा में सर्पदंश होने की सम्भावना होती है।

२.१९जन्मांगचक्र में बुध की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय-

अवरोही बुध की दशा में मानसिक कष्ट, चोरभय रहता है। शत्रुराशिस्थ बुध की दशा में वितत्ति, समराशिस्थ बुध की दशा में फोडा फुंसी। नीच राशिस्थ बुध की दशा में मानसिक रोग होते हैं। पापदृष्ट बुध की दशा में कृच्छ रोग, तृतीयभावस्थ बुध की दशा में जडता एवं गुल्म। पंचमस्थ बुध की दशा में चिन्ता व सिरदर्द। षष्ठ या अष्टमस्थ बुध की दशा मे चर्मरोग, वमन, पाण्डु अर्थात् पीलिया होता है। द्वादश भाव में स्थित बुध की दशा में अंगों में दुर्बलता, विकलता तथा अपमृत्यु का भय रहता है। अस्तंगत बुध की दशा में मानसिकव्यथा, आंख व कान के रोग होते हैं। षष्ठ्यंशगत शत्रु की दशा में चोर, अग्नि एवं राजभय रहता है।

२.२०जन्मांगचक्र में गुरु की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय-

गुरु की दशा में सामान्यतया स्थूलता व उदर विकार होते हैं। गुरु यदि अतिनीचांशगत हो तो उस दशा मानसिक व्यथा अर्थात मानसिक रोग होते हैं। नीचग्रहयुत गुरु की दशा में उन्माद, अपस्मार आदि रोग होते हैं। अपनी नीच राशि में स्थित गुरु की दशा में गुल्म, क्विर्चिका होते हैं। अस्तंगत बृहस्तति की दशा में अनेक रोग, तथा षष्ठस्थ गुरु की दशा में मेदोरोग, वातरोग व उदररोग की सम्भावना होती है।

२.२१ जन्मांगचक्र में शुक्र की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय-

अवरोही शुक्र की दशा में हृदय शूल, परम नीचगत शुक्र की दशा में मानसिक रोग, अति शत्रुगत राशिगत शुक्र की दशा में गुल्म, संग्रहणी व नेत्र रोग होते हैं। समराशिगत शुक्र की दशा में प्रमेह, गुल्म, नेत्ररोग, गुदारोग। सप्मस्थ शुक्र की दशा में प्रमेह, गुल्म षष्ठस्थ शुक्र की दशा में शस्त्र से चोट तथा क्रूरषष्ठ्यांशगत शुक्र की दशा में चोर एवं अग्निभय होता है।

२.२२ जन्मांगचक्र में शनि की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय-

शनि मुख्यतया वातजनित रोगों का कारक होता है। परन्तु यदि शनि अतिशत्रुगत राशि में हो तो उस दशा में चोर एवं राजभय रहता है। शत्रुराशि गत शनि की

दशा में कृशता, समराशिगत शनि की दशा में क्षय, वातरोग व पित्तरोग। लग्नस्थ शनि की दशा में कृशता व सिर-दर्द। तृतीयस्थ शनि की दशा में मानसिक रोग, पंचमस्थ राशिगत शनि की दशा में जडता। षष्ठस्थ राशिगत शनि की दशा में वातव्याधि, विषभय। सप्तमस्थ राशिगत शनि की दशा में मूत्रकृच्छ्र। व्ययगत अर्थात द्वादश भाव में स्थित शनि की दशा में अग्नि भय व नेत्र रोग की सम्भावना। क्रूर द्रेष्काण गत शनि की दशा में चोर, राजभय एवं अग्निभय होता है।

२.२३ जन्मांगचक्र में राहु की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय-

राहु की दशा में सामान्यतः मानसिक उद्वेग, कमरदर्द व छोटी-मोटी बीमारियां होते रहती हैं। परन्तु यदि नीचराशिगत राहु की दशा हो तो विषभय। लग्नस्थ राहु की दशा में विष, अग्नि एवं शस्त्र से भय होता है। द्वितीयस्थ राहु की दशा में मानसिक विकार होते हैं। चतुर्थ भावस्थ राहु की दशा में मनोव्या व अनेक मानसिक विकार होते हैं। पंचमस्थ राहु की दशा में बुद्धिभ्रम। षष्ठस्थ राहु की दशा में प्रमेह, गुल्म, क्षय रोग, पित्तप्रकोप, एवं चर्म रोग होते हैं। सप्तमस्थ राहु की दशा में सर्पदंश का भय होता है। अष्टमस्थ राहु की दशा में दुर्घटना व दुर्घटना से मृत्यु। पापरशिगत राहु की दशा में प्रमेह, पेशाब में जलन, क्षय एवं खांसी होती है। पापदृष्ट राहु की दशा में अग्निभय चोट का खतरा रहता है।

२.२४ जन्मांगचक्र में केतु की स्थिति व दशानुसार रोग निर्णय-

केतु की दशा में ज्वर, अतिसार, प्रमेह, विस्फोट व हैजा होता है। द्वितीयभावस्थ केतु की दशा में मानसिक व्यथा। तृतीयभावस्थ केतु की दशा में मानसिक विकलता। पंचमस्थ केतु की दशा में बुद्धिभ्रम व सन्तानशोक, षष्ठस्थ भाव में स्थित केतु की दशा में चोर, अग्नि तथा विषभय होता है। सप्तमस्थ केतु की दशा में गुप्त रोग, मूत्रकृच्छरोग व मानसिक रोग। अष्टमस्थ केतु की दशा में श्वास, खांसी, संग्रहणी व क्षय रोग होता है। दशम भाव में स्थित केतु की दशा में मन में जडता आदि का विकार। द्वादशभाव में स्थित केतु की दशा में नेत्रविकार व नेत्रनाश का भय। पापदृष्ट केतु की दशा में ज्वर, अतिसार, प्रमेह तथा चर्मरोग आदि होते हैं।

अन्तर्दशा के द्वारा रोगोत्पत्ति ज्ञान- जोतिषशास्त्र के अनेक आचार्यों का मत है कि सभी ग्रह अपनी दशा, अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में अपना फल देते हैं।[४८] जो ग्रह परस्पर एक दूसरे को देखते हैं, एक दूसरे की राशि में होते हैं या युति सम्बन्ध करते हैं वे सभी आपस में सम्बन्धी कहलाते

[48]सर्वार्थचिन्तामणि–15/16

हैं। तथा जो आपस में मिलकर कोई योग बनाते हैं या एक जैसा प्रभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं वे सधर्मी कहलाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी भी रोगकारक ग्रह की दश में जब-जब उसके सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा अथवा प्रत्यन्तर दशा आती है तब-तब मनुष्य के शरीर में कोई न कोई रोग अवश्य उत्पन्न होता है।[४९]इसके अलावा निम्नलिखित ग्रहों की अन्तर्दशाओं में भी रोग उत्पन्न होते हैं।

१. षष्ठेश की अन्तर्दशा में।

२. अष्टमेश की अन्तर्दशा में।

३. दशाधीश से षष्ठस्थ पापग्रह की अन्तर्दशा में।

४. दशाधीश से व्ययगत पापग्रह की अन्तर्दशा में।

५. दशाधीश से अष्टमस्थ पापग्रह की अन्तर्दशा में।

६. मारकेश ग्रह की अन्तर्दशा में।

७. अरिष्ट योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा में।

८. अनिष्ट स्थान में स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा में।

९. पापग्रहों की अन्तर्दशा में।

१०. रोगकारक ग्रहों की दन्तर्दशा में।

२.२५ ग्रहों की स्थिति के अनुसार कौन से रोग होने की सम्भावना होगी-ग्रहों की अन्तर्दशा के द्वारा रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का विचार करते हुए आचार्यों ने किस ग्रह की अन्तर्दशा में कौन सा रोग होगा इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। जैसा कि पूर्व में कहा भी जा चुका है कि सूर्यादि ग्रह हमारे शरीर में विभिन्न रोगों के कारक होते हैं। तथा इन ग्रहों की दशा, अन्तर्दशा आने पर जातक को अनेक रोग होते हैं जिनको हम इस प्रकार जान सकते हैं-

२.२५.१ सूर्य की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा का फल-

सूर्य की महादशा में नीचस्थ सूर्य की अन्तर्दशा होने पर नेत्र रोग होता है। द्वितीयेश सूर्य की अन्तर्दशा में हृदय की दुर्बलता। सप्तमेश सूर्य की अन्तर्दशा में अपमृत्यु। क्षीण या पापयुक्त चन्द्रमा की अन्तर्दशा में मनोव्यथा । षष्ठाष्टमव्यगत चन्द्रमा की अन्तर्दशा जलभय, मानसिकरोग व मूत्रकृच्छ्र रोग होते हैं। द्वितीयेश

---

[49]ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार पृष्ठ–149

व सप्तमेश चन्द्रमा की अन्तर्दशा में अपमृत्यु। त्रिकस्थ मंगल की अन्तर्दशा में मानसिक रोग। पापदृष्टयुत मंगल में चोट। द्वितीयेश व सप्तमेश मंगल में अन्तर्दशा में अपमृत्यु। सूर्य की महादशा में राहु की अन्तर्दशा में सर्पदंश, सूर्य से अष्टम व व्ययस्थान में स्थित राहु की अन्तर्दशा में अतिसार, गुल्म व क्षय रोग होते हैं। द्वितीय व सप्तम स्थान में स्थित राहु की दशा में सर्पभय होता है। सूर्य से अष्टम व व्यय स्थान में स्थित गुरु की अन्तर्दशा में अस्थि व देहपीडा होती है। सूर्य से अष्टम व द्वादश स्थान में स्थित शनि की अन्तर्दशा में वातशूल, ज्वर व अतिसार। सूर्य से षष्ठ व अष्टम स्थान में स्थित बुध की अन्तर्दशा में उदररोग व देहपीडा होती है।नीचस्थ बुध की अन्तर्दशा में मनस्ताप। द्वितीयेश व सप्तमेश बुध की अन्तर्दशा में जडता व ज्वर। सूर्य की अन्तर्दशा में केतु का अन्तर आने पर देहपीडा व मनोव्यथा होती है। लग्नस्थ केतु की अन्तर्दशा में मस्तिष्क व दन्त रोग होते हैं। सूर्य से षष्ठ व अष्टम व व्यय स्थान में स्थित शुक्र की अन्तर्दशा में मानसिक क्लेश व नेत्र रोग होते हैं।

२.२५.२ चन्द्रमा की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा का फल-

नीच राशि में स्थित पाप ग्रहयुक्त चन्द्रमा की अन्तर्दशा में देह में आलस्य व मनस्तात, मारक स्थानों में स्थित चन्द्रमा की अन्तर्दशा में देह में जडता व मानसिक सन्ताप होते हैं। अष्टम व व्यय स्थान में स्थित पापयुक्त मंगल देहकष्ट होता है। द्वितीयेश व सप्तमेश मंगल की अन्तर्दशा में घाव, चोट, वाहन दुर्घटना से शरीर अंग भंग। चन्द्रमा की महादशा में लग्न व त्रिकोणस्थत राहु की अन्तर्दशा में सर्पदश, विषभय व चोट। चन्द्रमा से अष्टम व व्यय भाव में स्थित राहु की अन्तर्दशा में मनोव्यथा व कमरदर्द। द्वितीय व सप्तम स्थान में स्थित राहु की अन्तर्दशा देह बाधा व शारीरिक कृशता होती है। षष्ठ व अष्टम स्थान में स्थित गुरु की मानसिक तनाव होता है। चन्द्रमा से त्रिकस्थ गुरु मनोव्यथा कारक होता है। द्वितीय व सप्तमेश गुरु की अन्तर्दशा अपमृत्यु का कारण होता है। द्वितीय व त्रिक स्थान में स्थित शनि शस्त्राघात। द्वितीयेश व सप्तमेश शनि वातव्याधि व अस्थिगत रोग। चन्द्रमा से त्रिक स्थान में स्थित बुध शारीरिक कष्ट। नीचराशिस्थ बुध उदर विकार व अनेक देहकष्ट होते हैं। द्वितीयेश व सप्तमेश बुध में ज्वर चन्द्रमा की महादशा में केतु का अन्तर होने पर व्यक्ति मनोव्यथा व किसी ऐसी बीमारी से ग्रसित होता है जिसके कारण का पता ही स्पष्ट नहीं हो पाता है। द्वितीयेश व सप्तमेश शुक्र की अन्तरदशा में अपमृत्यु व गुप्तरोग। उच्च व स्वराशि में स्थित सूर्य की अन्तरदशा में आालस्य तथा ज्वर। चन्द्रमा से अष्टश व व्यय में स्थित सूर्य सर्पदंश व ज्वर। द्वितीयेश व सप्तमेश सूर्य विषमज्वर कारक होता है।

अष्टम व द्वादश स्थान में स्थित मंगल की अन्तर्दशा में मूत्रकृच्छ्र रोग होता है। पाप ग्रहों से युक्त व पापग्रहों से दृष्ट मंगल की अन्तर्दशा में व्रण तथा घाव होते हैं। द्वितीयेश व सप्तमेश मंगल की अन्तर्दशा में देह में जडता व मानसिक रोग होते हैं। अष्टम व द्वादश स्थान में स्थित राहु की अन्तर्दशा में सर्पदंश व विषभय होता है। पापयुत व पापग्रहों से दृष्ट राहु की अन्तर्दशा में वात एवं पित्तरोग होते हैं। सप्तम स्थान में स्थित राहु की दशा में अपमृत्यु। त्रिकस्थ, नीचस्थ व निर्बल गुरु की दशा में पित्तरोग, प्रेतपीडा आदि होते हैं। द्वितीयेश व सप्तमेश की गुरु की अन्तर्दशा में अपमृत्यु। अष्टम व व्ययस्थान में स्थित शनि की अन्तर्दशा में मनोव्यथा। द्वितीयेश व सप्तमेश शनि की अन्तर्दशा में मानसिक रोग। भौम से केन्द्र, त्रिकोण व एकादश स्थान में स्थित शनि की अन्तर्दशा में मूत्रकृच्छ्र। मंगल से अष्टम व व्ययस्थान में स्थित शनि की अन्तर्दशा में वातव्याधि व शूल। षष्ठ तथा व्ययस्थान में स्थित अस्तंगत बुध की अन्तर्दशा में हृदयरोग होता है। मंगल के साथ स्थित बुध की अन्तर्दशा में दस्युओं में चोट। द्वितीयेश व सप्तमेश बुध की अन्तर्दशा में भयंकर रोग। भौम से त्रिक, स्थानों में स्थित केतु की अन्तर्दशा में दन्तरोग, मुख रोग, ज्वर, अतिसार व कुष्ठ की सम्भावना होती है। मंगल से द्वितीय व सप्तमस्थ केतु की अन्तर्दशा में महाव्याधि। द्वितीयेश व सप्तमेश शुक्र की अन्तर्दशा में दीर्घकालीन रोग। भौम से त्रिकस्थानों में स्थित सूर्य की अन्तर्दशा में मानसिक रोग, ज्वर व अतिसार होते हैं। द्वितीयेश व सप्तमेश सूर्य की अन्तर्दशा में सर्पभय व ज्वर। मंगल से त्रिकस्थानों में स्थित चन्द्र की अन्तर्दशा में लडाई-झगडे अथवा युद्ध में चोट। द्वितीयेश व सप्तमेश चन्द्र की अन्तर्दशा में अपमृत्यु का भय होता है।

२.२५.४ राहु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा का फल-

अष्टम व द्वादश स्थान में स्थित राहु की अन्तर्दशा में चोरभाय व शरीर में चोट का भय होता है। पापयुक्त व पापदृष्ट राहु की अन्तर्दशा में चोट व घाव। द्वितीयेश व सप्तमेश की राहु की अन्तर्दशा में सदैव रोग एवं बहुत बडा कष्ट होता है। त्रिकस्थ व नीचस्थ अथवा अस्तंगत गुरु की अन्तर्दशा में हृदय रोग होता है। राहु से छठे व आठवें स्थान में स्थित गुरु की अन्तर्दशा में देहपीडा। द्वितीयेश व सप्तमेश गुरु की दशा में अपमृत्यु का भय। षष्ठ तथा व्यय स्थान में स्थित शनि की अन्तर्दशा में राजदण्ड तथा मानसिक रोग होते हैं। राहु से छठे व आठवें तथा बारहवें स्थान में स्थित पापयुक्त शनि की अन्तर्दशा में हृदय रोग तथा गुल्म रोग होते हैं। द्वितीयेश व सप्तमेश शनि की दशा में अपमृत्यु। त्रिकस्थ शनि से दृष्ट बुध की अन्तर्दशा में राजा, चोर व सर्पभय। द्वितीयेश व सप्तमेश बुध की अन्तर्दशा में उदर रोग, चर्मरोग व अपमृत्यु का भय होता है। अष्टमेश के साथ स्थित केतु की अन्तर्दशा में सर्पदंश व मानसिक रोग होते हैं। द्वितीय व सप्तम स्थान में स्थित केतु कीअन्तर्दशा में दीर्घकाल तक चलने वाले रोग होते

हैं। राहु से छठे, आठवें तथा बारहवें स्थान में पाप ग्रहो से युक्त शुक्र की अन्तर्दशा में मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह तथा रुधिर सम्बन्धी रोग होते हैं। द्वितीयेश व सप्तमेश शुक्र की अन्तर्दशा में अपमृत्यु। राहु से छठे, आठवें तथा बारहवें स्थान में नीचस्थ सूर्य की अन्तर्दशा में ज्वर तथा अतिसार। द्वितीयेश तथा सप्तमेश सूर्य की अन्तर्दशा में महारोग। राहु से छठे, आठवें तथा बारहवें स्थान में निर्बल चन्द्र की अन्तर्दशा में घाव, चोट, तथा फोडा फुन्सी कारक होता है। द्वितीयेश व सप्तमेश चन्द्र की अन्तर्दशा अपमृत्यु देने वाली होती है। राहु से छठे, आठवें तथा बारहवें स्थान में पाप ग्रहो से युक्त मंगल की अन्तर्दशा में सर्पभय, व्रणभय, देहपीडा तथा रक्तविकार दायक होती है। द्वितीयेश व सप्तमेश मंगल की दशा आलस्य तथा शारीरिक दुर्बलता कारक होती है।

२.२५.५ शनि की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा का फल-

शनि की महादशा में प्रायः वायु जनित रोग होते हैं। शनि यदि अष्टम या द्वादश स्थान में अथवा अस्तंगत या पापयुत हो तो व्याकुलता व भय कारक होता है। द्वितीयेश व सप्तमेश शनि की अन्तर्दशा में देहपीडा। शनि से अष्टम या व्यय स्थान में स्थित केतु शीतज्वर, अतिसार तथा व्रण कारक होती है। द्वितीय या सप्तम स्थान में स्थित केतु की अन्तर्दशा शीतलता प्रदायक। त्रिकस्थ, नीचस्थ अथवा अस्तंगत शुक्र की अन्तर्दशा मानसिक रोग दायक। शनि से छठे, आठवें या बारहवें भाव में स्थित शुक्र की अन्तर्दशा में नेत्ररोग, ज्वर, दन्तरोग, हृदयरोग, गुप्तरोग, ऊंचाई से गिरने का भय रहता है। द्वितीयेश व सप्तमेश शुक्र की अन्तर्दशा में महाक्लेश। शनि से प्रथम, आठवें या बारहवें स्थान में स्थित सूर्य की अन्तर्दशा हृदयरोग, मानसिकरोग, ज्वर कारक होता है। द्वितीयेश व सप्तमेश सूर्य की अन्तर्दशा में सम्पूर्ण शरीर में दर्द। क्षीण, पापयुक्त या दृष्ट, नीच व क्रूर राशि में स्थित चन्द्रमा की अन्तर्दशा महाकष्ट दायक। शनि से आठवें या बारहवें भाव में स्थित निर्बल चन्द्रमा की अन्तर्दशा आलस्य व मानसिक रोग कारक होती है। द्वितीयेश व सप्तमेश चन्द्रमा की अन्तर्दशा शारीरिक दुर्बलता देती है। अष्टम व व्यय स्थान में स्थित नीच व अस्तंगत मंगल की अन्तर्दशा व्रण, शस्त्राघात, व ग्रन्थिरोग दायक होती है। शनि की महादशा में राहु का अन्तर मानसिक रोग व भ्रमकारक होता है। द्वितीय व सप्तम स्थान में स्थित राहु की अन्तर्दशा देहपीडा देती है। शनि से छठे, आठवें या बारहवें भाव में स्थित पापयुक्त गुरु मानसिक रोग देने वाला होता है। द्वितीयेश या सप्तमेश गुरु की शरीरिक अन्तर्दशा स्थूलता देती है।

२.२५.६ बुध की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा का फल- त्रिक स्थान में स्थित नीच, अस्तंगत या पापयुक्त बुध की अन्तर्दशा में शूलरोग। द्वितीयेश व सप्तमेश बुध की अन्तर्दशा में वातशूल। बुध से अष्टम या एकादश

स्थान में स्थित केतु की अन्तर्दशा में वाहन से गिरना, वृश्चिकदंश। द्वितीय या सप्तम भाव में स्थित केतु की अन्तर्दशा में शरीर में जकडन तथा लकवा। बुध से छठे, आठवें, बारहवें भाव में स्थित निर्बल शुक्र की अन्तर्दशा में हृदयरोग, ज्वर, तथा अतिसार होता है। द्वितीयेश व सप्तमेश शुक्र की अन्तर्दशा में अपमृत्यु। बुध से प्रथम, छठे या बारहवें भाव में पाप ग्रहों से युक्त सूर्य की अन्तर्दशा में सिरदर्द, शस्त्राघात व मनोविकार होते हैं।द्वितीयेश व सप्तमेश सूर्य की अन्तर्दशा में अपमृत्यु। नीच या शत्रुराशिगत चन्द्रमा की अन्तर्दशा में देहबाधा। बुध सेछठे, आठवें, बारहवें भाव में स्थित पापयुक्त चन्द्रमा की अन्तर्दशा में चोर एवं अग्नि से भय। द्वितीयेश व सप्तमेश चन्द्रमा की अन्तर्दशा में शारीरिक व मानसिक कष्ट। अष्टम व व्यय स्थान में स्थित नीचस्थ भौम की अन्तर्दशा में शस्त्राघात, व्रण, ताप, ज्वर तथा ग्रन्थि रोग होते हैं। बुध से छठे, आठवें, बारहवें भाव में स्थित पाप ग्रह युक्त व निर्बल मंगल की अन्तर्दशा में राजदण्ड व चोर भय होता है। लग्न अष्टम या व्ययभाव में स्थित राहु की अन्तर्दशा में हृदयरोग होता है। द्वितीय या सप्तम भाव में स्थित राहु की अन्तर्दशा में गुप्तरोग तथा कमरदर्द होता है। त्रिकस्थ, नीचस्थ, अस्तंगत व पापदृष्ट गुरु की अन्तर्दशा चोरभय व हेदपीडा।बुध से छठे, आठवें तथा बारहवें भाव में स्थित निर्बल गुरु की अन्तर्दशा में अंगताप व व्याकुलता रहती है। द्वितीय व सप्तम भाव में स्थित गुरु शरीर में दर्द। बुध से अष्टम या द्वादश भाव में स्थित शनि की अन्तर्दशा में बुद्धिनाश व मानसिक रोग। द्वितीयेश व सप्तमेश शनि की अन्तर्दशा में अपमृत्यु होती है।

२.२५.७ केतु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा का फल-

अष्टम व व्यय भाव में स्थित नीच या अस्त ग्रहों से युत केतु की अन्तर्दशा हृदय रोग कारक होती है। द्वितीयेश व सप्तमेश से सम्बन्धित केतु रोग भय। केतु से छठे, आठवें, बारहवें भाव में स्थित पाप ग्रह युक्त व निर्बल शुक्र की अन्तर्दशा में नेत्र रोग, व्रण व हृदय रोग होता है। अष्टम भाव में स्थित पापयुत सूर्य की अन्तर्दशा में सर्प, विष, रोगभय, गर्मी व ज्वर की समस्या होती है। केतु से षष्ठ, अष्टम व द्वादश भाव में स्थित निर्बल चन्द्रमा की महादशा में व्याकुलता होती है। केतु की महादशा में अष्टमेश चन्द्रमा का अन्तर होने पर अपमृत्यु कारक होता है। केतु से द्वितीय, अष्टम तथा द्वादश भाव में स्थित मंगल की अन्तर्दशा में प्रमेह व मूत्रकृच्छ। द्वितीयेश व सप्तमेश मंगल की अन्तर्दशा में ताप, ज्वर, अपमृत्यु व विषभय होता है। अष्टम व व्यय भाव में स्थित पापयुत व दृष्ट राहु की अन्तर्दशा में बहुमूत्र, शीतज्वर, प्रमेह व शूलरोग होते हैं। द्वितीय व सप्तम भाव में स्थित पापग्रहों से व दृष्ट राहु की अन्तर्दशा में महारोग होते हैं। केतु से छठे, आठवें तथा बारहवें भाव में स्थित नीचस्थ गुरु की अन्तर्दशा में सर्पभय व व्रण आदि होते हैं। अष्टम व व्यय स्थान में स्थित शनि की अन्तर्दशा में आलस्य तथा स्थूलता होती है। केतु से छठे, आठवें तथा बारहवें भाव में पाप ग्रहों से

युक्त शनि की अन्तर्दशा में देहताप व मानसिक सन्ताप आदि होते हैं। द्वितीय व सप्तमेश शनि की अन्तर्दशा में मृत्युतुल्य कष्ट होते हैं। त्रिक स्थान में स्थित पापयुक्त व दृष्ट बुध की दशा में मनोव्यथा होती है। केतु से छठे, आठवें तथा बारहवें भाव में स्थित निर्बल बुध की अन्तर्दशा में राजभय व शारीरिक कष्ट होता हैं।

२.२५.८ शुक्रकी महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा का फल-

त्रिक स्थानों में स्थित पापग्रहों से युत शुक्र की अन्तर्दशा में चोरभय। मारकेश शुक्र की दशा में स्त्री कष्ट व मृत्युभय होता है। षष्ठ व अष्टम में पापग्रह युक्त व नीचराशि गत सूर्य की अन्तर्दशा में ताप, मानसिक व्याधि व अनेक प्रकार के रोग होते हैं। मारकेश सूर्य की अन्तर्दशा देहपीडा व उन्माद कारक होता है। शुक्र से छठे, आठवें तथा बारहवें स्थान में स्थित नीच व अस्त चन्द्र की अन्तर्दशा में मनस्ताप। शुक्र से छठे, आठवें तथा बारहवें स्थान में स्थित मंगल की अन्तर्दशा में शीतज्वर होता है। उपचय स्थानों में स्थित राहु की अन्तर्दशा में ज्वर, अजीर्ण तथा मानसिक विकार होते हैं। द्वितीय व सप्तमेश राहु की अन्तर्दशा में आलस्य तथा कमर दर्द होता है। शुक्र से छठे, आठवें तथा बारहवें स्थान में पापयुत गुरु की अन्तर्दशा में चोरभय, मनोव्यथा तथा शरीर में नाना प्रकार रोग होते हैं। मारकेश गुरु की अन्तर्दशा में शारीरिक कष्ट। नीचस्थ शनि की अन्तर्दशा में शारीरिक क्लेश व आलस्य होता है। शुक्र से छठे, आठवें तथा बारहवें स्थान में स्थित शनि अन्तर्दशा में नाना प्रकार की व्याधियां होती हैं। द्वितीयेश तथा सप्तमेश शनि की अन्तर्दशा में वात जनित रोग होते हैं। पापग्रहों से युत वप दृष्ट बुध की अन्तर्दशा में शीत वात ज्वर होता है। शुक्र से आठवें तथा ग्यारहवें स्थान में स्थित पाप युत केतु की व्रण, शिरोवेदना, मनोव्यथा तथा प्रमेह आदि रोग होते हैं। द्वितीयेश व सप्तमेश केतु की अन्तर्दशा में शारीरिक पीडा रहती है।

२.२६ अभ्यास प्रश्न-

क. रोग कितने प्रकार के होते हैं?

ख. रोग किसे कहते हैं?

ग. नक्षत्र कितने हैं?

घ. सूर्य के दशावर्ष कितने होते हैं?

ङ विंशोत्तरी दशा में कुल कितने वर्ष होते हैं?

२.२७ सारांश-

प्रिय छात्रों प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि रोग मन, शरीर तथा आत्मा के विकार हैं तथा स्वास्थ्य की विपरीत अवस्था का नाम ही रोग है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप सूर्यादि नवग्रहों की दशाओं में शरीर में उत्पन्न होने वाले रोगों का विश्लेषण जन्मकुण्डली के द्वारा कैसे करना है इससे भी अवगत हो गये होंगे। साथ ही विंशोत्तरी, योगिनी, अष्टोत्तरी आदि विभिन्न दशाओं से भी परिचित हो गये हैं और विंशोत्तरी व योगिनी दशा का साधन करना भी जान गए हैं। इस पाठ को पढने के उपरान्त आप के मन उत्पन्न होने वाले रोगों से सम्बन्धित सभी प्रश्नों का समाधान हो गया होगा।

२.२८ पारिभाषिकशब्दावली-

केन्द्र- प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम भाव की केन्द्र संज्ञा होती है।

लग्न-पूर्वी क्षितिज में आकाश का जो भाग पृथ्वी से लगा रहता है उसे लग्न कहते हैं।

त्रिकोण- पंचम तथा नवम भाव की त्रिकोण संज्ञा होती है।

त्रिक-तृतीय, षष्ठ, द्वादश भाव को त्रिक कहते हैं।

उन्माद-मस्तिष्क का वह रोग जिसमें मन व बुद्धि का संतुलन बिगड जाता है।

नवमांश-राशि का नवां भाग।

नक्षत्र- जिसका कभी क्षरण नहीं होता। अर्थात् जो हमेशा एक जगह पर स्थित रहता हो।

शुभग्रह- पूर्णचन्द्रमा, बुध व शुक्र।

पापग्रह- सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु व क्षीण चन्द्रमा।

उन्माद- पागलपन, सनक या चित्तविभ्रम।

२.३० अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

क. तीन

ख. स्वास्थ्य की विपरीत अवस्था ही रोग है।

ग. सताईस

घ. छः

ङ. एक सौ बीस वर्ष

२.३१ निबन्धात्मक प्रश्न-

१. सोदाहरण विंशोत्तरी दशा साधन कीजिए।

२. सूर्य की महादशा उत्पन्न होने वाले रोगों का वर्णन कीजिये।

३.शनि की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा की विवेचना कीजिए।

इकाई – 3 दिक्-देश-काल के सापेक्ष रोग परिज्ञान

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 दिक् परिचय
3.4 देश परिचय
3.5 काल परिचय
3.6 रोग परिज्ञान के ज्योतिषीय आधार
3.7 दिक्-देश-काल के सापेक्ष रोग निर्धारण
3.8 सारांश
3.9 पारिभाषिक शब्दावली
3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 सहायक पाठ्यसामग्री
3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा-ज्योतिष पाठ्यक्रम से सम्बंधित है जिसका शीर्षक "दिक्-देश-काल के सापेक्ष रोग परिज्ञान" है। इस इकाई के अंतर्गत हम दिक्-देश-काल के सापेक्ष रोग परिज्ञान के विषय का सम्यक् रूप से अध्ययन करेंगे।

ज्योतिषशास्त्र कालविधान शास्त्र है। जिसका मुख्य प्रयोजन है गणितीय प्रक्रिया द्वारा फल का आदेश करना। फलादेश से हम भविष्य में आने वाली विपत्तियो व व्याधियों से समाज को सचेत कर सकते हैं। फलित ज्योतिष की वह शाखा कर्मफल के सिद्धांत के अनुसरण में राशियो एवं ग्रहो की स्थिति के आधार पर मानव को होने वाली आधि-व्याधि के कारणों पर विचार कर रोग-निदान में सहयोग करती है चिकित्सा ज्योतिष कहलाती है। चिकित्सा के क्षेत्र में देखा जाये तो ज्योतिष रूपी ज्ञान आज चिकित्सा के क्षेत्र में अमृत का कार्य कर रही है। इसीलिये चिकित्सा ज्योतिष को रोग-निदान की विद्या भी कहा जाता है। चिकित्सा ज्योतिष के सहयोग से हमें कष्टों तथा व्याधियों के पूर्वानुमान तथा उसके निराकरण आदि विषयों के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। क्योकिं सम्प्रति प्रारब्ध को जानने का साधन केवल ज्योतिषशास्त्र ही है।

अतः प्रस्तुत इकाई में शास्त्रोक्त चिकित्सा ज्योतिष के द्वारा रोग निर्धारण, इसके आधार तथा सिद्धांत ज्योतिष के प्रमुख विषयो में प्रमुख त्रिप्रश्न सापेक्ष रोग परिज्ञान की चर्चा की जायेगी।

3.2 उद्देश्य

दिशा, देश (स्थान विशेष) तथा काल के ज्ञान के बिना रोग परिज्ञान करना सम्भव नहीं है क्योकिं जन्म से मृत्यु पर्यन्त मनुष्य आजीवन दिक्-देश-काल के अन्तर्गत ही अपना जीवन सुखमय व्यतीत करने की इच्छा व चेष्टा करता रहता है। अतः इन विषयों का विस्तार से समुचित वर्णन किया गया गया है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप –

- ज्योतिषशास्त्रोक्त सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।
- दिशाओं एव विदिशाओ के बारे में जान सकेंगे।
- दिक् ज्ञान के सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।
- देश के के बारे में जान सकेंगे।
- काल के भेदों के बारे में जान सकेंगे।
- काल के अंतर्गत नवविधकालमान के बारे में जान सकेंगे।
- ज्योतिषशास्त्र के आधार पर रोग निर्धारण करने के बारे में जान सकेंगे।
- त्रिप्रश्न के सपेक्ष रोग परिज्ञान करने के बारे में जान सकेंगे।

3.3. दिक् परिचय

प्रस्तुत इकाई ज्योतिष के पाठ्यक्रम डी.एम्.ए. 103 के तृतीय खण्ड की तृतीय इकाई से समन्धित है , जिसका शीर्षक है "दिक् देश सापेक्ष रोग ज्ञान" है |ज्योतिषशास्त्र के त्रिप्रश्न ज्ञान में 'दिक्' ज्ञान सर्वप्रथम पदार्थ है। त्रिप्रश्न (दिक्, देश तथा काल) ज्ञान वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र के सिद्धांत पक्ष से सम्बंधित है। दिक् को सामान्य अर्थ में दिशा शब्द से व्यवहत करते है। अतः दिशा के परिज्ञान के बिना ज्योतिषशास्त्र के अन्य अवयवों का साधन व ज्ञान अत्यन्त दुष्कर है, क्यूँ की दिक् अर्थात् दिशा के ज्ञान से ही ब्रह्माण्डस्थ पिण्डों तथा पृथ्वी पर सभी स्थितियों का निर्धारण किया जा सकता है। दिक् ज्ञान के बिना धरातलस्थ पदार्थ, वस्तु, जनमानस आदि की स्थिति का ज्ञान स्वयं के सापेक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। एतदर्थ दिशा का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

जनमानस के सामान्य व्यवहार में चार दिशाओं का ज्ञान प्रचलित है। यथा – पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण। परंतु ज्योतषशास्त्र के अनुसार दिशाऐं कुल दश (१०) संख्यात्मक होती है। यथा – पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय कोण, वायव्य कोण, नैऋत्य कोण, ऐशान्य कोण,ऊर्ध्व तथा अधः। इन्हें हम दो तरह से वर्गीकृत कर सकते हैं – 1. दिशाऐ तथा 2. विदिशाऐ।

1. दिशायें - पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण।

2. विदिशायें - आग्नेय कोण, वायव्य कोण, नैऋत्य कोण, ऐशान्य कोण,ऊर्ध्व तथा अधः।

दिशा विचार पर अचार्यों ने कहा है कि जिस दिशा में सूर्य का उदय होता है, वह पूर्व दिशा है। जिस दिशा में सूर्य अस्त होता है, उसे पश्चिम दिशा कहते हैं। वही जिस दिशा ध्रुवतारा दिखाई देता है उसे उत्तर तथा उससे विपरीत में दक्षिण दिशाहोता है। यथा –

यत्रोदेत्यस्ततां गच्छेदर्कस्ते पूर्वपश्चिमे।
ध्रुवो यत्रोत्तरदिक् सा तद्विरूद्धा च दक्षिणा॥

विदिशाओं पर आचार्यों का विचार है कि अग्नि कोण को पूर्व दिशा में, वायव्य कोण को पश्चिम दिशा में, नैऋत्य कोण को दक्षिण दिशा में तथा ईशान कोण को उत्तर दिशा की ओर समझना चाहिये। यथा –

आग्नेयी पुर्वदिग्ज्ञेया दक्षिणादिक् च नैऋती।
वायवी पश्चिम दिक् स्यादैशानी च तथोत्तरा॥

ऊर्ध्व तथा अधः को छोड़कर प्राधानतया आठ (८) दिशाओं के स्वामी इस प्रकार हैं -

प्राच्यादिशा रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाक्पतयः।
क्षीणेन्द्वर्कयमाराः पापास्तैः संयुतः सौम्यः॥

स्पष्ट ज्ञान के लिये चक्र देखें –

दिशा	**स्वामी**
पूर्व	**सूर्य**
आग्नेय कोण	**शुक्र**
दक्षिण	**मंगल**
नैऋत्य कोण	**राहु**
पश्चिम	**शनि**
वायव्य कोण	**चन्द्र**
उत्तर	**बुध**
ईशान कोण	**गुरू**

चारों दिशाओं के निर्धारण के स्पष्ट ज्ञान करने हेतु दैवज्ञों द्वारा प्रतिपादित किया गया है –

सायनार्काजसंक्रान्तौ काले सूर्योदये नरैः।
भास्काराभिमुखैर्ज्ञेया दिशोऽथ विदिशः स्फुटाः॥
सम्मुखे पूर्वदिग् ज्ञेया पश्चाद् ज्ञेया च पश्चिमा।
उत्तरो वामभागे या दक्षिणे सा च दक्षिणा॥

अर्थात्, सायन मेष संक्रांति के सुर्योदयकाल में सूर्याभिमुख होकर स्पष्ट दिशा और विदिशाओं का ज्ञान करना चाहिये। यथा सम्मुख जो दिखे वह पूर्व, पृष्ठ भाग में पश्चिम, बायें उत्तर और दाहिने भाग की दक्षिण दिशा होती है।

दिशाओं के ज्ञानार्थ वर्तमान समाज में सामन्यतया कई आधुनिक यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है जिसमें 'कम्पास या कम्पस' यन्त्र मुख्य है। परन्तु प्राचीन मनीषियों ने भी बिना आधुनिक यन्त्रों के दो प्रकार से दिक् ज्ञान किया। आचार्यो ने सूक्ष्म तथा स्थूल के भेद से दिशा परिज्ञान गणितीय पद्धति से प्रतिपादित किया है।

स्थूल दिक् साधन –

यत्रोदितोऽर्कः किल तत्र पूर्वा तत्रापरा यत्र गतः प्रतिष्ठाम् ।
तन्मत्स्यतोऽन्ये च ततोऽखिलानामुदकस्थितो मेरुरितिप्रसिद्धम् ॥

भास्कराचार्य के अनुसार जहॉ कहीं भी सूर्य का उदय जिस दिशा में होता है वह उस स्थान की पूर्व दिशा तथा जिस स्थान में सूर्यास्त होता है वह पश्चिम दिशा होती है। सूर्योदय एवं सूर्यास्त देखकर पूर्व और पश्चिम दिशा का निर्धारण किया जाता है। पुनः पूर्व और पश्चिम दिशाओं की सहायता से पूर्वाभिमुख खड़े होकर बायें तरफ उत्तर तथा दाहिने तरफ दक्षिण दिशा का निर्धारण किया जाता है। आचार्य के मत में समग्र भू मण्डल पर स्थित सभी जीवों के लिये सुमेरु उत्तर दिशा में स्थित है तथा सुमेरु से एक सौ अस्सी अंश (१८०°) दूसरी तरफ दक्षिण दिशा होती है। प्रस्तुत प्रसंग में सूर्योदय तथा सूर्यास्त के द्वारा दिक् साधन करने से कुछ व्यावहारिक समस्याएं दिग् निर्धारण के क्रम में उपस्थित हो जाती हैं। सूर्य की विषुवत रेखा से २३०। २७' (परम क्रान्ति तुल्य) उत्तर से लेकर विषुवत रेखा से परम क्रान्ति तुल्य दक्षिण तक भ्रमण करने से ४६०। ५४' के बीच हर स्थान पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त का स्थान निरन्तर कुछ-कुछ परिवर्तित होगा जिसके फलस्वरूप एक नियत स्थान पर भी पूर्वादि दिशाएं भिन्नता को प्राप्त होंगी। अतः ४६०। ५४' के किस बिन्दु के सूर्योदय को पूर्व दिशा मानकर किसी कार्य का सम्पादन किया जाय इसके उपचारार्थ आचार्यों ने सिद्धान्त ग्रन्थों में सूक्ष्म दृष्टि से दिक्ज्ञान की अनेक विधियाँ बतायी हैं।

सूर्यसिद्धान्तोक्त दिक्साधन विधि –

शिलातलेऽम्बु संशुद्धे वज्र लेपेऽपि वा समे ।
तत्र शङ्क्वंगुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ॥
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पनाद्वादशांगुलम् ।
तच्छाया स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्धयोः ॥
तत्र बिन्दू विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
तन्मध्ये तिमिनारेखाकर्तव्यादक्षिणोत्तरा ॥
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा ।
दिङ्मध्यत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तवदेव हि ॥

अर्थात् स्थिर जल के सतह के समान जल से समतल की गई भूमि पर, समतल शिलाखण्ड पर, कठोर लेप से की गई समान भूमि पर या ऐसी भूमि जिसका तल सीसे या काँच के सतह की तरह तरल हो, ऐसे भूमि या धरातल को दिग् ज्ञान के लिये उपयुक्त माना जाता है। उक्त भूमि पर शङ्कु की अङ्गुलात्मक माप के तुल्य व्यासार्ध से एक वृत्त बनाये तथा उसके केंद्र पर बारह अङ्गुल माप के मान का एक द्वादशाङ्गुल शङ्कु स्थापित करे। इसकी छाया पूर्वाह्न तथा अपराह्न काल पर वृत्त में जहॉ स्पर्श करे, उन दोनोंबिंदुओं को पश्चिम तथा पूर्व बिंदु कहते हैं। उनके मध्य में मत्स्याकार रेखाये बनाये एवं मछली के आकार के दोनों रेखाओ की मिलने की आकृति वाले मुख एवं पूँछ के बीच में खींची जाने वाली रेखा दक्षिणोत्तर रेखा होगी जो पूर्व और पश्चिम दोनों बिंदुओ के बीच जाने वाली रेखा पर लम्ब के रूप में होगी। याम्योत्तर रेखा जहॉ समवृत्त के दोनो ओर

बिंदुओं पर लगती है वहाँ वास्तविक उत्तर एवं दक्षिण दिशा होगी। पुनः याम्योत्तर रेखा के सूत्रार्ध से मछली के आकार का सूत्र बनाये ये सूते जहाँ समवृत्त पर पूर्वापर मे स्पर्श करेगी वही वास्तविक पूर्व एवं पश्चिम बिंदु होंगे तथा वही पूर्व एवं पश्चिम दिशा होगी। इसी प्रकार पूर्व, पश्चिम,उत्तर एवं दक्षिण दिशा का साधन करने के उपरांत विदिशाओं का भी साधन करना चाहिये।

जैसा की पूर्व में बताया जा चुका है कि दिशा का ज्ञान स्थूल और सूक्ष्म के भेद से किया जा सकता है। स्थूल ज्ञान की दृष्टि से जिस दिशा में सूर्योदय होता है वह पूर्व तथा जिस दिशा में सूर्यास्त होता है वह पश्चिम दिशा होता है। यात्रादि में इन्ही दिशाओं को आधार मानकर भौतिक रूप में ग्रहण करते हैं। परन्तु श्रौत-स्मार्त, यज्ञ कुण्ड, मंडप, गृहादि के निर्णयों में सूक्ष्म दिशा का आनयन ही श्रेष्ठ माना गया है।

इस प्रकार हम आशा करते हैं कि आपने ज्योतिष शास्त्र के सिद्धांतोक्त पक्ष में प्रतिपादित दिक ज्ञान को भलिभाँति समझ लिया है।

3.4. देश परिचय

वस्तुतः देश शब्द स्थान वाचक माना जाता है। यह 'दिश' धातु तथा 'घञ्' प्रत्यय के संयोग से निष्पादित होता है। देश सम्बंधित चर्चा के विषय में सम्भवतः सर्वप्रथम प्रमाण चरक-संहिता में मिलता है। यथा – **"देशत्वधिष्ठानम्"।**

देश ज्ञान को स्थान विशेष के कारण से अक्षांश ज्ञान भी समझना चाहिये। जिस भूमि के ऊपर हम सभी स्थित हैं उसकी आकृति कैसी है? किस तरह वह आकाश में स्थित है? वह गतिमान है या स्थिर है? तथा देश, द्वीप, समुद्र, पर्वत श्रेणियां किस तरह संस्थित है? उसका स्थान तथा भूमि की समानताएँ, आकाशीय भ्रमणशील पिण्डों, ग्रह-नक्षत्र ताराओं के मार्ग आदि सम्बंधित ज्ञान अक्षांश ज्ञान से पूर्व आवश्यक है। सिद्धांत ज्योतिष के अति महत्वपूर्ण प्रारम्भिक ग्रंथ 'गोल-परिभाष' में इस विषय के संदर्भ में कहा गया है कि –

स्वशक्त्या भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खे स्थितः।
पृथुत्वात् समवद् भाति चलोऽप्यचलवत् तथा॥
आवृत्तोऽयं क्रमात् चन्द्र-बुध-शुक्राऽर्क-भूभुवाम्।
गोलैर्जीवार्किभानां च क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थितैः॥

अर्थात् यह जो भूमि है जिसपर हम अवस्थित हैं वह कंदूक के आकार का होने से 'भूगोल' के नाम से भी व्यवहृत होती है। यह भूमि अपनी स्वशक्ति से निराधार अर्थात् बिना किसी आधार के आकाश में स्थित है। अति-विशाल होने के कारण यह भूमि समतल दिखलाई पड़ती है तथा निरंतर चलते हुए भी अचर (स्थिर) प्रतीत होती है। साथ ही इस भूमि पर ग्रहों तथा पिण्डों का आवरण भी है। क्रमशः चन्द्र,बुध,शुक्र,सूर्य,मंगल,बृहस्पति,शनि तथा नक्षत्र मण्डल स्थित हैं। भूमि के स्वरूप विचार के संदर्भ में आचार्य भास्करने स्वकीय ग्रंथ सिद्धांत शिरोमणि में प्रतिपादित किया है। यथा –

भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा।
वृतैर्वृत्तो वृत्तः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्॥
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्यपृष्ठे।
निष्ठं विश्वं च शश्वत्सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समंतात्॥
सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः।

कदम्बकुसुमग्रंथिः प्रसरैरिव ॥

जैसा कि उक्त श्लोक से स्पष्ट है कि यह भूमि पिण्ड मृद-अनिल-सलिल-व्योम-तेज इन पाँच भौतिक तत्वों से निर्मित होकर वर्तुलाकार रूप में पूर्वोक्त चन्द्रादि कक्षा से आवृत्त निराधार एवं स्वशक्ति से आकाश में स्थित है और जहाँ पर देव,दानव एवं मानवादि निवास करते हैं। पुराणों के अनुसार यह भू-पिण्ड कच्छप के पीठ तथा शेषनाग के शीर्ष पर स्थित बतलाया गया है।

देश ज्ञान के लिये अक्षांश साधन एवं उसके अवयव तथा खगोलीय स्थितियों का परिचय भी जानना आवश्यक है क्यो कि निरक्षखमध्य और स्वखमध्य का अंतर याम्योत्तरवृत्त में अक्षांश होता है। साथ ही ध्रुवोन्नति भी अक्षांश ही जानना चाहिये। वहीं आचार्यो ने ध्रुवस्थान व समस्थान का अंतर याम्योत्तरवृत्त में अक्षांश तुल्य कहा है। सिद्धांत ज्योतिष में ग्रहों का उदयास्तादि कार्य में जिस प्रकार विभिन्नता उत्पन्न होती है फलस्वरूप उसके निराकरण हेतु देश विशेष ज्ञानार्थ भौगोलिक स्थिति से उत्पन्न को जानकर वहाँ देश का ज्ञान करते हैं।

3.5. काल परिचय

काल ज्योतिषशास्त्र का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विषय है। इसीलिये ज्योतिषशास्त्र को कालविधान शास्त्र भी कहते हैं। संसार के सभी कार्य कालाधीन हैं, काल के बिना अत्यन्त लघु कार्य भी सिद्ध नहीं हो सकता। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार काल के दो (2) भेद होते हैं प्रथम लोक का अंत करने वाला तथा द्वितीय गणनात्मक अर्थात् गणना करने वाला। व्यवहार में केवल गणनात्मक काल ही ग्रहण किया जाता है तथा अंतकृत काल को हम त्याग कर देते हैं। गणनात्मक काल के भी दो (2) भेद होते हैं यथा प्रथम सूक्ष्म जिसे अमूर्त्त भी कहते है तथा द्वितीय स्थूल काल जिसकी संज्ञा मूर्त्त काल भी है। इस विषय पर सूर्यसिद्धांत में कहा गया है कि –

लोकानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूल्सूक्ष्मत्वान्मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते ॥

हमारे शास्त्रज्ञों ने कालमान की परिकल्पना नव (9) प्रकार के मानों से की है यथा –

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षमानानि वै नव ॥

नवविधकाल मानों में ब्रह्ममान, दिव्यमान, पितृमान, प्रजपतिमान, बृहस्पतिमान, सौरमान, सावनमान, चान्द्रमान तथा नाक्षत्रमान हैं।

ब्रह्ममान

नाम से ही अर्थ स्पष्ट होता है कि ब्रह्म से संबंधित मान को ब्राह्ममान कहते हैं। नौ प्रकार के मानों में यह काल का सबसे बड़ा मान खंड है। भगवान् भास्कर इस मान के सन्दर्भ में कहते हैं कि –

तद् द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः।।
सन्ध्यासन्ध्यांश-सहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम्।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया।।
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसंगुणः।
क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोः स्वकः।।
युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः।।

ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दशः।
कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिपंचदशः स्मृतः।।
इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती।।

यहाँ आशय यह है कि रवि का एक भगण भोग का काल एक सौरवर्ष होता है। इसी को एक दिव्यदिन भी कहते हैं।

स्पष्टरूप से समझने के लिये यहॉ देखें –
360 दिन = 1 वर्ष = 1 दिव्यदिन।
360 दिव्यदिन = 1 दिव्यवर्ष।
इसी कालप्रमाण से 12000 वर्ष = चतुर्युग।
12000 गुणित 360 = 43,20,000 सौरवर्ष।
पुनः चारों युगों का मान अलग अलग लाने के लिए-
कृतयुग में धर्मपाद = 4
त्रेता में धर्मपाद = 3
द्वापर में धर्मपाद = 2
कलियुग में धर्मपाद = 1
इनका योग = 10 धर्मपाद।
इसलिए अनुपात के द्वारा –
(महायुग गुणित 4) / 10 = कृतयुग का मान
(महायुग गुणित 3) / 10 = त्रेता का मान
(महायुग गुणित 2) / 10 = द्वापर का मान
(महायुग गुणित 1) / 10 = कलियुग का मान
यहाँ कहा गया है कि कृतयुगादिकों के षष्ठांश तुल्य सन्धियां होती हैं और चारों युगों का मान उनके सन्ध्या तथा संध्यांश से युक्त है।
71 महायुग = 1 मनु
एक कल्प में = 14 मनु
71 गुणित 14 = 994 महायुग = 1 कल्प
कृतवर्षप्रमाणतुल्य मनु की सन्धि होती है। इसलिए मनुओं की सन्धि संख्या पन्द्रह होती है।
1 मनुसन्धि = कृतयुग 1 इसका महायुगात्मक मान लाते हैं तो
(महायुग गुणित 4) / 10 = कृतयुग = 1 मनुसन्धि
(महायुग गुणित 4 गुणित 15) / 10 = 15 मनुओं की सन्धि का मान।
= 6 महायुग
1 कल्प = 14 मनु $ 15 सन्धि
= 14 ग 71 महायुग $ 6 महायुग
= 1000 महायुग
= एक ब्राह्मदिन।
इसी प्रकार ब्रह्मा की रात्रि भी 1 कल्प की होती है। अतः अहोरात्र = 2 कल्प।
इस मान से ब्रह्मा को शतायु कहा गया है।

दिव्यमान

'दिवि भवं दिव्यम्' अर्थात् देवताओं से संबंधित मान को दैवमान कहते हैं। दिव्य दिन का मान एक सौरवर्ष तुल्य होता है। जैसे-

360 सौरदिन = 1 सौरवर्ष।

1 सौरवर्ष = 1 दिव्य दिन।

360 दिव्य दिन = 1 दिव्य वर्ष।

सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं -

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
यत् प्रोक्तं तद् भवेद्दिव्यं भानोर्भगणपूरणात्।।

देवताओं के दिन और रात्रि का मान तो तुल्य ही होता है किन्तु यहाँ विशेष यह है कि जब देवताओं का दिन होता है तब असुरों की रात्रि होती है तथा जब असुरों का दिन होता है तब देवताओं की रात्रि होती है। इसका कारण यह है कि शास्त्रानुसार देवताओं का वास सुमेरु तथा दैत्यों का वास कुमेरु पर है। सुमेरु नाडीवृत्त से उत्तर दिशा में 90 अंश की दूरी पर तथा कुमेरु नाडीवृत्त से दक्षिण दिशा से 90 अंश दूरी पर स्थित है। दोनों स्थानों के बीच की दूरी 180 अंश है। और दोनों के बीच में निरक्षदेश है तथा नाडीवृत्त ही दोनों का गर्भक्षितिज है। मेषादि छः राशियों की स्थिति नाडीवृत्त से उत्तर में तथा तुलादि छः राशियों की स्थिति नाडीवृत्त से दक्षिण में हैं। अतः यदि सूर्य मेषादि छः राशियों में भ्रमण करता है तो असुरों के क्षितिज के नीचे होने से उनकी रात्रि तथा यदि तुलादि छः राशियों में भ्रमण करता है तो देवों की रात्रि तथा दैत्यों का दिन होता है। इसी प्रकार दैत्यों एवं देवों के विपर्यय क्रम से छः महीने का दिन तथा छः महीने की रात्रि होती है। इसी एक सौरवर्ष प्रमाण को दिव्य दिन की संज्ञा दी गई है। देवताओं से सम्बन्धित हैं यह मान इसलिए दिव्य कहते हैं।

पैत्रमान-

पैत्र्यमान के प्रतिपादन के प्रसंग में भगवान सूर्य सूर्यसिद्धान्त में कहते हैं कि-

पित्र्यं मासेन भवति नाडीषष्टया तु मानुषम्।
तदेव किल सर्वत्र न भवेत् केन हेतुना।।

अर्थात् पित्र्यदिन एकचान्द्रमास तुल्य होता है। अर्थात् पितरों के लिए पन्द्रह तिथियों का एक दिन तथा पन्द्रह तिथियों की एक रात्रि होती है। दोनों का योग करने से एक चान्द्रमास तुल्य अहोरात्र होता है।

चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग में पितरों का वास होता है। अतः यदि सूर्य अमावस्या को जब चन्द्रमा के ठीक ऊपर होता है तब ये अवस्था पितरों का दिनार्ध तथा पूर्णिमा को पितरों की मध्यरात्रि होती है। इस प्रकार संक्रान्तियों के विभाजन के क्रम में 16 दिन के लिए विशेष रुप से पितृपक्ष के लिए निर्देशित किया गया है।

प्राजापत्यमान –

प्रजापत्यमान के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं कि मन्वन्तर व्यवस्था को ही प्रजापत्यमान कहा जाता है।

मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम्।
न तत्र द्युनिशोर्भेदो ब्राह्मं कल्पः प्रकीर्तितम्।।

अर्थात् मन्वन्तर व्यवस्था को ही प्राजापत्य मान कहा जाता है। मनवन्तर व्यवस्था की चर्चा ब्राह्म मान में भी की गई है, ऐसी स्थिति में प्रसंगानुसार विचार करते हैं तो पाते हैं कि -

71 महायुग = 1 मनवन्तर

1 महायुग = चतुर्युग (सत्य, त्रेता, द्वापर एवं कलि ।

इस प्रकार से कुल मनुओं की संख्या 14 है जिसमें 6 मनवन्तर का काल व्यतीत हो गया है तथा सातवें वैवस्न्त-मन्वन्तर चल रहा है। इस प्रकार ही सौरवर्ष प्रमाण में इनका गणितीय स्वरुप निम्नलिखित है ।

बार्हस्पत्य(गौरव)मान --

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् सांवत्सरं सांहितिका वदन्ति।
ज्ञेयं विमिश्रन्तु मनुष्यमानं मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्तेः।।

ज्योतिषशास्त्र के विद्वान् बृहस्पति के मध्यम मान से एक राशि भोगकाल को बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। मनुष्य का मान व्यवहारमिश्रित होता है, जिसमें चार मानों के द्वारा मानव व्यवहार-वृत्ति सम्पादित होती है। मध्यम मान से बृहस्पति जब एक राशि का भोग कर लेता है तो एक संवत्सर का काल होता है। संवत्सर 60 होते हैं, पुनः 60 के बाद इनकी आवृत्ति होती है । मानव व्यवहार हेतु केवल एक मान कोई पर्याप्त नहीं है अपितु चार मान (सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र) व्यवहार के लिए उपयोगी होते हैं।

सूर्यसिद्धान्त में बार्हस्पत्य मान के सन्दर्भ में कहा गया है कि मध्यमगति से गुरु के एकराशि भोग को एक संवत्सर की संज्ञा दी गयी है। मानाध्याय में भगवान् सूर्य कहते हैं कि -

वैशाखादिषु कृष्णे च योगात् पंचदशे तिथौ।
कार्तिकादीनि वर्षाणि गुरोरस्तोदयात् तथा।।

अर्थात् वैशाखादि मासों से कृष्णपक्ष की 30वीं (अमावस्या) तिथि को कृत्तिकादि नक्षत्रों के संयोग से बार्हस्पत्य कार्तिकादिमास होते हैं। इस प्रकार से जिस मास में गुरु अस्त या उदय होता है उस मास से संबंधित बृहस्पति का वर्ष प्रारम्भ होता है।

जिस मास में गुरु उदय या अस्त हों उस मास के अमान्त नक्षत्र के नाम से गुरु वर्षारम्भ होता है। बृहस्पति के ये कार्तिकादि मास 60 संवत्सरों से सम्बन्धित गौरव वर्षों से भिन्न होते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा के पूर्णिमान्त काल के नक्षत्रों के नाम से चान्द्रमासों के नाम पड़े हैं इसी प्रकार वैशाखादि मासों के कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि के योग में बृहस्पति के अस्त और उदय होने से इसके कार्तिकादि वर्षों के नाम रखे गये हैं।

वस्तुतः जिस समय बृहस्पति सूर्य के बहुत पास आ जाता है उस समय सूर्य के प्रकाश के कारण यह देखा नहीं जा सकता, इसलिये अस्त समझा जाता है। फिर जब सूर्य से इतना दूर हो जाता है कि दिखाई पड़ने लगता है तब उदय समझा जाता है। यह घटना उस समय के लगभग होती है जब सूर्य और बृहस्पति की युति होती है जो लगभग 399 दिन या 13 मास के अंतर पर हुआ करती है। इस काल को 'बार्हस्पत्य वर्ष' कहते हैं।

सौरमान

सूर्य का भगणभोगकाल ही सौरवर्ष कहलाता है। अर्थात् सूर्य द्वारा द्वादश राशियों के भोग को एक सौरवर्ष कहते हैं। एक राशि का भोगकाल एक सौरमास होता है तथा एक अंश का भोगकाल एक-एक सौरदिन होता है। 360 सौर दिन = 1 सौरवर्ष। रवि के एकराशि संक्रमण काल

से अपरराशि संक्रमण काल तक सौरमास होता है। सूर्य के संक्रान्ति वशात् ही अयन का निर्माण भी होता है।

भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासा उत्तरायणम्।
कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्।।
द्विराशिनाथा ऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः।
मेषोदयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः।।

इस श्लोक में सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन मानों का व्यवहार होता है। आठ संवत्सरों की गणना बृहस्पति मान से होती है, शेष चार मानों का काम नित्य नहीं पड़ता।

सौरमान के प्रयोजन पर दृष्टि डालें तो आचार्य ने प्रतिपादित किया है कि –

सौरेण द्युनिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च।
अयनं विषुवच्चैव सङ्क्रान्तेः पुण्यकालता।।

अर्थात् दिन रात्रि का परिमाण, षडशीतिमुख, उत्तरायण और दक्षिणायन, विषुव संक्रान्ति तथा अन्य संक्रान्तियों का पुण्यकाल सौरमान से ही निश्चय किया जाता है।

सौरसंक्रान्तियों के नाम -

भचक्रनाभौ विषुवद्द्वितीयं समसूत्रगम्।
अयनद्वितयं चैव चतस्रः प्रथितास्तु ताः।।
तदन्तरेषु सङ्क्रान्तिद्वितयं द्वितयं पुनः।
नैरन्तर्यात्तु सङ्क्रान्त्योर्ज्ञेयं विष्णुपदीद्वयम्।।

अर्थात् भगोल के मध्य में एक ही व्यास पर दो विषुवत् संक्रान्तियाँ और उसी प्रकार दो अयन संक्रान्तियाँ कुल चार संक्रान्तियाँ होती हैं। इनके बीच में दो दो संक्रान्तियाँ और होती हैं जिनमें से वह संक्रान्तियाँ जो इन चारों के बाद ही आती हैं विष्णुपदी कहलाती हैं।

यदि इसका गंभीर विचार करें तो पाते हैं कि, चौथे श्लोक से आरम्भ करके आठवें श्लोक तक 12 संक्रान्तियों के नाम बतलाये गये हैं। जिस समय सूर्य किसी राशि में प्रवेश करता है उस समय संक्रान्ति होती है। राशियाँ बारह हैं जिनमें से चार राशियों को षडशीतिमुख कहते हैं। शेष में दो को विषुवत्, दो को अयन और चार को विष्णुपदी कहते हैं।

क्रम	**राशि**	**संक्रान्ति के नाम**	**ऋतुओं के नाम**
1.	**मेष**	**विषुवत्**	**वसंत**
2.	**वृष**	**विष्णुपदी**	**ग्रीष्म**
3.	**मिथुन**	**षडशीतिमुख**	**ग्रीष्म**
4.	**कर्क**	**अयन**	**वर्षा**
5.	**सिंह**	**विष्णुपदी**	**वर्षा**
6.	**कन्या**	**षडशीतिमुख**	**शरद**
7.	**तुला**	**विषुवत्**	**शरद**
8.	**वृश्चिक**	**विष्णुपदी**	**हेमन्त**
9.	**धनु**	**षडशीतिमुख**	**हेमन्त**
10.	**मकर**	**अयन**	**शिशिर**
11.	**कुम्भ**	**विष्णुपदी**	**शिशिर**
12.	**मीन**	**षडशीतिमुख**	**वसंत**

सावनमान -

“उदयादुदयं भानोर्भूमि सावनवसरः” तथा “इनोदयद्वयान्तरं तदर्क सावनं दिनम्” अर्थात् एक सूर्योदय से अपर सूर्योदय के मध्य के अन्तवर्ती काल को सावन दिन कहते हैं। स्पष्टतया यह सूर्य सावन दिन है। भगवान् सूर्य के अंश स्वयं मानाध्याय में कहते हैं कि-

उदयादुदयं भानोः सावनं तत् प्रकीर्तितम्।
सावनानि स्युरेतेन यज्ञकालविधिस्तु तैः।।
सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा।
मध्यमा ग्रहभुक्तिस्तु सावनेनैव गृह्यते।।

उपर्युक्त श्लोक में सावनदिन प्रमाण का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार ने सावन दिन के प्रयोजन का विधिवत वर्णन किया है कि किस-किस कार्य में इस सावन मान का प्रयोग करना चाहिए। प्रस्तुत प्रसंग में मतान्तर द्वारा भी सावन की प्ररिभाषा यही बताई गई है कि, सूर्य के उदय काल से दूसरे उदय काल तक के बीच की अवधि को सावन दिन कहा जाता है।

वस्तुतः हम यही प्रतिदिन देखते हैं कि सूर्य पश्चिम के तरफ गमन करता है परन्तु वह प्रवह वायु की गति है न कि सूर्य की स्वगति। सावनमान के द्वारा ही सूतक, दिनेश, मासेश, वर्षेश एवं ग्रहों के मध्यमा गति का आनयन किया जाता है।

चान्द्रमान –

सूर्य एवं चन्द्रमा की युति अमावस्या के नाम से जानी जाती है। एक अमावस्या से दूसरे अमावस्या के मध्यवर्तिकाल अर्थात् बीच के काल को चान्द्रमास कहते हैं। सिद्धान्तशिरोमणि में जैसा बतलाया गया है -

रवीन्द्वोर्युतिः संयुतिर्यावदन्या
विधोर्मास एतच्च पैत्र्यं द्युरात्रम्।

तिथियों की संख्या तीस है तथा एक वृत में 360 अंश है। अतः $(360 \times 1) / 30 = 120 = 1$ तिथिमान। अर्थात् जब सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर 12 अंश के बराबर होता है तो 1 तिथि निष्पन्न होती है। इस प्रकार तिथियों का उद्भव होता है। सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि -

अर्काद् विनिस्सृतः प्राची यद्यात्यहरहः शशी।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः।।

इसके प्रयोजन के प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि तिथि, करण, विवाह, क्षौरकर्म तथा जातकर्म, व्रत, उपवास व यात्रा आदि कार्य चान्द्र मान से ही ग्रहण होते हैं। अर्थात् इन कार्यों का निष्पादन चान्द्रमान-प्रमाण के आधार पर ही करना योग्य है। यथा-

तिथिः करणमुद्वाहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा।
व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण सिद्धयति।।

नाक्षत्रमान –

नाक्षत्र मान प्रसङ्ग में आचार्य सूर्यसिद्धांत में कहते हैं कि -

भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।
नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः।।
कार्तिकादिषु संयोगे कृत्तिकादि द्वयं द्वयम्।
अन्त्योपान्त्यो पंचमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम्।।

अर्थात् प्रवहवायु के द्वारा प्रेरित होकर यह भचक्र सतत् भ्रमण होता है। भचक्र के एक भ्रमण काल को नाक्षत्रदिन कहते हैं।

पूर्णिमा तिथि से जिस नक्षत्र का योग होता है उसी नक्षत्र से उस मास की संज्ञा होती है। कृतिका से दो-दो नक्षत्रों के योग से कार्तिकादि मास, अन्तिम-उपान्तिम और पंचम मास तीन-तीन नक्षत्रों के योग से निष्पन्न होते हैं। चक्र में स्पष्टता के लिये देखें।

पूर्णिमा तिथि के नक्षत्र	**मास**
कृत्तिका-रोहिणी	**कार्तिक**
मृगशीर्ष-आर्द्रा	**मार्गशीर्ष**
पुनर्वसु-पुष्य	**पौष**
आश्लेषा-मघा	**माघ**
पू. फा, उ. फा., हस्त	**चैत्र**
विशाखा-अनुराधा	**वैशाख**
ज्येष्ठा-मूल	**ज्येष्ठ**
पू.षा.-उ.षा.	**आषाढ़**
श्रवण-घनिष्ठा	**श्रावण**
शतभिष्, पू.भा., उ.भा.,	**भाद्रपद**
रेवती, अश्विनी, भरणी	**आश्विन**

अर्थात् जितने समय में नक्षत्र चक्र का एक भ्रमण पूरा होता है उसे नाक्षत्र दिन कहते हैं। पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है उसी के नाम पर मासों के नाम पड़े है।

3.6. रोगपरिज्ञान के ज्योतिषीय आधार

मानव-जीवन के साथ ही रोग तथा व्याधियों की चर्चा भी आरम्भ हो जाती है। रोगों से अपनी सुरक्षा हेतु मनुष्यों ने प्रारम्भ से ही यत्न आरम्भ कर दिया था। आज संसार कैंसर, एड्स, डेंगू, तथा कोरोना आदि अनेक रोगों के समाधान एवं उपाय हेतु समस्त विश्व प्रयत्नशील है। परन्तु मनुष्य जितना ही प्राकृतिक रहस्यों को खोजने का प्रयास करता है, प्रकृति उतना ही अपना विस्तार व्यापक करती जाती है, जिसके समाधान के समस्त उपाय विश्व के लिये लघुकाय प्रतीत होते हैं। हमारे प्राचीन ऋषियों ने जहाँ अणुवाद, परमाणुवाद को व्याख्यायित किया, सांख्य के प्रकृति एवं पुरुष से सृष्टिप्रक्रिया को जोड़ा, वहीं आकाशीय ग्रह-नक्षत्रों को बाँस की पट्टी से कोसों दूर धरती पर बैठकर वेधित किया तथा उनके धरती पर पड़ने वाले शुभाशुभ प्रभावों को मानव जीवन के साथ जोड़कर व्याख्यायित किया। सर्वप्रथम विश्व के सर्वप्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद से रोगों का परिज्ञान आरम्भ हो जाता है, जिसमें पाण्डुरोग, हृदयरोग, उदररोग एवं नेत्ररोगों की चर्चा प्राप्त होती है। पौराणिक कथाओं में तो विविध प्रकार के रोगों की चर्चा एवं उपचार के लिये औषधि, मन्त्र, एवं तन्त्र आदि का प्रयोग प्राप्त होता है। आर्षपरम्परा में तो रोगों के विनिश्चयार्थ ज्योतिषशास्त्रीय ग्रहयोगों सहित आयुर्वेदीय परम्परा का विकास सर्वतोभावेन दर्शनीय है।

आयुर्वेद में कर्मप्रकोप एवं दोषप्रकोप को रोगोत्पत्ति का कारण माना गया हैं। आचार्य कल्हण के अनुसार सामान्यतया मिथ्या आहार एवं विहार से रोग उत्पन्न होते है। किन्तु जब मनुष्य ऋतु के अनुसार आहार विहार करता हो, सद्वृत्ति का सेवन करता हो एवं रोगोत्पत्ति का मौसम भी न हो

और अचानक रोग उत्पन्न हो जाय तो उस रोग को कर्मजन्य रोग मानना चाहिए। जैसा कि चरकसंहिता के उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि - **"कर्मजा व्याधयः केचित् दोषजाःसन्ति चापरे"** वास्तविकता यह है कि आहार-विहार भी एक प्रकार का कर्म ही है, जिसके मिथ्यायोग से रोग उत्पन्न होते हैं। शास्त्रों में कर्म के तीन भेद माने गये हैं--१. संचित २. प्रारब्ध एवं ३-क्रियमाण। आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना गया है, वह संचित कर्म है जिसके एक भाग को प्रारब्ध या दैव कहा गया है। तथा मिथ्या आहारविहार क्रियमाण कर्म हैं। इस प्रकार कर्म प्रकोप एवं दोष प्रकोप दोनों के मूल में अशुभ या अनुकर्म ही एक मात्र हेतु प्रतीत होते है। अतएव ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने मनुष्य के पूर्वार्जित कर्म या जन्मान्तर में विहित पाप को रोग का कारण माना है, यथा प्रश्न मार्ग के अनुसार –**"जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण ज्ञायते।"**

हम यदि रोग के ज्योतिषीय आधार पर विचार करें तो हम सभी जानते हैं कि सारा ब्रह्मांड पंच महाभूतों का बना है तथा इन्हीं पंच महाभूतों से मानव शरीर की संरचना होती है। शरीर में तीन धातुओं कफ, पित्त और वायु का समावेश है जिनके असंतुलन से हम रोगग्रस्त और संतुलन से स्वस्थ होते हैं।

ज्योतिष शास्त्र में रोग का विचार करने के लिये मुख्य तीन तत्व प्रधान होते हैं 1. ग्रह, 2. राशि तथा 3. भाव। इनकी प्रकृति-स्थिति आदि के द्वारा ही रोग आदि का विचार किया जाता है। वस्तुतः सूर्य, चंद्रादि ग्रहों का प्रभाव भूमंडल के सभी जीवों, वनस्पतियों, पेड़-पौधों तथा जड़ और चेतन पदार्थों पर पड़ता है। उसी प्रकार, विभिन्न नक्षत्रों और अग्नि, वायु, जल तथा पृथ्वी तत्व राशियों का प्रभाव भी उनके गुणानुसार समस्त भूमंडल पर पड़ता है। ज्योतिष का उक्त सभी तत्वों से गहरा संबंध है अतः इसके सिद्धांतों के विश्लेषण से विभिन्न शारीरिक और मानसिक रोगों का पूर्वानुमान, उनकी पहचान तथा समय रहते उनका निदान संभव है।

ज्योतिष शास्त्रानुसार जन्मकुंडली के षष्ठ स्थान, व्यय (द्वादश) तथा अष्टम स्थान में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी, षष्ठेश (रोगेश) ग्रह से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव से रोग का विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त पाप-प्रभाव-युक्त राशियाँ एवं भाव, नीच-राशि-गत अस्तं गत ग्रह तथा निर्बल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही ग्रह, मारक ग्रह एवं बालारिष्ठ कारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गये हैं। इन ग्रहों के शुभाशुभत्व एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग तथा रोगी की प्रकृति, प्रभाव और उसकी अवधि का निर्धारण किया जाता है। साथ ही साथ रोग के साध्यत्व या असाध्यत्व का निर्णय किया जाता है। वस्तुतः ग्रह फलाफल के नियामक नहीं होते हैं, किन्तु सूचक होते है अर्थात् ग्रह किसी को सुख- दुःख नहीं देते हैं, अपितु आने-वाले सुख-दुःख की सूचना भी देते हैं। वस्तुतः ग्रह अपनी गति, स्थिति एवं युति के द्वारा यह व्यक्त करते हैं कि उनकी रश्मियों का प्रभाव किस प्रकार का वातावरण तैयार कर रहा है। यद्यपि ग्रह-रश्मियों का हम पर सतत् एवं सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है। रोग परिज्ञान के संदर्भ में हम यदि तीनों तत्वों को विस्तृत रूप से समझने का प्रयास करें तो निश्चित ही हम उनके माध्यम से होने वाले रोग आदि का निर्णय कर सकते हैं।

3.7 दिक्-देश-काल के सापेक्ष रोग का निर्धारण

भारतीय ज्योतिष में दिक्- देश- काल (त्रिप्रश्न) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। समस्त सिद्धांत, फलित, संहितादि विषयों के निर्धारण में त्रिप्रश्न की भूमिका प्रमुख मानी जाती है। रोग निर्धारण में भी त्रिप्रश्न का विचार आवश्यक हो जाता है। ज्योतिषशास्त्र का प्रमुख आधार सूर्य एवं चंद्रमा की

कलाओं का ऋतुओं से, जलवायु परिवर्तन से, वायुमण्डल से, प्राकृतिक आपदाओं से तथा काल के विभिन्न खण्डों से सीधा सम्बंध है। सूर्य की प्रधान रश्मियाँ सृष्टि की संवाहिका होती हैं। चंद्रमा के शीतलता से पृथ्वी एवं उस पर रहने वाले प्राणियों का जीवन-यापन सरल हो जाता है। जल का एक-एक बूँद पूर्ण चंद्रमा से ठीक वैसे ही प्रभावित होता है जैसे ज्वार-भाटा की लहरें उसके संकेत पर प्लवित होती है।

ज्योतिषशास्त्र का कथन है कि बहुत-सी प्रवृत्तियां एवं व्याधियॉ (रोगादि) मनुष्यों के पूर्वजन्म से जुड़ी होती है । इसका प्रमाण आचार्य वराहमिहिर जी ने अपने स्वकीय ग्रंथ ‘लघुजातक’ में प्रतिपादित किया है –

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

सर्वविदित है कि मनुष्य के शरीर में तीन तरह की प्रकृति सदैव विद्यमान रहती है – वात, कफ तथा पित्त । इन्हीं प्रकृति-त्रय के असंतुलन से मनुष्य का शरीर व्याधि ग्रस्त हो जाता है । कफ की अधिकता से कफ जनित रोग (यथा – सर्दी, खाँसी,जुकाम आदि), पित्त की आधिक्यता से पित्त जनित रोग (पीलिया आदि) तथा वात के अधिक होने से वात जनित रोग (यथा – गैस, एसीडिटि, उदर रोगादि) होते हैं। प्रकृतित्रय के पश्चात् यदि हम त्रिप्रश्न (दिक्, देश तथा काल) के सापेक्ष यदि रोगों का विश्लेषण करते हैं तो सर्वप्रथम हमें दिक्, देश एवं काल को भी भलीभांति समझना होगा और साथ ही मानव शरीर में उत्पन्न रोगों के आधार और उसके अवयवों को भी जानना होगा। विदित है कि ज्योतिष में प्रधान सूर्यादि सप्त-ग्रहों से ही समस्त शास्त्रीय विश्लेषण होता है । रोग परिज्ञान के लिये भी यदि हम सूर्यादि ग्रहों को मानव शरीर के विभिन्न अंगों के साथ विश्लेषित करें तो –

ग्रह धातु
सूर्य हड्डी
चंद्र रक्त
मंगल रक्तकण तथा हीमोग्लोबीन
बुध चर्म
बृहस्पति चर्बी (मेद)
शुक्र वीर्य
शनि तंत्रिकाऐं

यद्यपि दिक् का सामान्य अर्थ दिशा है किन्तु रोग निर्धारण के क्रम में यहाँ हम दिक् विशेष की बात करे तो उसके दो (2) अभिप्राय हो सकते हैं –

(1). मानव शरीर में भी दिक् अर्थात् दिशा आदि निर्धारित की गयी है। ऊर्ध्व, अधः, मध्य, वाम, दक्ष, पृष्ठ आदि मानव शरीर के दिशा के रूप में निर्धारित की गयी है। शरीर का ऊर्ध्व भाग जिस ग्रह से प्रभावित होगा तत्सम्बन्धित व्याधि उसके उस अंग में उत्पन्न होगी। इसी प्रकार अन्य भागों में भी जिन-जिन ग्रहों का प्रभाव रहेगा तत्तदजन्य व्याधियाँ उत्पन्न होगी। विश्लेषण के लिये पूर्व में ग्रह और धातुओं की चर्चा कर दी गयी है।

(2). दिक् से दूसरा अभिप्राय दिशा विशेष से हो सकता है। ज्योतिषशास्त्र में दश दिशाऐं बतायी गयी है जिसका विवरण पूर्व के बिंदुओं में बताया जा चुका है। रोग निर्धारण के क्रम में स्व-स्थान से पूर्व दिशा, पश्चिम दिश, उत्तर दिशा तथा दक्षिण दिशा एवं विदिशाओं यथा आग्नेय कोण,

वायव्य कोण, नैऋत्य कोण, ऐशान्य कोण,ऊर्ध्व तथा अधः में स्थित व्यक्ति के रोग का निर्धारण करना हो तो हमें इसी प्रकार इन दिशाओं तथा विदिशाओं का भी ज्ञान होना चाहिये। आप सभी ज्योतिष के अध्येताओं को ग्रह और उसके धातु, कालपुरुष के अंग आदि का रोग निर्धारण के पूर्व ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये।

देश से अभिप्राय स्थान विशेष से होता है। देश स्थान विशेष की संज्ञा है। शरीर में भी शीर्ष, मुख, बाहु, हृदय कटि आदि स्थल विशेष हैं तथा प्रत्येक का कार्य अगल-अलग है। इन स्थलों में भी जीवन के अलग-अलग कालखण्डों में ग्रह और काल के प्रभाव से व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे मुख का रोग वृष राशि एवं शुक्र ग्रह से सम्बंध रखता है वैसे ही पाद (पैर) का रोग मीन राशि एवं बृहस्पति से सम्बंधित है। अतः आप सभी जिज्ञासुओं को यह समझना चाहिये कि देश के सापेक्ष रोग निर्धारण के क्रम में यहाँ देश का अर्थ भारत,चीन, जापान, रशिया आदि से न लेकर मानव शरीर के मस्तक, मुख,हृदय आदि स्थलों से ग्रहण करना चाहिये और रोग निर्धारण में ग्रह, धातु, दशा आदि का विचार करना चाहिये। जैसा कि हम सब जानते हैं कि भारतीय चिकित्सा पद्धति तथा ज्योतिष एक दूसरे के पूरक रहे हैं। आचार्य चरक ने भी चरक संहिता में लिखा है कि–

कर्मजा व्याधयः केचित् दोषजा सन्ति चापरे ॥

त्रिषठाचार्य ने भी कहा है कि –

जन्मान्तर कृतं पापं व्याधिरूपेण जायते ॥

उक्त श्लोक रोग निर्धारण के सन्दर्भ में यह स्पष्ट करता है कि कुछ व्याधियाँ पूर्वजन्म के कर्मो के प्रभाव से होती है तथा कुछ व्याधियाँ शरीर में स्थित त्रिदोष के प्रभाव से होती हैं। त्रिदोषजन्य व्याधियों का निदान चिकित्सा विज्ञान द्वारा सरलता से हो जाता है परन्तु पूर्वजन्म में कर्मो के प्रभाव से उत्पन्न व्याधि का निदान चिकित्सा विज्ञान के पास नहीं है। मानव को ऐसी व्याधियों से निदान पाने के लिये दीर्घकाल तक संघर्ष करना पड़ता है। इसीलिये आचार्यों ने ऐसे व्याधियों को असाध्य रोगों की संज्ञा दी है।

पित्तः पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में देश-काल के अनुसार त्रिदोशों की तथा मल धातुओं की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है इन्ही के प्रभाव से मनुष्य के स्वभाव में तथा खान-पान आदि प्रवृत्तियों में असमानताऐं आ जाती है। ज्योतिषशास्त्र इन विषमताओं को भलीभांति निरुपित करता है। गर्भाधान से प्रसवकाल तक, प्रसूति से शरीरान्त तक प्राणियों पर प्रतिक्षण पड़ने वाले अंतरिक्ष की शक्तियों के प्रभाव का सूक्ष्म आकलन ज्योतिष्शास्त्र द्वारा किया जाता है। गर्भस्थ शिशु के विकासक्रम को बतलाते हुए आचार्यवराहमिहिर ने लिखा है –

कललघनावयवास्थित्वकरोमस्मृतिसमुद्भवाः क्रमशः।
मासेषु शुक्रकुजजीव – सूर्यचन्द्रार्किसौम्यानाम् ॥
अशनोद्वेगप्रसवाः परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम्।
कलुषैः पीडापतनं निपीडितैर्निर्मलैः पुष्टिः ॥

आधानकाल से आरम्भ कर प्रसवकाल तक गर्भस्थ शिशु का मासिक विकास ततद् मासों के अधिपति ग्रहों की परिस्थिति के अनुरूप ही होता है। इसीलिये गर्भ के प्रत्येक मास स्वामी ग्रहों का उल्लेख किया गया है। यथा –

मास गर्भ की अवस्थास्वामी ग्रह

प्रथम	**कलल**	**शुक्र**
द्वितीय	**घन**	**भौम**
तृतीय	**अवयव**	**बृहस्पति**
चतुर्थ	**अस्थि**	**सूर्य**
पञ्चम	**त्वक्**	**चन्द्र**
षष्ठ	**रोम**	**शनि**
सप्तम	**स्मृति**	**बुध**
अष्टम	**अशन**	**लग्नेश**
नवम	**उद्वेग**	**चन्द्र**
दशम	**प्रसव**	**सूर्य**

इसी प्रकार प्रसव के अनन्तर जन्मकालिक ग्रह स्थितिकेअनुसार जातक के शारीरिक एवं मानसिक विकास का आकलन किया जा सकता है। जातक के प्रत्येक अंगों की स्थिति का ज्ञान करने के लिये कालपुरुष की परिकल्पना की गयी है। कालपुरुष के अंगों में सभी राशियों का न्यास किया गया है जो इस प्रकार है –

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिवस्तिगुह्यसंज्ञानि।
ऊरु जानू जङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः ॥

कालपुरुष के अंग	**राशि**
सिर	**मेष**
मुख	**वृष**
बाहु	**मिथुन**
हृदय	**कर्क**
उदर	**सिंह**
कटि	**कन्या**
वस्ति	**तुला**
गुह्य	**वृश्चिक**
ऊरु	**धनु**
जानु	**मकर**
जंघा	**कुम्भ**
चरण	**मीन**

शारीरिक सूक्ष्म ज्ञान के लिये नक्षत्र पुरुष का भी निरूपण किया गया है। नक्षत्र और राशियाँ जातक के विभिन्न अंगों की सूचक हैं। राशियों नक्षत्रों पर पड़ने वाले प्रभाव उनसे सम्बंधित अंगों के प्रभाव की सूचना देते हैं। उन्ही परिस्थितियों के अनुसार तत्तद् अंगों का विकास एवं उनमें आने वाली विकृतियों की सूचना मिलती है। इन प्रभावों को जानने के लिये जन्मकालिक लग्न के आधार पर बनाया गया आकाशीय मानचित्र जिसे जन्मचक्र कहा जाता, को उपयोग में लाया जाता है। जन्मचक्र के बारह (12) भाव भी शारीरिक अंगों को व्यक्त करते हैं। यथा –

भाव	**अंग**
प्रथम	**सिर**
द्वितीय	**दक्षिण नेत्र**

तृतीय दक्षिण बाहु
चतुर्थ दक्षिण वक्ष
पञ्चम दक्षिण कुक्षि
षष्ठ दक्षिण पाद
सप्तम गुह्य
अष्टम वाम पाद
नवम वाम कुक्षि
दशम वाम वक्ष
एकादशवाम बाहु
द्वादश वाम नेत्र

इन द्वादश भावों से न केवल शरीर की अवस्था का ज्ञान होता है अपितु शारीरिक व मानसिक व्याधियों, रोगों तथा कष्टों का ज्ञान होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. त्रिप्रश्न का क्या तात्पर्य होता है ?
क. दिक्-देश-काल ख. अक्षांश-लम्बांश-नतांश
ग. तीन मुख्य प्रश्न घ. तीन आदि नक्षत्र
2. विदिशाऐं कितनी होती है ?
क. 4 ख. 6 ग. 8 घ. 5
3. त्रिप्रश्न में देश का क्या तात्पर्य है ?
क. भूमि ख. स्थान विशेष ग. पृथ्वी घ. भूगोल
4. काल के मुख्य कितने प्रकार है ?
क. 1 ख. 2 ग. 3 घ. 4
5. रोग विचार हेतु ज्योतिषोक्त कितने तत्व बताऐ गये हैं?
क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

3.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आपने जाना कि ज्योतिषशास्त्र कालविधान शास्त्र है। जिसका मुख्य प्रयोजन है गणितीय प्रक्रिया द्वारा फल का आदेश करना। फलित ज्योतिष की वह शाखा जो ग्रह योगादि से आधि-व्याधि के कारणों पर विचार कर रोग-निदान में सहयोग करती है वह चिकित्सा ज्योतिष कहलाती है। आपने त्रिप्रश्न (दिक्-देश-काल) के बारे में सामान्य ज्ञान प्राप्त किया जिसमें आपने स्थूल एवं सूक्ष्म के भेद से दिक् साधन, अक्षांश वशात् देश परिचय तथा नवविधकाल मान सहित काल के भेदों के बारे में जाना। मानव-जीवन के साथ ही रोग तथा व्याधियों की चर्चा भी आरम्भ हो जाती है। रोगों से अपनी सुरक्षा हेतु मनुष्यों ने प्रारम्भ से ही यत्न आरम्भ कर दिया था। सर्वप्रथम विश्व के सर्वप्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद से रोगों का परिज्ञान आरम्भ हो जाता है, जिसमें पाण्डुरोग, हृदयरोग, उदररोग एवं नेत्ररोगों की चर्चा प्राप्त होती है। पौराणिक कथाओं में तो विविध प्रकार के रोगों की चर्चा एवं उपचार के लिये औषधि, मन्त्र, एवं तन्त्र आदि का प्रयोग प्राप्त होता है। आर्षपरम्परा में तो रोगों के विनिश्चयार्थ ज्योतिषशास्त्रीय ग्रहयोगों सहित आयुर्वेदीय परम्परा का विकास सर्वतोभावेन दर्शनीय है। सर्वविदित है कि मनुष्य के शरीर में तीन तरह की प्रकृति

सदैव विद्यमान रहती है – वात, कफ तथा पित्त। इन्हीं प्रकृति-त्रय के असंतुलन से मनुष्य का शरीर व्याधि ग्रस्त हो जाता है। कफ की अधिकता से कफ जनित रोग (यथा – सर्दी, खाँसी,जुकाम आदि), पित्त की आधिक्यता से पित्त जनित रोग (पीलिया आदि) तथा वात के अधिक होने से वात जनित रोग (यथा – गैस, एसीडिटि, उदर रोगादि) होते हैं। प्रकृतित्रय तथा तत्वों के पश्चात् इसी क्रम में हमने त्रिप्रश्न (दिक्, देश तथा काल) के सापेक्ष भी रोगों का विस्तृत विश्लेषण किया।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

दिक् – दिशा

देश – निवास स्थान विशेष

काल – समय

प्रकृतित्रय – कफ,पित्त,वात

आर्ष परम्परा – सौर/ऋषि परम्परा

व्याधि – रोग

विकृति – असामान्य

त्रिप्रश्न – दिक्,देश,काल

पांडु रोग – पित्त जनित रोग

उदर – पेट

ऊर्ध्व – ऊपर

अधः – नीचे

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क	2. ख	3. ख	4. ख	5. क

3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी
2. प्रश्नमार्ग - प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी एवं जे.एस. भसीन
3. प्राच्यविद्या अनुशीलनम् – प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
4. वीरमित्रोदय – पं. मित्र मिश्र
5. चरकसंहिता (टीका) – हरिश्चंद्र सिंह कुशवाहा
6. सूर्यसिद्धांत - प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
7. सिद्धांतशिरोमणि – प्रो. सत्यदेव शर्मा
8. सिद्धांतज्योतिषमञ्जुषा – प्रो. विनय कुमार पाण्डेय
9. MAJY (506) की इकाई – प्रो. शत्रुघ्न त्रिपाठी
10. MAJY (603) की इकाई – डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

3.12 सहायक पाठ्यसामग्री

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी
2. प्राच्यविद्या अनुशीलनम् – प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
3. सूर्यसिद्धांत - प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
4. ज्योतिष-सिद्धांत-मञ्जुषा – प्रो. विनय कुमार पाण्डेय

5. भारतीय ज्योतिष – पं. शिवनाथ झारखण्डी

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दिक् साधन विधि बताऐं।
2. नवविधकालमान की विस्तृत चर्चा करें।
3. त्रिप्रश्न को निरूपित करें।
4. रोग परिज्ञान के ज्योतिषीय आधार स्पष्ट करें।
5. रोग परिज्ञान के मूल तत्व की विस्तृत विवेचना करें।

इकाई -5 स्वप्न के माध्यम से रोग ज्ञान निर्णय

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 स्वप्न का परिचय एवं कारण व भेद-
5.4 स्वप्न क्या है
5.5 ग्रहस्थिति एवं स्वप्न का शुभाशुभ फल
5.6 प्रश्नलग्न में ग्रहस्थितिवशात् स्वप्न का दृश्य
5.7 सुस्वप्न व दुःस्वप्न का निर्णय
5.8 लग्नस्थित राशि के माध्यम से स्वप्न दृष्य कथन
5.9 स्वप्न विशेष एवं उसका फल
5.10 अभ्यास प्रश्न
5.11 मृत्युसूचक स्वप्न
5.12 नेत्ररोगसूचक स्वप्न
5.13 अशुभ स्वप्न
5.14 फलप्राप्ति का काल
5.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.16 सारांश
5.17 पारिभाषिकशब्दावली
5.18 निबन्धात्मक प्रश्न
5.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र को वेद का नेत्र कहा गया है। जिसके आधार पर हम भूत-भविष्य एवं वर्तमान में होने वाली घटनाओं का अवलोकन करते हैं। तथा मनुष्य के द्वारा पूर्व जन्मार्जित शुभाऽशुभ कर्मों का जन्म कालिक ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर जीवन में प्राप्त होने वाले सुख-दुःख आदि का विवेचन किया जाता है। किसी भी मनुष्य के जन्म समय पर खगोल में ग्रहों की जो स्थिति होती है जन्मकुण्डली उसी का एक प्रत्यक्ष रूप है। तथा उस जन्म कुण्डली के द्वादश भावों में स्थित ग्रह, नक्षत्र व राशियों के आधार पर मानव जीवन की विभिन्न गतिविधियों का विश्लेषण किया जाता है ऐसे ही ज्योतिषशास्त्र में स्वप्न के आधार पर जीवन में होने वाली शुभाऽशुभ घटनाओं तथा रोगों के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है।

स्वप्न मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। प्रत्येक मानव अपने जीवन में कभी न कभी स्वप्न अवश्य देखता है। शास्त्रों में वर्णित स्वप्न के शुभाशुभ फलों का हम इस इकाई में ज्योतिषशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करेंगे।

5.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- स्वप्न को परिभाषित कर सकेंगे।
- स्वप्न किसे कहते हैं यह समझा पायेंगे।
- स्वप्न आने के कारणों को जान सकेंगे।
- स्वप्न के शुभाशुभ फल की समीक्षा कर सकेंगे।
- स्वप्न में दृष्ट गतिविधियों से होने वाले रोग की मीमांसा कर सकेंगे।

5 .3 स्वप्न का परिचय एवं कारण व भेद-

जब हम स्वप्न को जानने की कोशिश करते हैं तो हमारे मन में कितने ही प्रश्न उठ खड़े होते हैं जैसे- स्वप्न क्या है? स्वप्न क्यों आता है? इसका अर्थ क्या है? स्वप्न सत्य है या मिथ्या? यह हमारे भूत और भविष्य की घटनाओं का सूचक है? क्या यह हमें दूसरे जगत की बात बता सकता है ? मृत आत्माओं बन्धुबान्धवों की आत्माएं क्या वास्तव में स्वप्न में नजर आती हैं ? कभी-कभी स्वप्न में किसी की मृत्यु का पूर्वाभास होता है वह कैसे ? स्वप्न में किसी अपरिचित स्थान या विषय को देखने के बाद वह कैसे प्रत्यक्ष होता है ? इस प्रकार के प्रश्न स्वता ही मन में प्रस्फुटित होते हैं। इन सभी प्रश्नों का समाधान हम इस पाठ में निकालने की कोशिश करेंगे।

स्वप्न दिखाई देने के बहुत से कारण होते हैं। जैसे- धातु प्रकोप, ग्रहदशा, चिन्ता, अभिचार, गुह्यकों का प्रभाव तथा स्वप्न में भूत या भविष्य में अन्य जाति के प्राणियों का संग ये सब स्वप्न के निश्चित कारण माने गए हैं-

धातुप्रकोपाद्ग्रहपाकचिन्तादृष्टाभिचारोद्भवगुह्यकोत्थाः।
गतैष्यजात्यन्तरसत्वसङ्गः स्वप्नस्यय नूनं गतिजा हि नित्यम्।।

स्वप्नकमलाकर ग्रंथ में स्वप्न को चार प्रकार का बताया गया है- 1. वैदिक स्वप्न 2. शुभ स्वप्न 3. अशुभ स्वप्न एवं 4. मिश्रित स्वप्न।

वैदिक सपनों को उच्च कोटि का साध्य मानकर इसकी सिद्धि के लिए अनेक मंत्र और विधान भी दिए गए हैं। स्वप्न उत्पत्ति के कारणों पर विचार करते हुए आचार्यों ने स्वप्न के नौ कारण बताए हैं- 1. श्रुत, 2. अनुभूत, 3. दृष्ट, 4. चिंता, 5. प्रकृति (स्वभाव), 6. विकृति (बीमारी आदि से उत्पन्न), 7. देव, 8. पुण्य और 9. पाप।

प्रकृति और विकृति कारणों में काम (सेक्स) और इच्छा आदि का अन्तर्भाव होता है। दैवीय आदेश वाले स्वप्न उन्ही व्यक्तियों को मिलते हैं जो वात, पित्त और कफ इन त्रिदोषों से रहित होते हैं। तथा जिनका हृदय इर्ष्या, राग, द्वेष से रहित और निर्मल होता है।

देव, पुण्य और पाप भाव वाले तीन प्रकार के स्वप्न सर्वथा सत्य सिद्ध होते हैं। शेष छः कारणों से उत्पन्न स्वप्न अस्थाई एवं शुभाशुभ युक्त होते हैं।

मैथुन, हास्य, शोक, भय, मलमूत्र और चोरी के भावों से उत्पन्न स्वप्न व्यर्थ होते हैं- इसी प्रकार शारीरिक क्रियाओं को श्रेय देने वाले बहुत से विद्वान मानते हैं कि हमारे मस्तिष्क के मध्य में स्थित कोष के आभ्यन्तरिक परिवर्तन के कारण मानसिक चिन्ता की उत्पत्ति होती है। हमारे मस्तिष्क में विभिन्न कोष परस्पर संयुक्त रहते हैं। सोते समय इनका संयोग टूट जाता है, जिससे चिन्ता-धारा की श्रृंखला नष्ट हो जाती है और स्वप्न की सृष्टि उत्पन्न होती है। यह आश्चर्य की बात है कि विद्वानों के इस वर्ग का दूसरा दल ठीक इसके विपरीत बातें कहता है। उनका मत है कि निद्रा वास्तव में कोषों का संयोग भंग नहीं होता अपितु और घनिष्ठ हो जाता है; जिससे स्वाभाविक चिन्ता की विभिन्न धाराएं मिल जाती हैं और हम स्वप्न देखने लगते हैं। इसके अतिरिक्त किसी किसी के मत से सोते समय हमारे शरीर में ऐसे विषाक्त पदार्थ जमा हो जाते हैं, जिनसे कोषों की क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है तथा हम स्वप्न देखते हैं। स्वप्न का कारण जानने ज्ञात करने के लिए ऐसे कितने ही शारीर-क्रिया मूलक मत प्रचलित हैं जिनकी गिनती नहीं की जा सकती। यह सामान्य सी बात है कि इन मतों में से कोई भी मत पूर्णता सत्य सिद्ध नहीं होगा। क्योकि किसी ने भी यह संयोग-वियोग या विष-क्रिया आंखों से नहीं देखी और ना ऐसे अनुभवों से स्वप्न तत्व के सत्य को जान पाना सम्भव है।

संस्कृत वांग्मय में भी स्वप्न की उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार के विचार विद्वानों ने दिए हैं इस विषय में वृहदारण्यक उपनिषद में दो मत मिलते हैं-

1. आत्मा बहिर्जगत में देखे हुए द्रव्यों के अनुकरण पर नये जगत की सृष्टि करता है।
2. आत्मा शरीर से निकलकर इच्छा अनुसार भ्रमण करता है। ‘‘चरक संहिता‘‘ के अनुसार स्वप्न सात प्रकार के होते हैं-

दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा।
भावितो दोषजश्चेति स्वप्नः सप्तविधो मतः।।
तेष्वाद्या निष्फलाः पंच यथास्वम्प्रकृतिर्दिवा।।

1. दृष्ट
2. श्रुत
3. अनुभूत
4. प्रार्थित
5. कल्पित
6. भावित
7. दोषज

इनमें से प्रथम पांच कुछ भी फलाफल सूचित नहीं करते। तथा दिन में दिखाई देने वाले स्वप्न प्राकृतिक रूप से निष्फल होते हैं। वेदान्त के अनुसार स्वप्न में देखा हुआ कोई भी विषय हमारे लिए नया नहीं होता है।

5.4 स्वप्न क्या है ?

निद्रा अवस्था में हमारी मानसिक वृत्तियां सर्वथा निस्तेज नहीं हो जाती हैं। हां जागृत अवस्था में जो श्रृंखला मानसिक वृतियों में देखी जाती है, वह अवश्य नष्ट हो जाती है। नाना प्रकार की अद्भुत चिंताएं और दृश्य मन में उत्पन्न होते हैं। इसी को स्वप्न कहा जाता है। शास्त्रों में इसे सुषुप्ति कहते कहा गया है। स्वप्न में कहने सुनने की अपेक्षा देखने का भाग ही अधिक होता है इसलिए हम बोलचाल की भाषा में स्वप्न देखना कहते हैं।

शुभाशुभ स्वप्नों के पुराणोक्त फल-जागृत अवस्था में देखें, सुनें एवं अनुभूत प्रसंगों की पुनरावृत्ति, सुषुप्तावस्था में मनुष्य के किसी न किसी रूप में एवं कभी-कभी बिना किसी तारतम्य के शुभ और अशुभ स्वप्न के रूप में दिग्दर्शित होती है। जिससे स्वप्न दृष्टा स्वप्न में आह्लादित, भयभीत और विस्मित होता है। वैज्ञानिक या चिकित्सकीय दृष्टि से मानसिक उद्विग्नता, पाचन विकार, थकान, चिंता एवं आह्लाद के आधिक्य पर भी स्वप्न आधारित होते हैं। बहरहाल शुभ स्वप्नों से शुभ कार्यों के आधिकारिक प्रयास से कार्यसिद्धि में संलग्न होने का संकेत मिलता है और अशुभ स्वप्नों में आगामी संभावित दुःखद स्थिति के प्रति सचेत रहने की सलाह लेना आचार्यों ने श्रेयष्कर बताया है। इस प्रसंग में पौराणिक प्रसंग इस प्रकार हैं–

रामायण में एक कथा आती है कि भरत ने स्वप्न में मलिन आकृति वाले, खुले केशवाले, पर्वत की चोटी से लुढ़कते हुए एवं गोबर के गड्ढे में गिरे हुए अपने पिता महाराजा दशरथ को देखा। उन्होंने स्वप्न में सूखा हुआ समुद्र, पृथ्वी पर गिरा हुआ चंद्रमा, अंधकार से ढका हुआ जगत्, नागों का विषाण, सहसा जल्दी अग्नि का एकदम

से बुझना तथा लोहे के सिंहासन पर काला वस्त्र पहने हुए स्वयं को बैठा देखा। राजा को स्त्रियों के साथ हंसते हुए और जल्दी-जल्दी लाल रंग की माला एवं चंदन लगाए हुए धर्मात्मा दशरथ को गधों के रथ से दक्षिण की ओर जाते हुए देखा। भरत कहते हैं कि मैंने बड़े जोर से हंसते हुए राजा दशरथ को अट्टहास लगाते, लाल कपड़े पहिने स्त्री को तथा विकृत मुखाकृति वाली राक्षसी को देखा है।

इस सब को देखकर मेरा कण्ठ सूखा जा रहा है। मेरा मन विचलित हो रहा है अर्थात स्वस्थ नहीं है। मेरी, बड़े भैय्या राम की, पिता राजा दशरथ की या अनुज लक्ष्मण की मृत्यु होगी। वे अपने आप-पास खडे हुऐ सेवकों से पूछते हैं-

मेरे पिता राजा दशरथ कुशल तो हैं? महात्मा राम एवं लक्ष्मण स्वस्थ तो हैं? धर्मतत्परा, धर्मज्ञा, धर्मदर्शिनी, बुद्धिमान राम की माता आर्या कौशल्या प्रसन्न तो हैं? लक्ष्मण की माता या वीर शत्रुघ्न की माता धर्मज्ञा सुमित्रा कुशल तो हैं? आत्मकामा चण्डी के समान क्रोध करने वाली मेरी माता केकैयी स्वस्थ तो हैं? भरत ने इन सब दोषदायक स्वप्नों को इस तरह देखा और इनके प्रभाववश अपने पिता, भाई आदि पर किसी विपत्ति की शंका का संदेह निश्चत किया। कहने का भाव है कि स्वप्न का निश्चित ही कुछ न कुछ शुभाशुभ फल अवश्य होता है रामायण के इस प्रसंग से यही द्योतित होता है।

मत्स्य पुराण के 242वें अध्याय में बताया गया है कि सतयुग में जब भगवान विष्णु ने मत्स्यावतार लिया था, तो मनु महाराज ने उनसे मनुष्य द्वारा देखे गये शुभाशुभ स्वप्न फल का वृतान्त बताने का आग्रह किया था। मनु महाराज ने अपनी जिज्ञासा शान्त करने हेतु मत्स्य भगवान से पूछा कि- हे भगवान! यात्रा या अनुष्ठान के पूर्ण या वैसे भी सामान्यतया जो अनेक प्रकार के स्वप्न मनुष्य को समय-समय पर दिखाई देते हैं उनके शुभाशुभ फल क्या होते हैं ? बताने की कृपा करें। यथा-

स्वप्नाख्यानं कथं देव गमने प्रत्युपस्थिते।
दृष्यते विविधाकाराः कथं तेषां फलं भवेत्।।

मत्स्य भगवान ने स्वप्नों के फलीभूत होने की अवधि के विषय में बताते हुए कहा- रात्रि के प्रथम प्रहर में देखे गये स्वप्न का फल एक संवत्सर में अवश्य मिलता है। दूसरे प्रहर में देखे हुए षड् माह में प्राप्त होता है। तीसरे प्रहर में देखे गए स्वप्नों का फल तीन माह में प्राप्त होता है। चौथे प्रहर में स्वप्न दिखाई देता है तो उसका फल माह माह में निश्चित ही प्राप्त होता है। अरुणोदय अर्थात सूर्याेदय की बेला में देखे गए स्वप्न का फल दस दिन में प्राप्त होता है। यदि एक ही रात में शुभ स्वप्न और दुःस्वप्न दोनों ही देखे जाऐं तो उनमें बाद वाला स्वप्न ही फलदायी माना जाना चाहिए अर्थात् बाद वाले स्वप्न के आधार पर मार्गदर्शन करना चाहिए। क्योंकि बाद वाला स्वप्न फलीभूत होता है। अतः रात्रि में शुभ स्वप्न दिखाई दे तो उसके बाद सोना नहीं चाहिए।

शैलाप्रासादनगाष्ववृषभारोहणं हितम्।

द्रुमाणं श्वेतपुष्पाणां गमने च तथा द्विजः।।
द्रुमतृणाखो नाभौ तथैव बहुबाहुता।
तथैव बहुषीर्षत्वं फलितोद्भव एवं च।।

अर्थात् शुभ स्वप्नों के फल बताते हुए श्री मत्स्य भगवान ने मनु महाराज को बताया कि पर्वत, राजप्रासाद, हाथी, घोडा-बैल आदि पर आरोहण हितकारी होता है। तथा जिन वृक्षों के पुष्प श्वेत या शुभ हो उन पर चढना शुभकारी है।

5 .5 ग्रहस्थिति एवं स्वप्न का शुभाशुभ फल-

परन्तु ज्योतिष शास्त्र में प्रत्येक स्वप्न का काल के अन्तर्गत स्वप्न फल है, तात्पर्य यह है कि ग्रह, नक्षत्र की स्थिति वशात् फल कहे हैं। किन्तु कई बार व्यक्ति को पता नहीं चल पाता है कि मैने कौन सा स्वप्न कब और किस काल में देखा। अथवा यों कहे कि स्वप्न का भी पूरा स्मरण नहीं हो पाता है, तो उसका भी समाधान ज्योतिष शास्त्र करता है। उदाहरणतः -

रविलग्ने शशिदृष्टे रविराशिसप्तमे विलग्नाद्वा।
स्वप्नो दृष्टः प्रवदेत्प्रष्टुर्लग्नान्तरात्त्कालः।।

अर्थात्- यदि प्रश्न लग्न में स्थित सूर्य को चन्द्रमा देखता हो अथवा लग्न से सप्तम स्थान में सूर्य की राशि सिंह हो तो पृच्छक ने स्वप्न देखा है ऐसा कहना चाहिए। लग्न के भुक्तांशों से उतनी घटी रात बीतने पर स्वप्न देखा है यह बताना चाहिए।

1.6 प्रश्नलग्न में ग्रहस्थितिवशात् स्वप्न का दृश्य-

यदि लग्न में सूर्य हो तो स्वप्न में प्रज्वलित अग्नि, लाल कपडे आदि दिखलाई पडते हैं।
चन्द्रमा होने पर स्त्री, श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र आदि दिखते हैं।
बुध होने पर आकाश में उड़ना दिखाई पड़ता है, अनुभव होता है।
लग्न में गुरु हो तो अपने बान्धवों से मिलने का स्वप्न होता है।
शुक्र यदि प्रश्न लग्न में हो तो व्यक्ति स्वप्न में जल में तैरता है।
शनि यदि लग्नस्थ हो तो व्यक्ति वृक्षारोपण या पर्वतारोहण आदि करता है।

इस प्रकार प्रश्नलग्न में स्थित ग्रहों के समय में स्वप्न देखा गया हो तो उपरोक्त फल बताना चाहिए। तथा इसी प्रकार यदि लग्न में शुभग्रह तथा पापग्रह दोनों हों तो मिश्रित स्वप्न होता है ऐसा समझना चाहिए।

5 .7 सुस्वप्न व दुःस्वप्न का निर्णय

यदि प्रश्न लग्न में शत्रुक्षेत्री, नीच राशिगत ग्रह हो तो प्रच्छक ने दुःस्वप्न देखा है ऐसा कहना चाहिए। यदि लग्न में अस्तगत ग्रह हो तो स्वप्न बीच में ही टूट गया, ऐसा कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि ज्योतिषशास्त्र में प्रश्न कुण्डली के माध्यम से भी स्वप्नों का शुभाशुभ निर्णय उपरोक्त रीति से करना चाहिए। इस प्रसंग में आचार्य मन्त्रेश्वर ने प्रश्नमार्ग में इस प्रकार कहा है -

रिपुनीचर्क्षाउपगतैर्दुस्वप्नं निर्दिशेद्यग्रहैर्लग्ने।
रविकिरणमुषितदेहैः प्रष्टुः स्वप्नं वदेद्धग्नम्।।

5 .8 लग्नस्थित राशि के माध्यम से स्वप्न दृष्य कथन-

यदि यह विचार करना है कि क्या स्वप्न देखा गया है तो उसका विचार प्रश्न कुण्डली के मेषादि द्वादश राशियों के आधार पर इस प्रकार होगा।

- यदि प्रश्न लग्न मेष हो तो स्वप्न में देवालय के दर्शन होते हैं।
- वृष लग्न हो तो भी देव दर्शन कहें।
- मिथुन में ब्राह्मण, सन्त तथा गुरु, तपस्वीजनों के दर्शन होते हैं।
- कर्क में स्वयं को खेती में सिंचाई, कटाई, विदाई, गुडाई करता हुआ देखता है।
- लग्न में यदि सिंह राशि होगी तो खेत में घास, चारा लाना आदि वनवाली जनों को देखना अथवा भैंस या भैंसा आदि देखना ये स्वप्न होते हैं।
- कन्या लग्न होने पर स्त्रियों से मिलन देखता है।
- यदि स्वप्न प्रश्न में तुला लग्न हो तो दुकानदार, व्यापारी, विक्रेता स्वर्ण, शासक, व्यक्ति आदि दिखते हैं।
- वृश्चिक लग्न घोडा, विषाक्त पदार्थ आदि तथा स्वर्ण धातु दिखती है।
- धनु में त्वचा, फल, पुष्प, मांसादि दिखाई पडते हैं।
- मकर में स्त्री पुरुष साथ-साथ दिखते हैं।
- कुंभ में कंच तथा दर्पण आदि दिखता है।
- मीन में समुद्र अथवा सोना दिखाई पडता है।

इसी प्रकार छत्र राशि, आरुढ राशि, चतुर्थ भाव की राशि से भी स्वप्न फल का विचार करना चाहिए।

मेषे देवगृहेक्षणं रवि पुनर्देवस्य वीक्षा यमे।
द्रष्टा विप्रतपस्विनोऽथ शषिभे द्रष्टा स्वसंस्थं स्वयम्।।
क्षेत्रदानयनं तृणस्य रविभे स्वप्ने किगतेक्षणम्।
यद्वा सौरभिदर्शनं युवतिभिः कन्योदये संगमः।।
जूके लग्नगते वणिङ् नरपतिः स्वर्णेक्षणं वृश्चिके।
पश्येद् भृङ्गविषार्पणोऽथ धनुषि त्वग्वार्तवं वा फलम्।।
नक्रे स्त्रीपुरुषौ घटे तु मुकुरमीनवेऽम्बुधिर्हेम वा।
छत्रारूढ़विलग्नत्रैश्च सुखगे स्वप्नं वदेत्खेचरैः।। प्र.मार्ग 3/6-9,

5 .9 स्वप्न विशेष एवं उसका फल

जो व्यक्ति स्वप्न में प्रेतों (मुर्दा हो चुके व्यक्तियों) के साथ मद्य पीता है तथ कुत्तों के द्वारा खींचा जाता है, वह ज्वर रूपी मृत्यु से शीघ्र ही परलोक को ले जाया जाता है।

स्वप्ने मद्यं सह प्रेतैः प्रपिबते कृष्यते शुना।
स मर्त्या मुत्युना शीघ्रं ज्वररूपेण नीयते।।
रक्तमाल्यवपुर्वस्त्रो यो हसन् ह्रियते स्त्रिया।
सोऽपि पित्तेन महिषश्ववराहोष्ट्रगर्दभैः।।
यः प्रयाति दिशं याम्यामरणं तस्य यक्ष्माणा।
कण्टकवंशस्तालो वा हृदि जायते।।
यस्य तस्याशु गुल्मेन यस्य वा अनर्चिषम्।
जुह्वानो घृतसिकतैश्च शूलं तस्योपजायजे।।
पद्मं स नष्यते कुष्ठेन चण्डालैः सह यः पिबेत्।
स्नेहं बहुर्विधं स्वप्ने स प्रमेहेण नष्यति।। { ख्अष्टाङ्गहृदय, शरीरस्थानम्, अं. 6,}

अर्थात् जो व्यक्ति स्वप्न में लाल माला, लाल शरीर या लाल वस्त्र धारण करके हँसता हुआ स्त्री द्वारा खींचा जाता है, उसकी मृत्यु रक्त पित्त से होती है, तथा जो मनुष्य स्वप्न में भैसा, कुत्ता, सुअर, ऊँट तथा गधे आदि पर बैठ कर दक्षिण दिशा को जाता है उसकी मृत्यु यक्ष्मा रोग से होती है।

- जिसके हृदय में कांटो वाली बेल, बाँस या तोल (स्वप्न) में पैदा हो जाते हैं उसकी गुल्म रोग से शीर्घ ही मृत्यु हो जाती है।
- जो व्यक्ति स्वप्न में नग्न होकर शरीर में घी की मालिश कर ज्वाला रहित अग्नि में हवन करते हुए अपनी छाती में कमल उत्पन्न होते देखता है वह कुष्ठ रोग से मृत्यु को प्राप्त करता है।
- जो व्यक्ति स्वप्न में चांडालों के साथ बैठकर बहुत प्रकार के स्नेह (घी, तेल, वसा, मज्जा आदि) पीता है उसकी मृत्यु प्रमेह रोग से हो◌े◌ेती है।

उन्मादेन जले मज्जेद्यो नृव्यन् राक्षसैः सह।
अपस्मारेण यो मर्त्या नृत्यन् प्रेतेन नीयते।।

जो व्यक्ति स्वप्न में नाचता हुआ राक्षसों के साथ डुबकी लगाता है, उसकी मृत्य उन्माद रोग से होती है। जो व्यक्ति स्वप्न में नाचता हुआ प्रेतों द्वारा ले जाया जाता है वह अपस्मार रोग से मरता है।

5 .10 अभ्यास प्रश्न

1. स्वप्न दिखाई देने के प्रमुख कारण क्या हैं?
2. वृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार स्वप्नोत्पति के कितने कारण हैं?
3. ''चरकसंहिता'' के अनुसार स्वप्न के कितने प्रकार हैं?

4. यदि लग्न में सूर्य हो तो स्वप्न दिखते है?
5. भरत की माता का नाम क्या था?
6. स्वप्नकमलाकर के अनुसार स्वप्न के कितने प्रकार हैं?

5 .11 मृत्युसूचक स्वप्न

यानं खरोष्ट्रमार्जारकपिशार्दूलशूकरैः।
यत्र प्रेतश्रृगालैर्वा स मृत्योर्वर्तते मुखे।।

जो स्वप्न में गधा, ऊँट, बिलाव, वानर, सिंह, व्याघ्र, तेंदुआ तथा सूअर पर सवार होता है या प्रेत (मुर्दा) अथवा सियार की सवारी करता है, वह मृत्यु के मुख में जाता है।

5 .12 नेत्ररोगसूचक स्वप्न

अपूपशष्कुलीर्जग्ध्वा विबुद्धस्तद्विधं वमन।
न जीवत्याक्षिरोगो वा सूर्येन्दुग्रहणेक्षणम्।।
सूर्यचन्द्रमसोः पातः दर्शनं दृग्विनाशनम्।

जो व्यक्ति स्वप्न में मालपूआ, गुलगुला, कचौडी, पूरी खाता हुआ स्वयं को देखता है तथा प्रातः काल वमन करता है वह शीघ्र मरता है। स्वप्न में सूर्य ग्रहण तथा चन्द्रग्रहण दिखना नेत्र रोग का सूचक होता है। यदि स्वप्न में सूर्य चन्द्रमा टूट कर नीचे गिरते दिखाई दे तो नेत्रों की हानि होती है।

इस प्रकार स्वप्न विशेष का फल होता है परन्तु स्वप्न फल को सावधानी और गम्भीरता से करना चाहिए साथ ही प्रश्न के माध्यम से भी स्वप्न की पुष्टि कर लेनी चाहिए।

5 .13 अशुभ स्वप्न

मूर्ध्नि वंषलतादीनां सम्भवो वयसां तथा।
निलयो मुण्डताकाकगृध्राद्यैः परिवारणम्।।
तथा प्रेतपिशाचास्तीद्रविड़ान्ध्रगवाषनैः।
सङ्गणे वेगलतावंषतृणकष्टसङ्कटे।।
श्वभ्रष्मषानषयनं पतनं पांषुभ्रास्मनोः।
मज्जनं जलपङ्कादौ शीघ्रेण स्रोतसाहितिः।।
नृत्यवदित्रगीतानि रक्तस्रग्वस्तधारणम्।
वयोऽङ्गवृद्धिरभ्यङ्गणे विवाहःश्मंचकर्म च।।
पक्वान्नस्नेहमद्याषः प्रच्छर्दनविरेचने।

अर्थात्- स्वप्न में सिर पर बांस, लता इत्यादि का उगना तथा काक आदि पक्षियों का सिर में घोसला देखना, अपना मुण्डित सिर देखना, कौआ-गिद्ध आदि से घिर जाना, प्रेत, पिशाच, चुडैल या स्त्री, द्रविड, आन्ध्र, गौमांसा भक्षी, कसाई आदि का संग होना, बांस, लता, घास, कांटे आदि की बाड से राख के ढेर में गिर जाना, तेज धार वाले जलस्रोत में बह जाना, नाचना, गाना, बजाना, लाल कपडे, लाल फूलों की माला,

अवस्था अधिक देखना, हजामत बनवाना, पकवान दिखना, शराब आदि का पीना, वमन करना या विरेचन (मलत्याग) करना आदि सभी अशुभ स्वप्न हैं।

हिरण्यलोहयोर्लाभः कलिर्बन्धपराजयौ।
उपानद्युगनाषष्च प्रपातः पादचर्मवोः।।
हर्षा भृषं प्रकुपितैः पितृभिष्चावभर्त्सनम्।
प्रदीपग्रहनक्षत्रदत्तदैवदत्त चक्षुषाम्।।
पतनं वा विनाषो वा भेदनं पर्वतस्य च।
कानने रक्तकुसुमे पापकर्मानिवेषने।।
चित्तान्धकारसम्बाधे जनन्याष्च प्रवेषनम्।
पातः प्रसादशैलादेः मत्स्येन ग्रसनं तथा।।

कषायिणामसौम्यानां नग्नानां दण्डधारिणाम्।
रक्ताक्षाणां च कृष्णानां दर्शनं जातु नेष्यते।।

अर्थात्- अशुभ स्वप्नों के क्रम में स्वप्न में स्वर्ण धातु या लौह धातु को प्राप्त करना, कलह देखना, स्वयं का अन्य का बन्धन या अपनी पराजय देखना, दोनों जूतों का नष्ट हो जाना या खो जाना, पैर के तलवे की खाल अलग हो जाना, अत्यधिक प्रसन्न होना, अपने पितरों (पुरखों) द्वारा कुपित होकर तिरस्कार किया जाना या भर्त्सना किया जाना, ग्रह नक्षत्रों का, दीपक का, दाँतो का, देवताओं तथा नेत्रों का पतन देखना, पर्वतों का टूटना, लाल फूलों वाले वन में प्रविष्ट करना, विशाल प्रासाद या पहाड से गिरना (या विमान से कूदना) मछली द्वारा निगल लिया जाना, कषाय वस्त्रधारी, असौम्य आकृति, नग्न या दण्डधारी, लाल नेत्रों वाले तथा काले रंग के पुरुषों को स्वप्न में देखना ये सब स्वप्न अशुभ होते हैं। इनका फल अच्छा नहीं होता है।

5 .14 स्वप्नफल प्राप्ति का काल

विस्मृतो दीर्घह्रस्वोऽस्ति पूर्वरात्रे चिरात्फलम्।
दृष्टः करोति तुच्छं तद् गोसर्गे तदहः फलम्।।

अर्थात् विस्मृत काफी लंबा, छोटा सा और रात की शुरुआत में दिखलाई देने वाला स्वप्न विलंब से फल देता है और वह अल्प मात्रा में अशुभ फल दायक होता है। उषः काल में दिखलाई देने वाला स्वप्न उसी दिन फलदायक होता है। ऐसे ही नींद तथा अपवचन के बाद भी जो स्वप्न आता रहे उसका दोष दान, होम एवं जप आदि से कम किया जा सकता है। यदि अशुभ स्वप्न को देखकर उसके तुरंत बाद सौम्य एवं शुभ फल दिखाई दे तो स्वप्न का फल शुभ होता है। प्रथम प्रहर में दिखलाई देने वाले स्वप्न का फल वर्ष के भीतर प्राप्त होता है। द्वितीय प्रहर में दिखलाई देने वाले स्वप्न का फल छह मास के भीतर तथा तृतीय प्रहर के स्वप्न का फल चार माह के भीतर मिलता है। ऐसे ही रात्रि के अंत में दिखलाई देने वाले स्वप्न का फल एक मास में तथा उषाकाल के सपनों का फल तुरंत प्राप्त होता है।

5 .15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. धातु प्रकोप, ग्रहदशा, चिन्ता, अभिचार, गुह्यकों का प्रभाव।
2. दो
3. सात
4. प्रज्वलित अग्नि, लाल कपडे आदि दिखाई देते हैं।
5. केकैयी
6. चार

16 सारांश

इस इकाई के पश्चात आपने जान लिया होगा कि संस्कृत वांग्मय में स्वप्न विद्या को परा अंग माना गया है। स्वप्न के माध्यम से रोग का ज्ञान तथा सृष्टि के रहस्यों को जानने का प्रयास हमारे ऋषि-मुनियों ने अनादि काल से किया है। भारतीय मनीषियों की दृष्टि में स्वप्न केवल जागृत दृश्यों का मानस लोक पर प्रभाव का परिणाम मात्र नहीं है। न तो कामज या इच्छित विकारों का प्रतिफल मात्र है।

सामान्य रूप से वेदान्त की विद्या में कहा जाए तो स्वप्नलोक की तरह यह दृश्यलोक भी क्षणभंगुर है। इससे स्वप्न का मिथ्यात्व सिद्ध होता है। रज्जू में सर्प का भ्रम कहा जाए तो स्वप्न में भिखारी का राजा होना भी भ्रम मात्र ही है। परंतु स्वप्न को आदेश मानकर राजा द्वारा अपने राज्य का दान, स्वप्न में अर्जुन का पाशुपतास्त्र की दीक्षा प्राप्ति आदि अनेक उदाहरण भी भारतीय संस्कृति में देखने को मिलते हैं। त्रिजटा ने जो कुछ स्वप्न में देखा उसको अपूर्व प्रमाण मानकर श्री हनुमान जी ने लंका दहन किया था। यह सब ऐसे उदाहरण हैं जो स्वप्न में विद्या को दैविक आदेश या परा अनुसंधान से जोड़ते हैं। स्वप्न चिन्तन जब शास्त्र का रूप ग्रहण करता है तो निश्चित ही उसकी चिन्तना मूर्त पद्धति से अमूर्त काल में प्रवेश कर जाती है।

5 .17 पारिभाषिकशब्दावली

स्वप्न- परा विद्या का एक अंग है।

त्रिदोष- वात, पित्त एवं कफ।

पूर्वाभास- वह साधारण ज्ञान जो पहले ही प्राप्त हो जाय।

लग्न- जातक के जन्म समय में पूर्वी क्षितिज पर जो राशि उदित हो रही होती है उस कोण को लग्न कहते हैं।

उपनिषद- ब्रह्मविद्या के लिए गुरु के समीप बैठना।

5 .18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वप्न से आप क्या समझते हैं।
2. स्वप्न कितने प्रकार के होते हैं। वर्णन कीजिए।

3. लग्न में स्थित राशियों के माध्यम से दृष्ट स्वप्नों का वर्णन कीजिए।
4. नेत्ररोग सूचक स्वप्नों का वर्णन कीजिए।
5. स्वप्न के आधार पर विविधि रोगों का वर्णन कीजिए।

5 .19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रश्नमार्ग
2. स्वप्नविज्ञान
3. रामायण
4. चरकसंहिता
5. अष्टांगहृदय
6. बृहदारण्यक उपनिषद
7. स्वप्नकमलाकर
8. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार
9. स्वप्नप्रकाशिका
10. भारतीय स्वप्न शास्त्र

खण्ड- चतुर्थ
व्याधि विवेचन

इकाई 1- रोगों के प्रकार

इकाई की रूपरेखा -

1-1 प्रस्तावना
1-2 उद्देश्य
1-3 मुख्य भाग खण्ड एक
1-3-1 आधुनिक चिकित्सा (ऐलोपैथी) एवं आयुर्वेद के अनुसार रोगों का स्वरूप
1-3-2 उपखण्ड दो - रोगों का वर्गीकरण
1-3-3 उपखण्ड तीन - निज रोग
1-3-4 उपखण्ड चार - आगन्तुज रोग
1-3-4 अदृष्टनिमित्तजन्य रोग
1-4 सारांश
1-5 पारिभाषिक शब्दावली
1-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची
1-8 साहायक उपयोगी सामग्री
1-9 निबन्धात्मक प्रश्न

1-1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों! वैदिक दर्शनों के अनुसार आत्मा अमर है, इसका कभी नाश नहीं होता। केवल यह कर्मो के अनादि प्रवाह से अनेक योनियां बदलता रहता है। प्राणी के शरीर में रहते हुए आत्मा कर्मानुबंध के प्रभावश जन्म मृत्यु, सुख-दुःख, जरा एवं रोगों को प्राप्त करता है।

शरीर के किसि अंग में अथवा सम्पूर्ण शरीर में किसि प्रकार का विकार उत्पन्न होना रोग है। आयुर्वेद में रोगोत्पत्ति के दो कारण बताए गए है - कर्म प्रकोप तथा दोषप्रकोप। जन्म जन्मान्तर में किए गए कर्म के प्रकोप को रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण माना गया है। वात, पित्त तदा कफ के प्रकोप से उत्पन्न रोग दोषजन्य रोग है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र में ग्रह, राशि तथा भावों के आधार पर शरीर में उत्पन्न होने वाले समस्त रोगों का ज्ञान तथा रोगोत्पत्ति के समय का ज्ञान करनक के अनेक सूत्र प्रतिपादित किए गए हैं। ज्योतिषशास्त्र में रोगों का ज्ञान करने से पूर्व रोगों के प्रकार के विषय में जानना अत्यन्त आवश्यक है। फलित ग्रन्थों में रोगों के ज्ञान के साथ उनका वर्गीकरण भी प्राप्त होता है। सामान्य रूप से विचार किया जाए तो रोग दो प्रकार के होते है - शारीरिक तथा मानसिक। शरीर में किसि प्रकार का विकार उत्पन्न होना शारीरिक रोग तथा मन की स्वाभाविक स्थित में किसि प्रकार का परिवर्तन होना मानसिक रोग है। आयुर्वेद एवं ज्योतिष शास्त्र में रोगों को दो प्रकार का माना है - निज तथा आगन्तुक। निज रोग सहज रोग, जन्मजात रोग अथवा आनुवांशिक राग भी कहलाते है। निज रोगों के दो भेद है - (1) शारीरिक (2) मानसिक। शरीर के किसि अंग में होने वाले रोग शारीरिक तथा मन के रोग मानसिक रोग होते है। शारीरिक रोग के पुनः पांच भेद होते हैं।

आगन्तुज रोग भी दो प्रकार के है –

(1) दृष्ट निमित्तजन्य (जिनके कारण का प्रत्यक्ष पता रहता है)

(2) अदृष्ट निमित्तजन्य (जिनके कारण का प्रत्यक्षतः पता नहीं लगता, यथा भूत-प्रेतादि) दृष्ट निमित्तजन्य रोगों के दो भेद हैं - औपसर्गिक अभिघातज। अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों के भी दो प्रकार हैं - प्रेतदोष एवं प्रारब्ध। अतः इस ईकाई में आप वर्तमान चिकित्का (एलोपेथी), आयुर्वेद तथा ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रोगों के प्रकारों के विषय में विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

1-2 उद्देश्य -

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

1- रोग क्या है यह बता सकेंगे।

2- एलोपेथी के अनुसार रोगों का वर्गीकरण करने में समर्थ होंगे।

3- आयुर्वेद एवं ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रोगों का वर्गीकरण कर सकेंगे।

4- निज रोगों की व्याख्या करने में समर्थ होंगे।

5- आगन्तुक रोगों का विस्तार पूर्वक वर्णन कर सक्रेंगे।

1-3-1 आधुनिक चिकित्सा (ऐलोपैथी) एवं आयुर्वेद के अनुसार रोगों का स्वरूप

रोग अर्थात अस्वस्थ होना। प्रायः शरीर के पूर्णरूपेण कार्य करने में किसी प्रकार की कमी होना रोग कहलाता है। रोग को विकृति या विकार भी कहते हैं। अतः शरीर, इन्द्रिय और मन के प्राकृतिक (स्वाभाविक) रूप या क्रिया में विकृति होना रोग है। अथवा शरीर के किसी अंग/उपांग की संरचना का बदल जाना या उसके कार्य करने की क्षमता में कमी आना रोग कहलाता है।

भारतीय आयुर्वेदशास्त्र में भी रोग अथवा व्याधि को इस प्रकार परिभाषित किया है - चरक ने संक्षेप में रोग और आरोग्य का लक्षण यह लिखा है - वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों का सम मात्र (उचित प्रमाण) में होना ही आरोग्य और इनमें विषमता होना ही रोग है। सुश्रुत ने स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण प्रतिपादित करते हुएकहा है-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

जिससे सभी दोष सम मात्र में हों, अग्नि सम हो, धातु, मल और उनकी क्रियाएं भी सम (उचित रूप में) हों तथा जिसकी आत्मा, इंद्रिय और मन प्रसन्न (शुद्ध) हों उसे स्वस्थ समझना चाहिए। इसके विपरीत लक्षण हों तो अस्वस्थ समझना चाहिए। इसी बात की पुष्टि करते हुये आचार्य चरक ने लिखा है, फ़आरोग्यावस्था का नाम सुख है और विकार (रोगावस्था) का नाम दुख है।

'तद्दुःख संयोगा व्याधय उच्यन्ते'

अर्थात् दुःख के संयोग को व्याधि कहते हैं। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मनुष्य को शारीरिक अथवा मानसिक तौर पर जिनके संयोग से या जिनके कारण दुःख होता है उसे व्याधि अथवा रोग कहते हैं।

आयुर्वेद में रोग और अस्वस्था को नाड़ियों से प्राण के सहज प्रवाह या अवरूद्ध प्रवाह के परिप्रेक्ष्य में ही देखा जाता है। यदि किसी बिन्दु पर प्राण का प्रवाह बाधित होता है। तब वहां बीमारी होगी जब किसी बिन्दु पर शक्ति की अधिकता या कमी होगी तो उसके परिणाम स्वरूप की अस्वस्थता होगी। आचार्य सुश्रुत ने व्याधियों के चार प्रकार बतायें हैं -

(1) आगन्तुक (2) शारीरिक (3) मानसिक (4) स्वाभाविक

'ते चतुविधा आगन्तवः शारीरिक मानसा स्वाभाविकारश्च सन्ति''

उपर्युक्त विवेचनानुसार रोग चार प्रकार के बताये गये हैं लेकिन शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकारों से ही मुख्य माना गया है। इसकी विवेचना करते हुए शास्त्रें में लिखा है कि आगन्तुक रोग निज रोग दोनों ही त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) के विकृत होने पर भी होते है। आज की प्रसिद्ध आधुनिक चिकित्सा पद्धति ऐलोपैथी के अर्न्तगत मनुष्य शरीर का अध्ययन करने हेतु अलग-अलग तंत्रें में विभाजित किया जाता है। उदाहरणार्थ पाचन तंत्र, परिसंचरण तंत्र जनन तंत्र आदि। इसमें जीवाणु, विषाणुओं के आक्रमण सं जीवन शक्ति के शिथिल होने तथा रासायनिक पदार्थाे की न्यूनाधिकता के निमित्तीकरण को बताया गया है। क्रोमोपैथी या भारत में सूर्य रश्मि चिकित्सा के नाम से प्रसिद्ध चिकित्सा सिद्धान्त है कि मनुष्य शरीर में सूक्ष्म रूप में कुछ रंग स्थित होते हैं, इन रंगों के अनुपात में अन्तर होने से रोग उत्पन्न होते हैं एक्यूप्रेशर चिकित्सा बिन्दु पर दबाव डालकर रोग उपचार करती है।

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1- प्रायः शरीर के पूर्णरूपेण कार्य करने में किसी प्रकार की कमी होना --------------कहलाता है।

2-आगन्तुक रोग निज रोग दोनों ही -----------------के विकृत होने पर होते है।

3-क्रोमोपैथी भारत में -------------- चिकित्सा के नाम से प्रसिद्ध चिकित्सा सिद्धान्त है।

4-शारीरिक अथवा मानसिक तौर पर जिनके संयोग से या जिनके कारण----------होता है उसे व्याधि अथवा रोग कहते हैं।

5- तीनों दोषों का सम मात्र (उचित प्रमाण) में होना ही ----------- है।

1-3-2 रोगों का वर्गीकरण

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान (ऐलोपेथी) के अनुसार रोगों का वर्गीकरण इस प्रकार से है-

1- जीवों द्वारा उत्पन्न रोग- मानव के अनेक रोग विविध प्रकार के विषणाओं, जीवाणुओं, कवकों तथा परजीवीप्रोटोजोआ एवं कृमियों के संक्रमण के कारण होते है। इन रोगों को इसलिए संक्रमण रोग कहते हैं। इनमें या तो रोगोत्पादक जीव हमारे शरीर में प्रचुरोद्भवन द्वारा संख्या में बढ़कर ऊतकों की क्षति करते हैं, या ये शरीर को हानि पहुँचाने वाले विषैले पदार्थ मुक्त करते है। शरीर का सुरक्षा तन्त्र रोगोत्पादक जीवों और विषैले पदार्थों को नष्ट करने का प्रयास करता है, जिससे ज्वर, तथा संक्रमित ऊतकों में पीड़ा, सूजन, जलन आदि होने लगते हैं। इसे प्रवाह कहते हैं।

2- आनुवांशिक रोग- मनुष्य के अनेक रोग जीवों तथा गुणसूत्रें की गड़बड़ियों के कारण अर्थात् आनुवांशिक होते है। माता पिता के विकारों से उत्पन्न होता है जिसे अंग्रेजी मे हेरिडिटरी या आनुवांशिक रोग कहते हैं।

3- वातावरणीय कारणों से उत्पन्न रोग - वातावरण की कई भौतिक एवं रासायनिक दशाएँ मनुष्य में रोगोत्पादन का काम करती है। उदाहरणार्थ, सूर्य-प्रकाश की पराबैगनी किरणों, विविध प्रकार के आयनकारी विकिरणों आदि से चर्मरोग हो सकते हैं। इस प्रकार वायु, जल, मिट्टी आदि के रासायनिक प्रदूषण अत्याधिक गर्मी में पसीने के जरिए नमक की क्षति, सर्प तथा अन्य विषैले जन्तुओं के विष आदि के प्रभाव से घातक रोग हो जाते हैं।

5- आधुनिक जीवन शैली के दुष्प्रभाव से उत्पन्न रोग - स्वस्थ एवं निरोग रहने के लिए आवश्यक है कि पोषक तत्वों के रूप में हम वातावरण से जितनी ऊर्जा ग्रहण करें उतनी ऊर्जा का शारीरिक क्रियाओं में व्यय करें, अर्थात् ऊर्जा की आमद ऊर्जा की खपत के बराबर होनी चाहिए। वर्तमान भौतिकवादी जीवन शैली में एक ओरतो हमारी भोजन सामग्री में विभिन प्रकार के स्वादिष्ट परन्तु उच्च ऊर्जायुक्त व्यंजनों का समादेश हो गया है और दूसरी ओर जीवन यापन की विभिन्न प्रकार की सुविधाओं के कारण शारीरिक श्रम की आवश्यकता बहुत कम रह गई है। इस प्रकार ऊर्जा-ग्रहण, ऊर्जा-खपत से बढ़ता जा रहा है। ऊर्जा का यह असन्तुलनश् मानव के कई आधुनिक रोगों- मधुमेह, मानसिक तनाव, हृदयघात, मस्तिक घात, कैसर आदि के लिए जिम्मेवार है।

ज्योतिषशास्त्र में रोगों साङ्गोपाङ्गविवेचन करने से पूर्व उनके वर्गीकरण का विचार किया गया है। प्रश्नमार्ग नामक होराग्रन्थ के बारहवे अध्याय में शास्त्रन्तरों (आयुर्वेदीय ग्रन्थोंयथा-चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेलसंहिता, काश्यपसंहिता, अष्टाघ्गसंग्रह,

अष्टाघ्गहृदय, माधवनिदान आदि) में जो रोग बताये गए हैं उन रोगों का रोगों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है -

सन्ति प्रकारभेदाश्च रोगभेदनिरूपणे।

ते चाप्यत्र विलिख्यन्ते यथा शास्त्रन्तरोदिता।।

रोगास्तु द्विविधा ज्ञेया निजागन्तुविभेदतः।

निजाश्चागन्तुकाश्चापि प्रत्येकं द्विविधाः पुनः।

निजा शरीरचित्तोत्था दृष्टादृष्टनिमित्तजाः ।

तथैवागन्तुकाश्चैवं व्याधयः स्युश्चतुर्विधाः ।।

अर्थात् निज तथा आगन्तुज भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं, फिर इन दोनों में से प्रत्येक के दो-दो भेद होते हैं-

1- निज रोग (सहज रोग) - निज रोगों के दो भेद है -

(क) शारीरिक

(ख) मानसिक

(क) शारीरिक रोग - शारीरिक रोग पुनः पांच प्रकार के होते हैं -

1- वातज, (वातदोष से),

2- पित्तज (पित्तदोष से), कफज

3- (कफदोष से),

4- द्विदोषज - वतापित्तज (वात तथा पित्त के मिश्रण से), वातकफज (वात-कफ के मिश्रण से) तथा पित्तकफज (पित्त तथा कफ के मिश्रण से)।

5- त्रिदोषज (तीनों दोषो के मिश्रण से)

2- आगन्तुज रोग आगन्तुज रोग भी दो प्रकार के है -

(क) दृष्ट निमित्तजन्य (जिनके कारण का प्रत्यक्ष पता रहता है)

(ख) अदृष्ट निमित्तजन्य (जिनके कारण का प्रत्यक्षतः पता नहीं लगता, यथा भूत-प्रेतादि)

(क) दृष्ट निमित्तजन्य - दृष्ट निमित्तजन्य रोगों के दो भेद हैं - औपसर्गिक अभिघातज।

(ख) अदृष्टनिमित्तजन्य रोग - अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों के भी दो प्रकार हैं - प्रेतदोष एवं प्रारब्ध।

इस प्रकार प्रश्नमार्ग में रोगों का वर्गिकरण आयुर्वेदीय ग्रन्थों के आधार पर किया गया गया है। रोगों के उक्त वर्गीकरण को निम्न चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है -

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1- आचार्य सुश्रुत ने व्याधियों के कितने प्रकार बतायें हैं?
2- विषणाओं, जीवाणुओं, कवकों तथा परजीवीप्रोटोजोआ एवं कृमियों के संक्रमण के कारण जा रोग होते है, वे क्या कहलाते है?
3- आगन्तुज रोगों के कितने भेद हैं?
4- शारीरिक रोग केतने प्रकार के होते हैं
5- अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों के केतने प्रकार हैं।

1-3-3 निज (सहज) रोग -

निज रोग सहज रोग, जन्मजात रोग अथवा आनुवांशिक राग भी कहलाते है। चिकित्सकों के अनुसार आनुवंशिकी और रोग में बहुधा कोई न कोई संबंध रहता है। अनेक रोग दूषित वातावरण तथा परिस्थतियों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अधिकांश रोग रोग ऐसे होते हैं जिनका कारण माता-पिता से जन्मना प्राप्त कोई दोष होता है। एसे रोग आनुवंशिक रोग (जेनेटिक डिसऑर्डर) कहलाते हैं। जीवों में नर के शुक्राणु तथा स्त्री की अंडकोशिका के संयोग से संतान की उत्पत्ति होती है। शुक्राणु तथा अंडकोशिका दोनों में केंद्रकसूत्र रहते हैं। इन केंद्रकसूत्रें में स्थित जीन के स्वभावानुसार संतान के मानसिक तथा शारीरिक गुण और दोष निश्चित होते हैं। जीन में से एक या कुछ के दोषोत्पादक होने के कारण संतान में वे ही दोष उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरणार्थ_ बहुत से जन्मजात रोग अधिक आयु हो जाने पर ही प्रकट होते हैं। तथा कुछ आनुवंशिक रोग बच्चे में जन्म से ही होते हैं।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जन्मजात रोगों का कारण जातक के स्वयं के पूर्वार्जित कर्म तथा माता पिता के द्वारा किया गया कर्म होता है। ये रोग दो प्रकार के होते है - शारीरिक तथा मानसिक।

शारीरिक रोग - शरीर के आन्तरिक भाग में अथवा त्वचा में होने वाले रोग शारीरिक रोग कहलाते है। प्रश्नमार्ग के अनुसार शरीरिक रोगों का विचार निम्न प्रकार से किया जाता है -

वातपित्त कफोद्भूताः पृथक्संसर्गजास्तथा।

सन्निपाताश्चैते शरीरा कीर्तिता गदा।
शारीरिकरोगाः अष्टमेन तदीशेन तद्द्रष्ट्रा तद्गतेन वा।
विज्ञातव्याः स्युरेतेषां वीर्यतस्तत्कृता गदाः ।।

अर्थात् वातदोष से, पित्तदोष से , कफदोष से, वात-कफ के मिश्रण से, पित्त-कफ के मिश्रण से, पित्त-कफ के मिश्रण से तथा तीनों दोषों के मिश्रण (सन्निपात) से जो रोग रोग उत्पन्न होते हैं उन्हें शारीरिक रोग कहा जाता है (क्योकि ये शरीर में उत्पन्न दोषविकृति से पैदा होते हैं) शारीरिक रोगों का विचार अष्टमेश, अष्टम भाव, अष्टमद्रष्टा ग्रह तथा अष्टमस्थ ग्रह से होता है । इनमें जो बली ग्रह होता है वह अपना रोग उत्पन्न करता है। शारीरिक रोग निम्नलिखित है -

1- लूलापन - बाजु या हाथ का ना होना अथवा कट जाना लूलापन कहलाता है।

2- लंगडानपन (पङ्गुत्व) - पैर का ना होना अथवा कट जाना पंगुत्व कहलाता है।

3- कुबडापन - पीठ में कुब होना अर्थात् पीठ में असामान्य रूप से बडा गोलाकार उभार कुब कहलाता है।

4- हीनाङ्गयोग - शरीर के किसि अङ्गका ना होना अङ्गहीनता कहलाता है।

5- जन्मान्धता - किसि जातक का जन्म से ही अन्धा होना।

6- काणत्व योग - जन्म से किसि एक आंख का ना होना।

7- गूंगापन - जन्म से बोल ना पाना गूंगापन कहताला है।

8- बहिरापन - यह एक कर्णरोग है, जिसमें जातक बचपन से ही सुन नहीं सकता अथवा जन्म के पश्चात श्रवण शक्ति खो देता है।

9- नपुंसकता - सन्तानोत्पाद की शक्ति का ना होना। इस शक्ति से हीन पुरूष नपुंसक तथा महिला बन्ध्या कहलाती है।

10- जडता - बुद्धि की ना होना जडता कहलाता है। कुछ जातक जन्म से बुद्धिहीन हाते है।

11- रक्तरोग - रक्त से सम्बन्धित रोग जैसे रक्ताल्पता, रक्त कैन्सर।

12- चर्मरोग - शरीर से पपडी निकलना, रूसी आदि चर्म से सम्बन्धित रोग।

मानसिक रोग -

मन एवं मस्तिष्क से सम्बन्धि रोग मानसिक रोग कहलाते है। प्रश्नमार्ग में मानसिक रोगों के विषय कहा गया है -

मानसिकरोगाः क्रोधसाध्वसशोकादिवेगजातास्तु मानसाः ।

ज्ञेया रन्ध्रमनोनाथमिथो योगेक्षणादिभिः ।।

अर्थात् क्रोध, साध्वस, भय, शोक, आदि मानसिक वेगों को धारण करने से मानसिक रोग होते हैं। इन मनोरोगों का विचार अष्टमेश तथा चतुर्थेश की यति एवं दृष्टिसम्बन्धादि से करनी चाहिए। कुछ विद्वानों ने मनोनाश का अर्थ पञ्चमेश ग्रहण किया है जो कि समीचीन नही है, क्योंकि चतुर्थ स्थान हृदय का तथा पंचम स्थान मन का है अतः मानसिक रोगों में पञ्चम भाव की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। अतः अष्टमेश तथा पञ्चमेश के सम्बन्ध में विचार करना भी उचित है।

मानसिक रोगों में उन्माद एक प्रमुख रोग हैं। इस रोग के कारण बुद्धिभ्रमित हो जाती हैं, शारीरिक एवं मानसिक चेष्टाए असमान्य बोलचाल असम्बद्ध, अधिकांश कार्य उल्टे तथा इच्छएं तीव्रतर हो जाती हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि विषयों का चिन्तन करने से मनुष्य उन विषयों की ओर आसक्त हो जाता है। आसक्ति होने पर कामनाएं जागृत होती है। कामना से क्रोध उतपन्न होता है क्रोध से मतिभ्रम, मतिभ्रम से स्मरण शक्ति का नाश होता है। स्मरण शक्ति क्षीण होने से बुद्धि का विनाश होता है। अतः व्यर्थ विषयों का चिन्तन बुद्धि अथवा मन से सम्बन्धित रोगो का प्रमुख कारण है। भारतीय ज्योतिष तथा आयुर्वेद में उन्माद के प्रमुख कारण विषम भोजन, अपवित्र भोजन, उपवास, वैराग्य, भय, अकारण क्रोध, शत्रुकृत अभिचार, गुरुनिन्दा, दैवनिन्दा, तथा यज्ञादि कर्मारं् में त्रुटि ये दस कारण कहे गए हैं। उन्माद के पॉच भेद हैं- ''त्रिदोषजाः सन्निपाताः आगन्तवः इति स्मृता।'' अर्थात् वातजन्य, 2 पित्तजन्य, 3- कफजन्य, 4- सन्निपातजन्य 5, आगन्तुक। ये पांच प्रकार के उन्माद है। प्रश्नमार्ग में आयुर्वेदीय ग्रन्थों के आधार पर पांच प्रकार के उन्माद के लक्षण इस प्रकार कहे है -

हसनास्फोटनाक्रन्द गीतिनर्तनरोदनम्।
अस्थानमङ्गविक्षेपस्ताम्रा मृदकृशा तनु।।
जीर्णं बलं च वाग्बहवी वातोन्मादस्य लक्षणम्।।
संरम्भामर्षवैदग्ध्यमभिद्रवणतर्जनम्।
छायाशीतान्नतोयेच्छारोषः पीतोष्णदेहता।।
नारीविविक्तप्रियता निद्रारोचौ मनाग्वचः।
लालाछर्दिग्बले भुक्तो नखादिषु च शुक्लता च।।
संमिश्रणलक्षणो वर्जयं उन्मादः सन्निपातकः।
आगन्तुका ग्रहा ज्ञेयरस्ते तु देवासुरादयः।
अमर्त्या बलवाग्ज्ञानविक्रमादिसम्भवा।।

हंसना, चिल्लाना, रोना, बिलखना, गाना, नाचना, एक जगह पर रुकना शरीर के अंगों को पटकना, शरीर कर लाल होना, कमजोरी आना, अधिक बडबडाना ये वातजन्य उन्माद के लक्षण है। नेत्रे में लालिमा, असहिष्णुता, विदग्धता, अभिद्रवण, दूसरों को डराना धमकाना, शीतल वस्तुओं एवं शीतल जल की इच्छा, क्रोध करना तथा शरीर का पीला पडना ये पित्त जन्य उन्माद के लक्षण है। स्त्री तथा एकान्त प्रिय होना, निद्रा का अधिक आना, अरुचि, कम बोलना, मुख से लार निकलना, वमन, भोजन के बाद वेग का बढना, नेत्र जीह्वा आदि का सफेद पड जाना कफ जन्य उन्माद के लक्षण है। वात पित्त एवं कफजन्य उन्माद के जो लक्षण है, उनका मिला-जुला होना सन्निपातजन्य उन्माद के लक्षण है। देवता राक्षस द्दषि, गान्धर्व, पिशाच एवं पितरों के कोप से उतपन्न उन्माद को आगन्तुक उन्माद कहते है। आचार्य चरक के अनुसार देवताओं के प्रकोप के अतिरिक्त जन्मान्तर में किए गए अनुचित कर्मों के प्रभाव वश भी उन्माद रोग होता है। इस प्रकार उन्माद रोग का विचार किया जाता है।

लघूत्तरीय प्रश्न -

1- जिनका कारण माता-पिता से जन्मना प्राप्त कोई दोष होता है, वे रोग क्या कहलाते है?

2- तीनों दोषों के मिश्रण (सन्निपात) से जो रोग रोग उत्पन्न होते हैं, वे रोग क्या कहलाते है?

3- मनोरोगों का विचार किस भाव से करना करनी चाहिए।?

4- चर्मरोग कौन कौन से है?

5- आगन्तुक उन्माद क्या है?

1-3-4 आगन्तुज रोग -

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार आगन्तुज रोगों के दो भेद है - दृष्टनिमित्तजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य।

दृष्टनिमित्तजन्य - दृष्ट = देखना, निमित्त = कारण, जन्य = उत्पन्न। अर्थात जिन रोगों के कारणों को प्रत्यक्ष रूप से देखा और जाना जा सकता है, उन रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते है। प्रश्नमार्ग के अनुसार दूसरे के द्वारा दिया गया शाप अभिचार कर्म (मारण-मोहन-उच्चाटन स्तंभन-विद्वेषण तथा कृत्या आदि के तान्त्रिक प्रयोग), अभिघात (अस्त्र-शस्त्रदि से आक्रमण, लड़ाई-झगड़ा) आदि से होने वाले रोग दृष्टनिमित्तजन्य होते

हैं। इस प्रकार के रोगों का विचार षष्ठेश, षष्ठ भाव, षष्ठद्रष्टा, षष्ठारूढ (छठे भाव में बैठा हुआ) ग्रह इन चारों से करना चाहिए -

दृष्टनिमित्तजरोगाः शापाभिचारघातादिजाता दृष्टनिमित्तजाः।

ज्ञेयाः षष्ठतदीशाभ्यां तद्रष्ट्रा तद्गतेन वा ।।

दृष्टनिमित्तजन्य रोग निम्नलिखित है

1- महामारी - प्रकृति के प्रकोप से फैलने वाली बिमारियां महामारी कहलाती है। यह बिमारियों एक साथ किसि एक भूखण्ड में अथवा सम्पूर्ण विश्व में फैलती है तथा अचानक लागों में फैल कर विमार कर देती है। वर्तमान में कोरोनावयरस पूरे विश्व में जा फैल रहा है, यह भी एक महामारी है। ज्योतिष शास्त्र में इस प्रकार की महामारियों के योग प्राप्त होते है।

2- छूत के रोग - छूत की बिमारियां उन संचारी रोगों को कहते है, जो छूने से फैलती है। इस प्रकार की बिमारियों एक व्यक्ति से दूरे व्यक्ति में जाकर रोग उत्पन्न करती है। एसे रोगों में तपेदिक एवं कुछ रोग प्रमुख है।

कुष्ठ रोग एक संक्रामक बीमारी है। जिसके कारण त्वचा की कुरूपता, उस पर घाव और हाथ, पैर तथा त्वचा की तंत्रिकाएं खराब हो जाती हैं। कुष्ट रोग इसमें त्वचा पर पूरी तरह से छाले और चकत्ते फैल जाते हैं और त्वचा में संवेदनहीनता और मांसपेशियों में कमजोरी महसूस होती है। इसमें नाक, गुर्दे और पुरुष प्रजनन अंग अधिक प्रभावित होते हैं। आमतौर पर कुष्ठ रोग पैदा करने वाले बैक्टीरिया के संपर्क में आने के बाद लक्षण दिखने में लगभग 3 से 5 साल लगते हैं। कुछ लोगों में 20 साल बाद तक लक्षण दिखायी नहीं देते हैं। बैक्टीरिया के साथ संपर्क में आने और लक्षणों की उपस्थिति के बीच के समय को इंक्यूबेशन अवधि कहा जाता है। कुष्ठ रोग की लंबी इंक्यूबेशन अवधि के कारण डॉक्टरों के लिए यह पता करना बहुत मुश्किल है कि कुष्ठ रोग वाला व्यक्ति कब और कहां संक्रमित हुआ था। कुष्ठ रोग मुख्य रूप से त्वचा, मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी की बाहरी नसों को प्रभावित करता है। जिसे पेरीपराल तंत्रिका कहा जाता है। यह आंखें और नाक के अंदरूनी हिस्से को पतला करने वाले तंत्र को भी नुकसान पहुंचाता है। ज्योतिष शास्त्र में इस रोग के अनेक योग प्राप्त होते है।

3- दुर्घटना एवं घाव - वह आकस्मिक घटना जिसके कारण शरीर के किसि अंग मकी हानि हो जाती है, दुर्घटना कहलाती है। दुर्घटना का कारण पत्थर अस्त्र शस्त्र, वाहनादि होता है। ज्योतिष शास्त्र के जातक ग्रन्थों में दुर्घटनाओं के योग, दुर्घटना में

शरीर का कौन सा अंग प्रभावित होगा, किस वस्तु से चोट लगेगी तथा केवल चोट लगेगी अथवा मृत्यु हागी इन सभी विषयों से सम्बन्धित योग प्राप्त होते है।

4- चेचक - जातक के शरीर पर मसुर के दाने जैसे दाने निकलतक है तथा शरीर में ज्वर एवं खुजली रहती है। ज्योतिष में मसूरिका नामक रोग से इसके योग मिलते है।

5- क्षय रोग - क्षय रोग विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं के कारण होता है। क्षय रोग आमतौर पर फेफड़ों में फैलता हैए पर ये शरीर के अन्य भागों को प्रभावित कर सकता है। टीबी संक्रमण संक्रमित लोगों के खांसने, छींकए या सांस से फैलता है। क्षय रोग भी ज्योतिषशास्त्र के अनुसार एक आगन्तुक रोग है तथा इसके अनेक योगों का वर्णन प्राप्त होता है।

6- भय - पानी में डूबना, आग से जलना जहर खाना, जीव जन्तुओं के आघात से या दंश से होने वाली दुर्घटनाओं के योगो को ज्योतिषशास्त्र में भय योग कहा गया है।

7- हैजा रोग - इस रोग में जातक को उल्टी तथा दस्त होजाते है, तथा शरीर में पानी की कमी होती है।

8- शाप एवं अभिचार जन्य रोग - गुरू एवं देवता के शाप से होने वाले रोग शापजन्य रोग होते है। मरण मोहन उच्चाटन, स्तम्भन वशीकरणादि तान्त्रिक कियाओं को अभिचार कहते है। इनका प्रयोग करने पर जो रोग उत्पन्न होते हैं वो अभिचारजन्य रोग होते है।

सत्य असत्य प्रश्न

1- आगन्तुज रोगों के चार भेद है। (सत्य/असत्य)

2- मानसिक रोगों का विचार अष्टम भाव से करना चाहिए। (सत्य/असत्य)

3- प्रकृति के प्रकोप से फैलने वाली बिमारियां महामारी कहलाती है। है। (सत्य/असत्य)

4- क्षय रोग विभिन्न प्रकार के मच्छरों के कारण होता है (सत्य/असत्य)

5- गुरू एवं देवता के शाप से होने वाले रोग शापजन्य रोग होते है। (सत्य/असत्य)

1-3-5 अदृष्टनिमित्तजन्य रोग-

जैसा की आप जान गए होंगे कि आगन्तुक रोग दो प्रकार के हैं - दृष्टनिमित्तजन्य तथा अदृष्टनिमित्त जन्य। दृष्ट निमित्त जन्य रोगों के विषय में आपने पिछले उपखण्ड में

पढ़ा, इस उपखण्ड में अदृष्टमिनित्तजन्य रोगों के विषय में विचार किया जा रहा है। अदृष्टनिमित्तजन्य रोग दो प्रकार के है। - 1- शारीरिक तथा मानसिक।

अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक रोग-

प्रश्नमार्ग में अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों कों इस प्रकार परिभाषित किया गया है। -

रन्ध्रेशषष्ठेषसम्बन्धे शापाद्याः प्रबलाश्च ते।

अदृष्टहेतुजा ज्ञेया बाधकग्रहसम्भवा।।

अर्थात् पूर्व में कथित जो दृष्टनिमित्तज रोग हैं उनमें यदि षष्ठेश तथा अष्टमेश का सम्बन्ध हो तो वे रोग उग्र हो जाया करते हैं। जो अदृष्टनिमित्तज रोग हैं वे बाधक ग्रहों के कारण उत्पन्न होते हैं। वे पूर्व जन्म के प्रारब्ध से हुआ करते हैं । इनमें अनेक बार चिकित्सकों द्वारा किसी कारण का पता नहीं चल पाता है। अर्थ यह हुआ कि दृष्टनिमित्तजन्य रोगों का विकराल रूप ही अदृष्टनिमित्तजन्य रोग है। तथा यह रोग अदृष्टनिमित्त जन्य तब होता है। जब दृष्टनिमित्तजन्य रोग कारक ग्रहों के साथ षष्ठेष तथा अष्टमेश का सम्बन्ध हो जाए। इस प्रकार के रोगों के कारणों का पता नही चल पाता। यहां तक कि चिकित्सक भी अनेक अनेक यन्त्रें के माध्यम से परीक्षण करने के पश्चात इनके कारणों का पता नहीं लगा पाते। ज्योतिषीय ग्रन्थों में इन शरीरिक रोगों को भी दो वर्गों में विभक्त किया गया है -

1- अङ्गो में उत्पन्न होने वाले रोग।

2- धातु तथा दोष से उत्पन्न होने वाले रोग।

अङ्गो में उत्पन्न होने वाले रोग -

शिर से लेकर पैर तक शरीर के किसि निश्चित अंग से जिन रोगों का सम्बन्ध होता है, वें रोग अंगों के रोग कहलाते है। ये रोग निम्न लिखित है -

1- शिरोरोग- शिरशल, गंजापन, उन्माद, मिरगी एवं मूर्च्छा आदि।
2- नेत्ररोग- अन्धापन, कानापन, भेगापन, रतौंधी, आँख फटना।
3- कर्णरोग- बहिरापन, कम सुनाई देना, कान में दर्द, एवं कान कटना।
4- नासारोग- नाक कटना एवं अन्य नाक के रोग।
5- मुखरोग- गंगापन, हकलाहट, तुतलाहट, दन्तरोग, एवं तालुरोग ।
6- गलरोग- कण्ठ रोग, गण्डमाला एवं गलगण्ड आदि ।
7- हस्तरोग- लूलापन एवं हाथ कटना आदि ।
8- हृदय रोग- हृदयशूल, हत्कम्प एवं अन्य विकार है।

9- उदररोग- अजीर्ण, मन्दाग्नि, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, कृमि, पाण्डु, जलोदर एवं उदर शूल आदि।

10- गुप्तरोग - प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, उपदंश, शूक, वृषणवृद्धि, प्रदर, नपुंसकता एवं बध्यात्व (बाँझपन) आदि ।

11- गुदारोग- अर्श एवं भगन्दर आदि ।

12- चरण रोग- जंघा क्षति, श्लीपद, लंगड़ापन एवं पंगता आदि ।

धातु तथा दोष से उत्पन्न होने वाले रोग।

वात, पित्त तथा कफ इन तीनों के विकार से उत्पन्न रोग धातु रोग कहलाते है। यद्यपी पहले जिन रोगों की चर्चा की गई है, उन रोगों का सम्बन्ध भी वात पित्त एवं कफ से कोता है, परन्तु वे शरीर के किसि निश्चित अंग से सम्बन्धित होते है। अतः ज्योतिष में उन्हें अंगों के रोग कहा गया है। वात, पित्त तथा कफ के विकार से उत्पन्न रोग शरीर के किसि भी अंग में हो सकते है। ज्योतिषशास्त्र में इन रोगों के विषय में पर्याप्त विवेचन किया गया है। धातुरोग निम्न लिखित है -

वात रोग - वायु के विकार से उत्पन्न होने वाले रोग वातरोग कहलाते है। अमावात, पक्षाघात एवं शूल वातरोग के प्रमुख उदाहरण है।

अमावात - अमावात रोग से शरीर के जोडों में दर्द तथा सूतन रहती है।

पक्षाघात - शरीर के किसि एक एंग का निष्क्रिय होना अथवा संज्ञाहीन हो जाना पक्षाघात है। इसे लकवा भी कहते है।

शूल रोग - शरीर के किसि एक अंग में अकस्मात तीव्र दर्द होना शूल कहलाता है।

इसके अतिरिक्त अंगों में रूखापन और जकड़नए सुई के चुभने जैसा दर्दहड्डियों के जोड़ों में ढीलापनए हड्डियों का खिसकना और टूटनाए अंगों में कमजोरी महसूस होना एवं अंगों में कंपकपीए अंगों का ठंडा और सुन्न होनाए कब्ज़ए नाख़ून, दांतों और त्वचा का फीका पड़नाए मुंह का स्वाद कडवा होना भी वातरोग है।

पित्तरोग - पित्त में विकार उत्पन्न होने के कारण जो रोग होते हैं उन्हें पत्त रोग कहा जाता है। पित्त दोष "अग्नि" और "जल" इन दो तत्वों से मिलकर बना है। यह हमारे शरीर में बनने वाले हार्मोन और एंजाइम को नियंत्रित करता है। शरीर की गर्मी जैसे कि शरीर का तापमानए पाचक अग्नि जैसी चीजें पित्त द्वारा ही नियंत्रित होती हैं। पित्त का संतुलित अवस्था में होना अच्छी सेहत के लिए बहुत ज़रूरी है। शरीर में पेट और छोटी आंत में पित्त प्रमुखता से पाया जाता है। आयुर्वेद के अनसुारए पित्त असंतुलित होने पर

एक या दो नहीं बल्कि 40 प्रकार के रोग हो सकते हैं। इनमें रक्त पित्त, शीत पित्त, दाह, तृष्णा आदि प्रमुख है।

कफ रोग - कफ के विकार से उत्पन्न विकार कफ रोग है। आयुर्वेद के अनुसार कफ दोष "पृथ्वी" और "जल" इन दो तत्वों से मिलकर बना है। "पृथ्वी" के कारण कफ दोष में स्थिरता और भारीपन और "जल" के कारण तैलीय और चिकनाई वाले गुण होते हैं। यह दोष शरीर की मजबूती और इम्युनिटी क्षमता बढ़ाने में सहायक है। कफ दोष का शरीर में मुख्य स्थान पेट और छाती हैं। खांसी, श्लेष्मा, क्षय रोग हिक्का, स्वरभेदादि प्रमुख कफ रोग है।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक रोगो के कितने प्रकार है-

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पांच

2- निम्न लिखिन रोगें में कौन सा रोग शिरोरोग नहीं है -

(क) शिरशल (ख) बहरापन

(ग) उन्माद (घ) मिरगी एवं मूर्च्छा

3- आयुर्वेद के अनसुार पित्त असंतुलित होने पर कितने प्रकार के रोग हो सकते हैं -

(क) 20 (ख) 15

(ग) 40 (घ) 60

4- शरीर के किसि एक एंग का निष्क्रिय होना अथवा संज्ञाहीन हो जाना कहलाता है-

(क) शूल (ख) पाण्डुरोग

(ग) मिरगी (घ) पक्षाघात

5- शरीर के किसि एक अंग में अकस्मात तीव्र दर्द होना कहलाता है-

(क) शूल (ख) पाण्डुरोग

(ग) मिरगी (घ) पक्षाघात

1-4 सारांश

प्रिय पाठकों! प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात यह स्पष्ट होता है, कि रागों का अर्थ शरीर की विषम, विपरीत अथवा प्रतिकूल अवस्थाओं से है। भारतीय आयुर्वेदशास्त्र में भी रोग अथवा व्याधि को परिभाषित किया है कि जिसकी आत्मा, इंद्रिय और मन प्रसन्न (शुद्ध) हों उसे स्वस्थ समझना चाहिए। इसके विपरीत लक्षण हों तो अस्वस्थ समझना चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने व्याधियों के चार प्रकार बतायें हैं - (1) आगन्तुक (2) शारीरिक (3) मानसिक (4) स्वाभाविक। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार रोग जीवों द्वारा उत्पन्नए आनुवांशिक , वातावरणीय कारणों से उत्पन्नए आधुनिक जीवन शैली के दुष्प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। जिसका सविस्तार से वर्णन इस इकाई में किया गया है।

ज्योतिशास्त्र के अनुसार रोग का वर्गीकरण सहज तथा आगन्तुक। निज रोगों के दो प्रकार - शारीरिक, मानसिक तथा आगन्तुज रोग भी प्रकार के है -दृष्ट निमित्तजन्य, अदृष्ट निमित्तजन्य। रोगों के उक्त भेदों का उल्लेख इस इकाई में किया गया है।

1-4 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान की पूर्ति

1- रोग 2- त्रिदोष 3- सूर्य चिकित्सा 4- दुःख 5- आरोग्य

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1- चार 2- पाच 3-दो 4- संक्रमण रोग 5- दो

लघूत्तरीय प्रश्न -

1- आनुवांशिक रोग

2- उन्हें शारीरिक रोग कहा जाता है

3- अष्ट एवं चतुर्थ भाव से

4- शरीर से पपडी निकलना, रूसी आदि

5- देवता राक्षस ऋषि , गान्धर्व, पिशाच एवं पित्तरों के कोप से उत्पन्न उन्माद

सत्य असत्य प्रश्न

1- असत्य 2- असत्य 3ण् सत्य 4ण् असत्य 5ण् सत्य

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- (क) 2 (ख) 3 (ग) 4 (घ) 5 (क)

1-5 पारिभाषिक शब्दावली

आगन्तुक - आने वाला

चर्मरोग - शरीर के बाह्य भाग (चमडी) में होने वाले रोग

साङ्गोपाङ्ग - अंगों तथा उपांगों सहित

अष्टमद्रष्टा - अष्टम भाव को देखने वाला

असम्बद्ध - जो सम्बन्धित ना हो।

मतिभ्रम - बुद्धि का भ्रमित होने

विदग्धता - निपुणता

1-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1- जातकपारिजातः - दैवज्ञवैद्यनाथः, प- कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004।

1 जातकांलकारः - श्रीगणेशदैवज्ञविरचितः, डा- सुरेशचन्द्रमिश्रः, रंजन पब्लिकेशन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, संशोधित संस्करण-2009।

2 ताजिकनीलकण्ठी - नीलकण्ठविरचितः, केदारदतदतजोशी, मोतीलाल-बनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली - 110007

3 प्रश्नमार्गः - व्याख्याकारः - प्रो- शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन दिल्ली, 1978

4 फलदीपिका - मन्त्रेश्वरविरचितः, व्याख्याकारः - गोपेशकुमार ओझा, मोतीलालबनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली - 110007 द्वितीय संस्करण- 1975।

5 बृहज्जातकम् - वराहमिहिरविरचितः, भट्टोत्पलीटीकासहित पं सीतारामझा सावित्री ठाकुर प्रकाशन रथयात्र चौराहा वाराणसी सन् - 2006।

6 बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् - पाराशर, प- पद्मननाभ शर्मा,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

7 मानसागरी - व्याख्याकारः - श्रीमधुकान्तझा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण - 2045 ।

8 लघुजातकम् - वराहमिहिरविरचितः, टीकाकारः-कमलाकान्तपाण्डेयः चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 2009।

9 सारावली - कल्याणवर्माविरचितः, डा- सुरकान्त झा, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी प्रथम संस्करण वि- सं-- 2061 ।

1-8 साहायक उपयोगी सामग्री

1- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार - प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 1984

2- ग्रह और नक्षत्र - डा- बी-डी- अवस्थी, राजकमलप्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, फैजबाजार, दिल्ली ।

3- ज्योतिर्विज्ञानम् - श्रीधूलिपालः सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविश्वविद्यालय वाराणसी - 1861

4- लघुपाराशरीसमीक्षा - प्रो- शुकदेव चतुर्वेदी, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय-संस्कृतविद्यापीठ नव देहली -16 प्रथमसंस्करण -2005

1-9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान (ऐलोपेथी) के अनुसार रोगों का वर्गीकरण विस्तार से कीजिए।

2- मानसिक रोगों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

3- वात, पित्त तथा कफ के विकार से उत्पन्न रोग कौन कौन से हैं।

4- अङ्गों में उत्पन्न होने वाले रोगों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

5- दृष्टनिमित्तजन्य रोगों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

इकाई 2- सूर्यादिग्रहों के रोग

इकाई की रूपरेखा -

2-1 प्रस्तावना

2-2 उद्देश्य

2-3 मुख्य भाग खण्ड एक

2-3-1 उपखण्ड एक - रोगों की दृष्टि से ग्रहों का स्वरूप एवं प्रकृति।

2-3-2 उपखण्ड दो - ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले कारण।

2-3-3 उपखण्ड तीन - सूर्यादि ग्रहों के रोग।

2-4 सारांश

2-5 पारिभाषिक शब्दावली

2-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

2-8 साहायक उपयोगी सामग्री

2-9 निबन्धात्मक प्रश्न

2-1 प्रस्तावना-

ज्योतिषतथा आयुर्वेद के अनुसार जातक पूर्व जन्म में अर्जित किए गए अशुभ कर्मा के प्रभाव से रोगी बनता है। आचार्यो के अनुसार ज्योतिष शास्त्र पूर्व जन्म में किए गए शुभाशुभ कर्मो को उसी प्रकार प्रकाशित करता है, जैसे दीपक अन्धकार में स्थि पदार्थो को प्रकाशित करता है। अतः ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से जन्मकुण्डली के आधार पर मनुष्य को हाने वाले रोगों के सम्बन्ध में पूर्व जानकारी प्राप्त की जा सकती है। ज्योतिष में भाव राशि तथा ग्रह के आधार पर फलादेश किया जाता है। द्वादश भावों के द्वारा मानव जीवन के विविध पक्षों का विचार किया जाता है। इन भावों में रोगों का विचार प्रथम षष्ठ तथा अष्टम भाव से किया जाता है। जन्माङ्गमें रोग ज्ञान का द्वितीय साधन राशि है। बारह राशियां मानव शरीर के विविध अङ्गों का प्रतिनिधित्व करती है तथा रोगकारक भावों में राशि की स्थिति वश रोगों होने वाले रोगों के विषय में ज्ञान किया जाता है। ज्योतिष के आधार पर रोग ज्ञान का सर्वप्रमुख सोपान ग्रह हैं। रोगकारक भावों में तथा द्वादश राशियों में ग्रहों की स्थिति के अनुसार रोगों का विचार किया जाता है अतः रोग ज्ञान के लिए सर्वप्रथम ग्रहो का स्वरूप, प्रकृति आदि का ज्ञान, कौन सा ग्रह मानव शरीर के किस अंग का प्रतिनिधित्व करता है, ग्रह रोगकारक किन परिस्थितियों में होते है तथा रोगकारक होने पर कौन सा ग्रह किस रोग को उत्पन्न करता है, इन सब वषयों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। अतः इस इकाई में ग्रहों का स्वरूप, प्रकृति, ग्रहों के रोगकारक होने का कारण, ग्रहों से होने वाले रोगादि महत्वपूर्ण विषय पढेंगे।

2-2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

1-रोगों का ज्ञान करने की दृष्टि से ग्रहों का स्वरूप, प्रकृति आदि के विषय में जान सकेंगे।

2-ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले कारणों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

3-रोग कारक भावों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

4-नीच राशिगत, अस्तगत या निर्बलग्रह के कारण हाने वाले रोगों के विषय में जान सकेंगे।

5-ग्रह अनपे स्वरूप एवं प्रकृति के अनुसार कौन सा रोग देता है। इसके विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

2-3-1 रोगों की दृष्टि से ग्रहों का स्वरूप एवं प्रकृति

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार प्रत्येक छोटा अथवा बडा रोग, साध्य अथवा असाध्य रोग तथा शारीरिक एवं मानसिक रोग पूर्वार्जित कर्मो के फल के रूप में उत्पन्न होता है। सभी प्रकार के रोगों का ज्ञान जन्मकाल, प्रश्न काल एवं गोचर के ग्रहों की स्थिति के आधार पर किया जाता है। पूर्वार्जित कर्मां कि प्रभववश उत्पन्न रोगों का विचार

होराग्रन्थों में प्रतिपादित ग्रहो के योगों के आधार पर किया जाता है। ज्योतिषशास्त्र में शुभ एवं अशुभ फल के सूचक सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु ये 9 ग्रह माने गए हैं। ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार ग्रहों के स्वरूप, प्रकृति, गुण, धर्म, तत्त्व, शुभाशुभ स्थिति आदि के आधार पर किया जामा है। अतः सर्वप्रथम ग्रहों का स्वरूप प्रकृति इत्यादि के विषय में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। एतदर्थ सर्वप्रथम उक्त विषय का विचार किया जा रहा है।

❖ सूर्य का स्वरूप -

वैदिक मान्यता से सूर्य को देवता तथा साक्षात् भगवान् मानते हैं। सूर्य के अन्य नाम भानु, भास्कर, अर्क, तपन, पूषा, हेलि, मार्तण्ड और प्रभाकर हैं। ज्योतिष में इसका रूप, गुण, स्वभाव इस प्रकार कहा है - मधु पिंगल नेत्र, चतुरस्र देह, शुचि, पित्त प्रकृति, बुद्धिमान, थोड़े केश वाला, पुरुष ग्रह है। ऐसा मंत्रेश्वर ने कहा है। कल्याण वर्मा सूर्य को थोड़े बाल वाला, बुद्धिमान, सुन्दर स्वरूप, गम्भीर स्वर, सम शरीर, मधुपिगल नेत्र, शूर, प्रतापी, स्थिर बताया है। आत्मा, शक्ति, अग्नि, राज्य, होंठ, आँख, पिता, शासन, पूर्व दिशा, ताँबा आदि का विचार करने में कुण्डली में सूर्य की स्थिति देखी जाती है। इसका अर्थ है कि सूर्य इन विषय वस्तुओं का कारक है। यह सिंह राशि का स्वामी है। मेष राशि के 10 अंश पर परमोच्च और तुला के 10 अंश पर परम नीच स्थान पर होता है। यह चन्द्र, मंगल, गुरु को अपना मित्र, बुध को सम और शुक्र, शनि को शत्रु मानता है। मित्र ग्रहों की राशियों में स्थित होने पर मित्र गृही, शत्रु ग्रह की राशि में होने पर शत्रु गृही कहा जाता है। अधिकांश आचार्य इसे पाप ग्रह मानते हैं। मंत्रेश्वर और कल्याण वर्मा ने तथा होरा मकरन्दकार ने इसे पाप नहीं बल्कि कदापि नहीं है। यह लग्न, नवम और दशम भाव का स्थिर कारक है। इसका अर्थ है जब इन भावों का विचार करें तो सूर्य की स्थिति पर भी ध्यान देना चाहिये। यह मनुष्यों के (पुरुषों के दायें तथा स्त्रियों के बायें) नेत्र, आयु, अस्थि, सिर, हृदय, प्राण शत्तिफ़, मेदा, रक्त तथा पित्त को प्रभावित करता है । इसके बली होने पर हिîóयाँ मजबूत होती हैं तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है

❖ चन्द्रमा का स्वरूप

खगोल की दृष्टि से चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है, किन्तु ज्योतिष में इसे भी ग्रह माना गया है। चंद्रमा के अन्य नाम सोम, इन्दु, तारापति, शीतांशु, शशि, राकापति हैं। चन्द्रमा का शरीर स्थूल, युवा, कृश, श्वेत वर्ण, काले केश, सुन्दर नेत्र, रक्त की प्रधानता, जल तत्त्व, मृदुवाणी शरीर से भी मृदु (कोमल) है। यहाँ स्थूल और कृश दोनों ही चन्द्रमा को कहा है। इसका भाव है शुक्ल पक्ष का स्थूल तथा कृष्णपक्ष का कृश। मानसिक स्थिति का विचार करने के लिये चन्द्र को देखा जाता है। चन्द्रमा मन और माता का प्रमुख रूप से

कारक और स्त्री ग्रह है। हर जलीय पदार्थ का विचार चन्द्रमा से किया जाता है। चन्द्रमा चतुर्थ भाव का स्थिर कारक है। पृथ्वी के सबसे निकट होने के कारण चन्द्रमा का प्रभाव मनुष्य, वनस्पति, समुद्र और मौसम पर बहुत पड़ता है। भारतीय ज्योतिष में इसीलिये चन्द्रमा को लग्न के समान ही महत्व है। मनुष्य भौतिक शरीर, मन और आत्मा का समुच्चय है। लग्न से शरीर, चन्द्रमा से मन और सूर्य से आत्मा (आत्मिक बल) का विचार किया जाता है। चन्द्रमा के नक्षत्र के आधार पर ही राशि का नाम तथा विंशोत्तरी दशा का विचार किया जाता है। यह व्यत्तिफ़ के (पुरुष के वाम तथा स्त्री के दक्षिण) नेत्र, स्तन, वक्ष, फेफड़ा, मन, मस्तिष्क, उदर, मूत्रशय, रक्त, रस-धातु, शारीरिक पुष्टि एवं कफ को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर में रक्तसंचार ठीक बना रहता है, आरोग्य वृद्धि होती है तथा मनोबल उन्नत रहता है।

❖ मङ्गल का स्वरूप -

ग्रहों में इसे सेनापति का दर्जा दिया गया है। इसकी जाति क्षत्रिय और युवावस्था बताई गई है। यह शत्तिफ़ का प्रतीक है। नैसर्गिक पाप ग्रह माना गया है। इसका रंग लाल है। अग्नि तत्त्व का ग्रह है। वीरता, बल, शस्त्र, युद्ध सम्बन्धी विषय वस्तुओं का विचार मंगल से किया जाता है। यह सूर्य,चन्द्र, गुरु को मित्र, शुक्र, शनि को सम और बुध को शत्रु मानता है। इसकी अपनी राशि मेष और वृश्चिक है। मकर के 28 अंश पर परमोच्च और कर्क के 28 अश पर परम नीच होता है। दशम भाव में इसकी स्थिति उत्तम मानी गई है। दशम भाव में यह दिग्बली होता है। मेष, कर्क, सिंह, और धनु लग्न वालों को यह ग्रह शुभ भावों का स्वामी होने से शुभ फलदायक होता है। मंगल जहाँ बैठता है, वहाँ से चौथे, सातवें, आठवें स्थान पर दृष्टि देता है। यह शरीर में कपाल, कान, स्नायु, जननेन्द्रिय, मज्जा, पुट्ठों की पुष्टता, शारीरिक शक्ति, दाह, शोथ, धैर्य एवं पित्त को प्रभावित करता है । इसके बली होने पर व्यत्तिफ़ के शरीर में हड्डियां मजबूत होती हैं, प्रतिरोध शत्तिफ़ बढ़ती है तथा साहस एवं धैर्य की वृद्धि होती है।

❖ बुध का स्वरूप-

प्राचीन आचार्यों के अनुसार बुध का स्वरूप इस प्रकार है। - सुन्दर देह, हास्य, प्रिय, मधुर भाषी, हरित वर्ण, स्पष्ट वत्तफ़ा। इसे काल पुरुष की वाणी कहा गया है। यह पृथ्वी तत्त्व का ग्रह है और सभी ग्रहों में इसका पद युवराज का है। पांडित्य, वाक्शक्ति, कला निपुणता, गणित, लेखन कार्य का विचार बुध से किया जाता है। इसकी स्वराशि मिथुन और कन्या है। कन्या राशि के 15 अंश पर परमोच्च और मीन के 15 अंश पर परम नीच राशि में होता है। शुक्र और सूर्य को यह मित्र और मंगल, गुरु, शनि को सम मानता है। वृषभ, मिथुन, कन्या, तुला, धनु, मकर लग्न को शुभ फलदायक होता है। यह नपुंसक

ग्रह है। इसके बलवान् होने पर बालक का मस्तिष्क पूर्ण विकसित का है- उसका व्यक्तित्व आकर्षक, तथा प्रतिपादन शैली मोहक होती है।

❖ बृहस्पति का स्वरूप -

ज्योतिष में इसे देवगुरु, ब्राह्मणवर्ण, ज्ञान का कारक माना गयायह विशाल देह, पिंगल वर्ण के केश और नेत्र, कफ, प्रकृति, सर्व शास्त्रें का ज्ञाता, पुष्ट छाती, वाणी सिंह या शंख की भाँति बताई है। यह सतोगुणी, आकाश तत्त्व का पुरुष ग्रह है। गुरु की स्वराशि धनु और मीन है। कर्क राशि के पाँच अंश पर परमोच्च और मकर के पाँच अंश पर परम नीच होता है। यह सूर्य, चन्द्र, मंगल को मित्र बुध, शुक्र को शत्रु और शनि को सम मानता है। ज्ञान, सद्गुण, पुत्र, मंत्री, धन, सदाचरण, श्रुति, शास्त्र, यज्ञ, तपस्या, मंगल कार्य, तीर्थ यात्र, अध्ययन-अध्यापन, न्यायाधीश का विचार इस ग्रह से करते हैं। यह कण्डली में जिस भाव में है वहाँ से पाँचवें, सातवें, नवें भाव पर अपनी शुभ दृष्टि रखता है। शरीर में यह चर्बी, वीर्य, उदर, यकृत, रक्त-धमनी, त्रिदोष कथा कफ को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर पुष्ट होता है, विचार शक्तिफ़ अच्छी होती है तथा मन में शान्ति एवं मनोयोग बना रहता है।

❖ शुक्र का स्वरूप -

फलित ज्योतिष में गुरु के समान शुक्र को भी नैसर्गिक शुभ ग्रह मानते हैं। शुक्र दैत्य गुरु, ब्राह्मण वर्ण, राजस प्रकृति, स्त्री ग्रह है। यह जल तत्त्व है। इसका रंग मंत्रेश्वर ने दूर्वा (दूब) के समान कहा है। शरीरस्थ सप्त धातुओं में यह वीर्य का कारक है। संसार की जितनी आमोद-प्रमोद, भोग विलास की वस्तुएँ तथा कलाएँ हैं उन सबका यह ग्रह कारक ग्रह है। शुक्र की स्वराशि वृषभ और तुला है। मीन राशि के 27 अंश पर यह परमोच्च और कन्या के इतने ही अंशों पर परम नीच स्थिति में होता है। यह बुध, शनि को मित्र_ सूर्य, चन्द्र को शत्रु और मंगल-गुरु को सम मानता है। वृषभ, मिथुन, कन्या, तुला, मकर, कुम्भ लग्न वालों को शुभ फलदायक है। शरीर में यह जननेद्रिय, शुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक, स्वर, रस, गर्भाशय एवं संवेग शक्तिफ़ को प्रभावित करता है । इसके बली होने पर शरीर सुडौल होता है, मनुष्य की काम शक्तिफ़ बलवान होती है तथा वीर्य पुष्ट होता है।

❖ शनि का स्वरूप -

फलित ज्योतिष में शनि को मंद, असित, सूर्य पुत्र और शनैश्चर भी कहते हैं। राशि चक्र में यह मकर और कुम्भ राशि का स्वामी है। तुला राशि के 20 अंश पर परमोच्च होता है तथा मेष राशि के 20 अंश पर परम नीच अवस्था में होता है। सूर्य के 9 अंश निकट

पहुँचने पर अस्त हो जाता है। इसका वर्ण नीला माना गया है। पुष्य, अनुराधा, और उत्तरा भाद्रपद इसके नक्षत्र हैं। रत्न नीलम है। शनि की गणना नैसर्गिक पाप ग्रह में की जाती है। - दुबला, लम्बा, पीले नेत्र, बड़े दाँत, काला शरीर, आलसी, वात प्रकृति, मलिन वृद्ध जैसा, कठोर अंग वाला और लंगड़ा है। पुराणों में शनि को सूर्य पुत्र बताया है। यह बुध, शुक्र को मित्र_ सूर्य, चन्द्र, मंगल को शत्रु और गुरु को सम मानता है। दुःख और विपत्तियों का कारक है। इसके अतिरिक्त जड़ता, रोग, मरण, विकृतांग, दास कर्म, वृद्धावस्था, स्नायु, शिशिर ऋतु, नीच जाति, पाप कर्म, काले धान्य, तेल, लोहा, लोकतन्त्र, चमड़ा, ऊसर भूमि, वैज्ञानिक शोध के स्थान तथा अकाल भूकम्प आदि दैवी विपत्तियों का कारक है। शारीरिक रोगों में वायु विकार, कम्प, हड्डी एवं दाँत के रोग का कारक है। ज्योतिष शास्त्र में इसे सर्वाधिक अशुभ ग्रह माना गया है। शनि की तीसरी, सातवीं और दसवीं दृष्टि होती है जो कि अशुभ मानी गई है। जब अपनी राशि को अर्थात् मकर और कुम्भ को देखता है, तो वह दृष्टि अशुभ नहीं होती। यह शरीर में हड्डियों को जोड़, पैर, घुटने, वात संस्थान, स्नायु संस्थान, मज्जा तथा बात को प्रभावित करता है । इसके बलवान् होने पर स्नायुमण्डल पुष्ट तथा शरीर सुदृढ़ होता है।

❖ राहु एवं केतु का स्वरूप -

राहु-केतु आकाशीय पिण्ड नहीं हैं, बल्कि चन्द्रमा और क्रान्ति वृत्त के कटान बिन्दु हैं। पौराणिक कथाओं में इन्हें असुर बताया गया है। पराशर ने इन्हे तम अर्थात् अंधकारयक्त ग्रह कहा है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में छाया ग्रह होते हुए भी इनके प्रभाव को बहुत महत्त्व दिया गया है। अपना काई स्वरूप ना होने के कारण ये जिस-जिस भाव में बैठते हैं, पराशर के कथनानुसार उसी प्रकार का फल देते हैं। प्रायः यह ग्रह जिस भाव में बैठते हैं, उसको किसी न किसी रूप से बिगाड़ते हैं। इन ग्रहों की गणना भी नैसर्गिक पाप ग्रह में है,किन्तु पराशर के मत से केन्द्र के स्वामी के साथ या त्रिकोण के स्वामी के साथ केन्द्र में बैठने पर ये योग कारक अर्थात शुभफलदायक भी हो जाते हैं। यह शरीर में मस्तिष्क, रक्त, त्वचा एवं वात को प्रभावित करता है। इसके बलवान् होने पर शरीर में फुर्ती, ताजगी एवं चैतन्यता बनी रहती है।

❖ अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1- सूर्य की प्रकृति कौन सी है?

2- चन्द्र का वर्ण क्या है?

3- मंगल की नीच राशि कौन सी है?

4- बृहस्पति किस तत्त्व का स्वामी ह?

5- शनि के मि=स ग्रह कौन से है?

2-3-2 ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले कारण -

जैसा की आप पिछली इकाईयों में पढ़ चुके हैं, ग्रह जिस भाव तथा जिस राशि में जिस स्थिति (शुभाशुभ) में होता है, उसके अनुसार फल देता है। यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है। कि ग्रह रोगकारक कब होता है? जन्माङ्गके बारह भावों से मानव जीवन के विविध पक्षों का विचार किया जाता है, जिसमें रोगविचार भी है। कोई भी ग्रह जब रोगकारक भाव का प्रतिनिधित्व करता है, रोगभाव में स्थित होता है। लग्न में स्थित होता अथवा लग्नेश होता है, नीचराशि, शत्रु राशि में स्थित होता है, निर्बल होता है, क्रूर षष्ठ्यंश में होता है अथवा पाप ग्रहों से प्रभावित होता है तो वह रोगकारक हो जाता है। ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले इन कारणों के विषय में विस्तार से जानते है।

1- षष्ठ भाव रोग का प्रतिनिधि - द्वादशभावों में षष्ठ भाव रोग का प्रतिनिधि भाव है। षष्ठ भाव से जातक के शरीर में होने वाले रोग का विचार किया जाता है। अतः षष्ठ भाव का स्वामी रोग देने वाला होता है।

2- रोग भाव में स्थित ग्रह - षष्ठ भाव में स्थित ग्रह भी रोग को देने वाले होते है। इस भाव में स्थित ग्रह जिस राशि का स्वामी हो अथवा कारक हो, वह राशि तथा भाव काल पुरूष के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती हो, उस अंग में रोगोत्पत्ति की संभावना होती है।

3- षष्ठ भाव अथवा षष्ठेष से सम्बन्धित ग्रह - यह तो आप जान ही गए होंगे कि षष्ठ भाव रोग का भाव है। अतः इस भाव से तथा षष्ठेष से सम्बन्धित भाव तथा ग्रह से भी रोगों का विचार किया जाता है।

4- अष्टम एवं द्वादश भाव के प्रतिनिधित्व - अष्टम भाव से मृत्यु एवं द्वादश भाव से व्यय का विचार किया जाता है। से भी रोग के कारक भाव है। अतः इनके स्वामी भी रोग कारक होते है।

5- लग्न - ज्योतिष शास्त्र के अनुसार लग्न सामान्य रूप से सम्पूर्ण शरीर का प्रतिनिधित्व करता है। अतः लग्न का सम्बन्ध यदि किसि पाप ग्रह से हो अथवा लग्नेश पाप ग्रहों से पीडित हो तो रोग का कारण हो सकता है। गणेश दैवज्ञ ने जातकालंकार नामक ग्रन्थ में इस बात को इस प्रकार प्रमाणित किया है -

देहाधीशः सपापो व्ययरिपुगतश्चेन्नस्याद्देहसौख्यम्।

नस्याज्जन्तोर्निजर्क्षे व्ययरिपुमृतिपस्तत्फलस्यैव कर्ता।।

मूर्तौ चेत्क्रूरखेटास्तदनु तनुपति स्ववीयेण हीनो

नानातघ्काकुलः स्याद्व्रजति हि मनुजो व्याधिमाधिप्रकोपम्।।

अर्थात् यदि जन्मकाल में लग्न का स्वामी पाप ग्रहों से युक्त होकर व्यय षष्ठ अथवा व्यय भाव में हो तो जातक शारीरिक सुख प्राप्त नहीं होता। लग्न में यदि पाप ग्रह हो तथा लग्नेश बलहीन हो तों जातक अनेक प्रकार की चिन्ताओं से युक्त होकर नाना व्याधियों से पीडित होता है। इस प्रकार लग्न से भी व्याधियों का विचार किया जाता है।

जब कोई ग्रह लग्न में स्थित हो जाता है, तो वह अस्थि रक्त आदि धातुओं का प्रतिनिधित्व करता है। सूर्य यदि लग्न में हो तो वह अस्थि का प्रतिनिधित्व, चन्द्र रक्त का, मंगल मांस का, बुध त्वचा का, गुरु वसा का, शुक्र वीर्य का तथा शनि स्नायु तंत्र का प्रतिनिधित्व करता है। उक्त ग्रहों में से कोई भी ग्रह लग्न में हो तो वह अपनी धातु का प्रतिनिधित्व करता है तथा यदि वह पापग्रह से पीडित हो तो वह अपनी धातु से सम्बन्धित विकार उत्पन्न करता है।

6- नीच राशि, शत्रु राशि अथ्वा निर्बल ग्रहों के रोग -

जन्माङ्गमें यदि कोई ग्रह नीच राशि में हो, शत्रु राशि में हो अथवा निर्बल हो तो शरीर में अपने से सम्बन्धित धातु की आवश्यक्ता को पूर्ण न कर पाने के कारण वह ग्रह अपने तत्व के अभाव द्वारा कारकत्व के अनुसार अंग या धातु में विकार उत्पन्न कर रोग देता है। नीच राशि, शत्रु राशि अथवा निर्बल ग्रहों के रोग निम्नलिखित हैं -

नीच राशिगत, अस्र्तगत या निर्बलग्रह	रोग
सूर्य	पित्तज्वर, दाह, नेत्र, पीड़ा एवं हृदय दौर्बल्य
चन्द्र	कफज रोग, शीतज्वर, उन्माद एवं जलोदर
मंगल	जलना, गिरना, गुप्तरोग, शिरशूल
बुध	त्रिदोष, चर्म रोग, कर्णरोग
गुरु	सूजन (शोफ) नितम्ब एवं पैर में पीड़ा
शुक्र	वीर्य विकार, नेत्र रोग, मुख रोग एवं मूत्र रोग
शनि	दर्द, वायुविकार, स्नायुविकार

7- ग्रह की कूरषष्ठ्यंश में स्थिति -

प्रत्येक राशि में 60षष्ठ्यंश होते हैं तथा एक राशि में 30अंश होते हैं। अतः अंश या 30कला का एक षष्ठ्यंश होता है। इन60षष्ठ्यंश के स्वामियों के नाम से प्रकार हैं- 1-घोर, 2-राक्षस, 3-देव, 4-कुबेर, 5-यक्षोगण, 6-किन्नर7-कुलघ्न, 8-गरल, 9-अग्नि, 10-माया, 11-यम, 12-वरुण, 13-इन्द्र 14-कला, 15-सर्प, 16-अमृत, 17-चन्द्र, 18-मृदु, 19-कोमल, 20-पद्म, 21-विष्णु, 22-गुरु, 23-शिव, 24-देव, 25-आर्द्र, 26-कलिनाश, 27-क्षितीश, 28-कमलाकर, 29-मन्दात्मज, 30-मृत्युकर, 31-काल, 32-दावाग्नि, 33-घोरा, 34-अधम, 35-कण्टक- 36-सुधा, 37-अमृत, 38-पूर्णचन्द्र, 39-विषदग्ध, 40-कुलनाश, 41-मख्य, 42-वंशक्षय, 43-उत्पातक, 44-काल, 45-सौम्य 46-मृदुष्ट्र 47-सुशीतल, 48-दंष्टाकराल, 49-इन्दुमुख, 50-प्रवीण, 51-कालाग्नि, 52-दण्डायुध 53-निर्मल, 54-शभाकर, 55-अशोधन, 56-शीतल, 57-सुधा समुद्र, 58-भ्रमण एवं 59-इन्दुरेखा। विषम राशियों में षष्ठ्यंश के स्वामियों की गणना घोर से इन्दुरेखा तक यथा क्रमेण तथा समग्न राशियों में षष्ठ्यंश के स्वामियों की इन्दुरेखा से घोर पर्यन्त व्युत्क्रम से की जाती है। उक्त षष्ठ्यंशों के स्वामियों में से जिनके नाम शुभ हैं, उन्हें शुभ षष्ठ्यंश तथा जिनके नाम क्रूर हैं उन्हें क्रूरषष्ठ्यंश कहते हैं। इस क्रूरषष्टयंश में स्थित ग्रह की दशा में रोग होते हैं। अतः क्रूरषष्ठ्यंश में स्थित ग्रह रोगकारक कहलाता है।

8- मारक ग्रह -

महर्षि पाराशर के अनुसार अष्टम एवं तृतीय स्थान आयु के स्थान होते हैं। इन दोनों के यथाक्रमेण व्यय स्थान होने के कारण सप्तम एवं द्वितीय स्थान मारक-स्थान कहलाते हैं। प्रायः सभी आचार्यों ने द्वितीय एवं सप्तम स्थान के स्वामी को मारक-ग्रह माना है। महर्षि जैमिनी ने छिद्र, रुद्र एवं शूल ग्रहों की परिकल्पना की है, जो मृत्यु के कारण होते हैं। ये मारक-ग्रह अपनी अन्तर्दशा में आयुर्दाय की समाप्ति के समय मृत्यु देते हैं। क्योंकि मृत्यु को एक महारोग माना गया है अतः मारक एवं बालारिष्ट कारक ग्रहों को रोगदायक माना गया है। भारतीय ज्योतिष के अनुसार सूर्यादि ग्रहों में से कोई मारक या अरिष्टकारक होने पर निम्नलिखित रोगों से मृत्यु देता है।

मारकग्रह	रोग
सूर्य	अग्निदाह, उष्णज्वर, पित्त क्षेभ एवं ब्रेन हैमरेज।
चन्द्र	विषूचिका, जलोदर, प्ल्यूरेसी या अन्य बिमारी जिसमें कहीं जल इकट्ठा हो जावे, तपेदिक एवं निरक्तचाप।

मंगल जलना, दुर्घटना, रक्त विकार, बवासीर, सूजाव अतिसार, संग्रहणी, अधिक रक्त चाप एवं बिजली का करेण्ट लगना। यह आपरेशन के समय अधिक रक्त निकल जाने या रक्त की कमी से तुरन्त मृत्यु देता है

बुध पाण्डु, भ्रान्ति, यकृतरोग एवं त्रिदोष।

गुरु फविकार, किन्तु मृत्यु के समय कष्ट नहीं होता।

शुक्र वीर्य विकार, प्रमेह, मधुमेह एवं अन्य मूत्र रोग

शनि सन्निपात, वातज रोग (लकवा, फालिस आदि) एवं कैंसर।

राहु कुष्ठ, छूत रोग, विष तथा कीटाणु रोग एवं सर्पदंश।

केतु आकस्मिक दुर्घटना (मोटर, रेल, वायुयान, विस्फोट गिरना या कत्ल कर देना ।) सेप्टिक, हृदय गति रुकना तथा विषाक्त किटाणुओं के शरीर में

प्रवेश होने से उत्पन्न रोग।

लघूत्तरीय प्रश्न

1- द्वादशभावों में भाव रोग के प्रतिनिधि भाव कौन कौन से है।

2- ज्योतिष शास्त्र के अनुसार लग्न शरीर के किस अंग का प्रतिनिधित्व करता है।

3- चन्द्र यदि नीच राशिगत, अस्तंगत या निर्बल हो तो किन रोगों की सम्भावना होती है।

4- जन्माङ्गमें मारक स्थान कौन कौन से है।

5- गुरू यदि मारेकेश हो तो कौन -कौन से रोग होते है।

2-3-3 सूर्यादि ग्रहों के रोग -

उक्त विवेचन से आप जान गए होंगे कि ग्रहों के रोगकारक होने का कारण उसका षष्ठ भाव का स्वामी अथवा षष्ठभाव के साथ सम्बन्ध होना, लग्न अथवा लग्नेश का पीडित होना, ग्रहों का नीच राशिगत होना, क्रूरषष्ठ्यंश में होना तथा मारकत्व आदि होना है। ग्रह उक्त अवस्थाओं में जो रोग देते हैं, उनका विवरण निम्नलिखित है -

❖ **सूर्य के रोग -**

पित्तप्रकोप, उष्णता, ज्वर, तापमान का कुछ अधिक होना या अधिक गर्मी का अनुभव होना, अपस्मार (मिरगीरोग), हृद्रोग (हृदय की धड़कन बढ़ना, घटना, अनियमितता, हृदय का दर्द, रक्तचाप, हृदयाघात, घबराहट आदि), क्रोड (पेट) की बीमारियाँ, नेत्ररोग, शत्रुकृत पीडा, त्वचा के रोग, अस्थिक्षीणता (फक्करोग, अस्थिमृदुता आदि), चौपायों से पीड़ा, कुष्ठरोग, अग्नि, बिजली, बन्दूक तथा जैविक, वानस्पतिक एवं रासायनिक विष से पीड़ा, चोरों-डाकुओं से पीड़ा, शासकवर्ग से कष्ट, धर्मभीरुता, दैव, सर्प, भगवान् शंकर एवं भूत-प्रेत आदि का भय यह सब सूर्य के रोग हैं।

❖ चन्द्रमा के रोग

चन्द्र के दोष से उत्पन्न होने वाले दोष निम्नलिखित है - निद्रा की अधिकता, आलस्य की अधिकता, कफजन्य रोग (खाँसी, श्वास, जुकामनिमोनियां आदि), अतिसार (दस्त-पेचिश आदि), फोड़े-फंसी होना, शीतज्वर (मलेरिया, बुखार), सींगवाले पशुओं से कष्ट, जलचर प्राणियों से होने वाले कष्ट, अग्निमांद्य (क्लेचमचेपं, ल्दकपहमेजपवद), कृशता (शरीर का दुबला होना), स्त्रियों को या स्त्रियों से होने वाले कष्ट या रोग, कामला-पाण्डु (।दमउपं, रंनदकपबम), चित्त की अशान्ति (चंचलता एवं मानसिक रोग), रक्तविकार (रक्तफ़ाल्पता, हीमोग्लोबिन की कमी, लोहे की कमी, रक्तहीनता आदि), जल से भय लगना, बालग्रहों के विकार (पूतना आदि), दर्गादि देवियों द्वारा उत्पन्न रोग, किन्नरों एवं यक्षों से कष्ट, धर्मजन्य तथा दैवजन्य व्याधियाँ- ये सब चन्द्रमा के रोग हैं दैवव्याधियाँ-दैव का अर्थ भाग्य या पूर्वजन्म का प्रारब्ध होता है अतः जो कर्मज व्याधियाँ हैं उन्हें ही दैवव्यापत् कहते हैं।

❖ भौम के रोग -

मंगल से होने वाले रोग निम्नलिखित है -

1- तृष्णा = बहुत अधिक प्यास लगना।

2- असृक्कोप-रक्तप्रकोप, रक्तपित्त, नाक-मुख आदि से खून गिरना।

3- पित्तज्वर-पित्त के प्रकोप से होने वाला बुखार।

4- अनलपीड़ा-अग्नि, बिजली आदि से होने वाली पीड़ा।

5- विषपीड़ा - स्थावर-जंगमादि विषों से पीड़ा होना।

6- अस्त्रर्ति - हथियार से चोट तथा घाव लगना।

7- कुष्ठ - अनेक प्रकार के कुष्ठरोग।

8- अक्षिरोग - नेत्रें में होने वाली तमाम बीमारियाँ।

9- गुल्म - पेटगैस, बायगोला तथा टड्ढूमर आदि।

10- अपस्मार - मृगी के दौरे।

11- मज्जाविहति - अस्थियों के भीतर मज्जा होती है, वह रक्त के निर्माण में सहयोग करती है। मज्जा की कमी से रक्त-निर्माण भी कम होता है।

12- परुषता - शरीर में कठोरता आ जाती है। ऊतकों का लचीलापन समाप्त हो जाता है।

13- पामिका - खुजली, अकौंता, छाजन, एक्जिमा आदि।

14- देहभग्गता - शरीर के अंगों का कटना, फटना तथा टूट जाना देहभंग कहलाता है।

15- भूप (शासक वर्ग) - पुलिस आदि से कष्ट।

16- शत्रुजन्य पीड़ा।

17- स्तेय पीड़ा = चोरों से भय।

18- भाइयों, पुत्रें तथा वैरियों से लड़ाई छिड़ना।

19- राक्षसों (आतंकवादियों) से पीड़ा।

20- घोर ग्रह (दुष्टात्माओं) से पीड़ा - ये सब मंगल से उत्पन्न होते हैं

❖ बुध के रोग

बुध के पीडित होने के कारण निम्नलिखित रोग होते हैं -

1- भ्रान्ति- इस शब्द के अन्तर्गत सभी प्रकार के मनोरोग, मनोदैहिक रोग आ जाते हैं। जैसे-मूढ़ता, शोकोन्माद, एकोन्माद, चरित्रेन्माद, चौर्योन्माद, मद्यपानोन्माद, प्रज्वालनोन्माद परवधोन्माद, आत्महत्योन्माद, कामोन्माद, विस्मृति, प्रलापोन्माद, नाड़ीदौर्बल्य, गदोद्वेग, मनोविदलता, विभय, अवस्तुबोधन, व्यामोह, उत्साह-विषादमनोविकृति, विषाद या अवसाद, विषादात्मक, स्थिरव्यामोह, अभावोन्माद, निद्राचार आदि अनेक मनोभाव तथा रोग लक्षण आ जाते है।

2- दुर्वचन-गाली देना, निन्दा करना, झूठा आरोप लगाना, दोषारोपण करना, लिखित या मौखिक बुराई या आलोचना करना।

3- दृगामय - आँखों की सभी प्रकार की बीमारियाँ।

4- गलघ्राणामयादि - गला, कान, नाक आदि से सम्बन्धित रोग।

5- ज्वर - सम्पूर्ण प्रकार के बुखार।

6- पित्त-श्लेष्म-समीरण - तीनों दोषों के मिश्रण वाले रोग।

7- विषजन्य रोग ।

8- त्वग्दोष - त्वचा के सम्पूर्ण रोग।

9- पाण्डुरोग - विशेषरूप से बौद्धिक चिन्तन से उत्पन्न।

10- दुःस्वप्न = डरावने एवं भयानक सपने देखना।

11- विचर्चिका = चिन्ताजन्य अकौंता।

12- निपतनम् (मानसिक अवसाद आदि) या अचानक गिर जाना।

13- पारुष्यबन्ध - वाणी आदि में कठोरता, कारावास का भय।

14- श्रम - थकावट होना, दुर्बलता का अनुभव करना।

15- गन्धर्वक्षितिपीड़ा = गाने-बजाने वालों से कष्ट।

16- हर्म्यवासि -हिजड़ों से कष्ट होना।

17- पक्षीपीड़ा-पक्षियों से होने वाला कष्ट। ये सब बुध के रोग हैं

❖ देवगुरु बृहस्पति कृत रोग

गुल्म, आन्त्रज्वर , शोक, मोह (ज्ञान का अभाव), कफरोग, कानों की बीमारियाँ, बीस प्रकार के प्रमेह, देवस्व के दरुपयोग से होने वाले रोग, ब्राह्मणों के शाप द्वारा उत्पन्न रोग, किन्नरों, यक्षों तथा नागों के प्रकोप से उत्पन्न रोग, विद्याधरों (ऐन्द्रजालिक = जादूगरों) के प्रकोप से उत्पन्न रोग स्वयं विष्णु भगवान् गुरु के माध्यम से तथा बुध के माध्यम से रोग उत्पन्न करते हैं।

❖ शुक्रजन्यरोगाः

पाण्डुरोग, श्लेष्मरोग (कफविकार), वातरोग, नेत्ररोग, तन्द्रा (सुस्ती), श्रम (थकावट), गुप्तरोग (योनि, लिंग, गर्भाशय, डिम्बग्रन्थियों, डिम्बप्रणालियों, शक्र , मूत्रकृच्छ्र, कामरोग = यौनरोग, शुक्लस्रुति (एलर्जी इत्यादि), स्त्रीकष्ट या स्त्रियों के संसर्ग से होने

वाले कष्ट, कृषिहानि, देहकान्ति की हानि, शोफ (शरीर में पानी भरकर सूजन आ जाना)योगिनी, यक्षी, मातृगण इनके कोप से उत्पन्न कष्ट, मित्र-बिछोह जन्य कष्ट-इन सबको शुक्र ग्रह सूचित करता है।

❖ शनिजन्य रोग -

शनि जन्य रोग निम्नलिखित है -

1- वातश्लेष्म विकार-वात तथा कफ के प्रकोप से होने वाले रोग।

2- पादविहती- पैरों का निष्क्रिय हो जाना, टूट जाना, कट जाना, पक्षाघात हो जाना, ऊरुस्तम्भ होना आदि।

3- अकल्पित विपत्तियों को आपत्ति कहते हैं।

4- तन्द्री, निद्रा की अधिकता = अधिक सोना, नींद में रहना।

5- श्रम - शारीरिक थकानएवं मानसिक थकान।

6- भ्रांति - मानसिक बीमारियाँ तथा परेशानियाँ।

7- कुक्षिरुक् - पेट के विकार, कब्ज, अतिसार, अफरा आदि।

8- अन्तरुष्ण - शरीर के भीतरी भागों (आशयों में) जलन होना।

9- भूतकध्वंस - नौकरों की हानि, उनके द्वारा कष्ट की प्राप्ति होना।

10- पश्वाहति - भैंस आदि पशुओं का मर जाना।

11- भार्याविपत्ति - दुःस्थानगत शनि से पत्नी को कष्ट, रोग आदि होता है।

12- पत्रविपत्ति - अष्टम भावगत शनि की पूर्ण दृष्टि पुत्रभाव पर होने से पुत्र को कष्ट प्राप्त होता है।

13- अंगविहति-शरीर का अंग भंग होना या किसी अंग का नष्ट हो जाना।जैसे वाणी का अवरोध, कानों में बहिरापन।

14- नाक के सूंघने की शत्तिफ़ में कमी होना, दृष्टि शत्तिफ़ कम होना या त्वचा का सुन्न हो जानाकृये सब अघ्गविहति के लक्षण हैं।

15- हत्ताप - मन का खिन्न हो जाना, विषादग्रस्त हो जाना।

16- वृक्ष से आघात - शनि के विकृत होने पर पेड़ से गिरना या पेड़ का अपने ऊपर गिर जाना होता है। कभी-कभी आँधी आदि के कारण पेड़ों के बाग-बगीचे ही नष्ट हो जाते हैं।

17- अश्मक्षति- इसका अर्थ जातक को पत्थर या ढेले से चोट पहुँचना होता है।

18- कश्मल गणों से पीड़ा -दुष्टात्माओं को कश्मल गण कहते हैं। इनसे पीड़ा पहुँचती है।

19- पिशाचादि पीड़ा - भूत-प्रेतादि से कष्ट होता है। ये सब शनि से होने वाले रोगादि हैं।

❖ राहु-केतुजन्य रोग -

राहु के कारण शरीरताप, कुष्ठ (चर्मरोग), असाध्य एवं रहस्यात्मक रोग जिसका निदान न हो सके, विषम विकार, पैरों में कष्ट, पिशाच, सर्प आदि से कष्ट।अकारण तथा अवास्तविक भय (राहु से अनेक प्रकार के विभय = फोबिया होते हैं) स्त्री तथा पुत्रें पर आकस्मिक विपत्तियाँ आती हैं । केतु से ब्राह्मण एवं क्षत्रिय से विरोध, शत्रुओं से भय, प्रेतबाधा तथा विषभय होता हैं । गुलिक से सर्पों से पीड़ा तथा प्रदूषण एवं गन्दगी से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं।

❖ बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- ग्रहों के रोगकारक होने का कारण उसका -

(क) षष्ठ भाव से सम्बन्ध (ख) नवम भाव से सम्बन्ध

(ग) चतुर्थ भाव से सम्बन्ध (घ) तृतीय भाव से सम्बन्ध

2- गुप्त रोगों का सम्बन्ध हैं -

(क) शनि से (ख) शुक्र से

(ग) केतु से (घ) मंगल से

3- मानसिक रोगों का सम्बन्ध है-

(क) शनि से (ख) शुक्र से

(ग) केतु से (घ) चन्द्र से

4- निम्न रोगों में से किसका सम्बन्ध सूर्य से नहीं है -

(क) पित्तप्रकोप (ख) मनोरोग

(ग) अपस्मार (घ) हृद्रोग

5- ब्राह्मणों के शाप द्वारा उत्पन्न रोगों का ज्ञान होता है-

(क) शनि से (ख) शुक्र से

(ग) बृहस्पति से (घ) चन्द्र से

2-4 सारांश

ज्योतिषशास्त्र के द्वारा रोगों का ज्ञान ग्रह राशि तथा भावों के माध्यम से किया जाता है। बारह भावों में षष्ठ भाव मानव शरीर में रोगों का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार बारह राशियां मानव शरीर के विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करती है तथा राशियों में ग्रहों की स्थितिवश रोंगों की जानकारी प्राप्त की जाती है। रोग ज्ञान के लिए सर्वप्रथम रागों की दृष्टि से ग्रहों के स्वरूप प्रकृति आदि का ज्ञान आवश्यक है। क्योंकि ग्रह अपनी प्रकृति के अनुसर रोग देता है। जैसे सूर्य मधु पिंगल नेत्र, चतुरस्र देह, शुचि, पित्त प्रकृति, बुद्धिमान, थोड़े केश वाला, पुरुष ग्रह है। अतः सूर्य नेत्र विकार पित्त से सम्बन्धित रोग आदि रोगें का कारक है। चन्द्र स्थूल, युवा, कृश, श्वेत वर्ण, काले केश, सुन्दर नेत्र, रक्त की प्रधानता, जल तत्त्व, मृदुवाणी शरीर से भी मृदु है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार ग्रह विशेष परिस्थितियों में रोगकारक होते हैं। षष्ठ भाव रोग का प्रतिनिधि भाव है। अतः षष्ठ भाव से सम्बन्धित सभी ग्रह तथा रोग भाव में स्थित ग्रह रोगकारक होते है लग्न से भी रोग का विचार किया जाता है। अतः लग्न अथवा लग्नेश भी यदि पीडित हो तो रोग का कारण होता है। अष्टम एवं द्वादश भाव के प्रतिनिधि ग्रह भी रोगकारक हाते है क्योंकि अष्टम स्थान मृत्यु का तथा द्वादश व्यय स्थान है। इस प्रकार रोगकारक ग्रहों से होने वाले रोगों का ज्ञान विस्तार से आप ने इस इकाई में किया।

2-5 पारिभाषिक शब्दावली

असाध्य - जिसका उपचार ना किया जा सके।

पूर्वार्जित - पूर्व में कमाया हुआ

चतुरस - चतुर्भुज वर्ग

मधुपिगल - मधु के समाम पीला

शीतज्वर - ठंड के कारण होने वाला बुखार

पाण्डुरोग - पीलिया

1-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघूत्तरीय प्रश्न

1- पित्त 2- वात 3- कर्क4- बुध "शुक्र 5- आकाश

2.6 लघूत्तरीय प्रश्न

1- प्रथम, 'षष्ट , अष्टम तथा द्वादश।

2- सामान्य रूप सम्पूर्ण शरीर का

3- कफज रोग, शीतज्वर, उन्माद एवं जलोदर रोग।

4- सप्तम तथा द्वितीय भाव

5- कफविकार, किन्तु मृत्यु के समय कष्ट नहीं होता।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1-(क) 2- (ख) 3- (घ) 4- (ख) 5- (ग)

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1- जातकपारिजातः - दैवज्ञवैद्यनाथ, प- कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004।

2- जातकांलकारः - श्रीगणेशदैवज्ञविरचित, डा- सुरेशचन्द्रमिश्रः, रंजन पब्लिकेशन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, संशोधित संस्करण-2009।

3- ताजिकनीलकण्ठी - नीलकण्ठविरचित, केदारदतदतजोशी, मोतीलाल-बनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली - 110007

4- प्रश्नमार्गः - व्याख्याकार - प्रो- शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन दिल्ली।

5- फलदीपिका - मन्त्रेश्वरविरचित, व्याख्याकार - गोपेशकुमार ओझा, मोतीलालबनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली - 110007 द्वितीय संस्करण- 1975।

6- बृहज्जातकम् - वराहमिहिरविरचित, भट्टोत्पलीटीकासहित पं सीतारामझा सावित्री ठाकुर प्रकाशन रथयात्र चौराहा वाराणसी सन् - 2006।

7- बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् - पाराशर, प- पद्मननाभ शर्मा,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

8- मानसागरी - व्याख्याकार - श्रीमधुकान्तझा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण - 2045।

9- लघुजातकम् - वराहमिहिरविरचित, टीकाकारः-कमलाकान्तपाण्डेयः चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 2009।

10- सारावली - कल्याणवर्माविरचित, डा- सुरकान्त झा, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी प्रथम संस्करण वि- सं-- 2061।

2.8 साहायक उपयोगी सामग्री

1- उत्तरकालामृतम् - कालिदास, ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन, रंजन पब्लिकेशन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, 2009।

2- ग्रह और नक्षत्र - डा- बी-डी- अवस्थी, राजकमलप्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, फैजबाजार, दिल्ली।

3- ज्योतिर्विज्ञानम् - श्रीधूलिपालः सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविश्वविद्यालय वाराणसी - 1806।

4- लघुपाराशरीसमीक्षा - प्रो- शुकदेव चतुर्वेदी, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय-संस्कृतविद्यापीठ नव देहली -16 प्रथमसंस्करण -2005।

2-9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- सूर्य के स्वरूप का ज्योतिष शास्त्र के अनुसार वर्णन कीजिए।

2- ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले कारणों की व्याख्या कीजिए।

3- नीच राशि, शत्रु राशि अथ्वा निर्बल ग्रहों के रोगों का वर्णन कीजिए।

4- चन्द्रजन्य रोगों का विवेचन कीजिए।

5- शनिजजन्य रोग कौन कौन से है? विस्तार से लिखिए।